आत्म रूपातंरण की विधियां

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती जी एवं मा अमृत प्रिया जी

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा
131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

भूमिका

तंत्र की 112 विधियों का सार–संक्षेप

'ध्यानयोग : प्रथम एवं अंतिम मुक्ति' के पेज 279 पर ओशो बताते हैं– '112 ध्यान विधियों से गुजरने में मुझे वर्षों लगे, तब खोज पाया कि इन सबका सारतत्व साक्षीभाव है।'

इसी पुस्तक में 'ध्यान क्या है?' शीर्षक के अंतर्गत बालशेम की कथा सुनाकर ओशो समझाते हैं कि केवल देखने की दिशा बदलनी है। पहरेदार बाहर देखता है, साधक भीतर खुद को देखता है। सब तरफ से अपनी चेतना को लौटा लो और अंदर विश्राम करो। निष्क्रिय जागरूकता में डूबो। एक बार अंतस में निष्कंप होने का बोध जाग गया तब धीरे–धीरे कर्म करते हुए भी होश रहने लगेगा कि अंतस निष्कंप है। फिर तुम कर्ता नहीं, द्रष्टा हो। साक्षी की साधना में तीन सोपान हैं–

1. शरीर की क्रियाओं के प्रति, 2. मन के विचारों के प्रति, 3. हृदय की भावनाओं एवं अनुभूतियों के प्रति सजगता सध जाए, फिर ये तीनों आयाम एक सुरताल बन जाते हैं और अपने–आप चौथी तुरीयावस्था घटती है। वह अस्तित्व की तरफ से मिला उपहार है। वह साधी नहीं जा सकती। जिसने तीन चरण साधे, उन्हें मिला पुरुस्कार है– समाधि।

वैसे तो ओशो ने एक शब्द 'साक्षी' में सारी बात कह दी, फिर भी टी.वी. चैनल हेतु 'विज्ञान भैरव तंत्र' के ऊपर लंबी प्रवचनमाला देते हुए मुझे ख्याल में आया कि भगवान शिव ने जिन विशेष बिंदुओं पर जोर दिया है, उन्हें थोड़े और विस्तार में बताऊं। 112 विधियों का सार–तत्व खोजने पर सात प्रमुख बिंदु उभरकर दिखाई दिए। इनमें से किसी भी एक को साधन बनाया जा सकता है, तब शेष छः साध्य बन जाते हैं। लेकिन सामान्यतः प्रथम 4 साधना के बीज बन सकते हैं तब पांचवां बिंदु वृक्ष, छठवां बिंदु फूल तथा सातवां सुवास रूपी होगा।

अलग–अलग व्यक्तित्व वाले साधकों के लिए भिन्न–भिन्न मार्ग होंगे। उदाहरण के लिए जागरूकता साधने पर, निर–अहंकारिता, प्रेमभाव, नाद–नूर की सूक्ष्म अनुभूतियां फलस्वरूप घटित होंगी। प्रेमभाव में डूबने वाले के लिए जागरूकता परिणाम होगी। सात मुख्य बातें इस प्रकार हैं– जागरूकता, निर–अहंकारिता, संवेदनशीलता, विराटता, शून्यता, बुद्धिमत्ता एवं प्रफुल्लता।

उपरोक्त सातों गुणवत्ताओं का सम्मिलित नाम 'भगवत्ता' है।

ध्यान की खिलावट के मुख्य परिणाम

1. **जागरूकता यानि ध्यान**– साक्षीत्व, द्रष्टा भाव, श्वास के प्रति होश रखना, आत्म–केन्द्रित होना, अकेन्द्रित देखना, अचानक रुकना, आत्म–स्मरण, 'मैं (चैतन्य) हूं' का बोध।

2. **निर–अहंकारिता**– निष्कामना, स्वतंत्रता, ज्ञान व शक्ति रहित होना, लीला, प्रेम, करुणा, भक्तिभाव, स्वीकार, समताभाव, समष्टि के प्रति मैत्रीभाव।

3. **संवेदनशीलता का विकास**– सौंदर्य, संगीत, स्वाद, सुगंध, हर्ष, स्पर्श, आदि बाहरी इंद्रियों की क्षमता–वृद्धि, एवं आंतरिक इंद्रियों की सूक्ष्म अनुभूतियां– नाद श्रवण, प्रकाश दर्शन, जीवन–ऊर्जा के अलौकिक अहसास।

4. **विराटता**– निर्भारता, पूर्णता, अमृत एवं विदेह अनुभूति; सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान होना। जगत से जुड़े होने का एक्य–भाव। सच्चे स्वरूप की पहचान। असीम, अनादि, अनंत, अहं ब्रह्मास्मि।

5. **शून्यता**– गहन अंधकार एवं मृत्यु जैसा अनुभव, 'मैं (अहंकार) नहीं हूं' का बोध। अधिकांश साधकों के लिए यही मंजिल है। विरले साधक ही इसे प्रस्थान बिंदु बना सकते हैं। कामना–शून्यता यानि निर्वाण।

6. **बुद्धिमत्ता**– समझ, प्रज्ञा, विवेक, चुनौतियों में अनियोजित व्यवहार, रिस्पोंस–एबिलिटी, प्रत्युत्तर–क्षमता, प्रतिभा, निजता, मुखौटों के पीछे छिपी आत्म–सत्ता का ज्ञान, प्रामाणिकता, आदि ज्यादातर साधकों के लिए परिणाम हैं। यदा–कदा कोई अति–मेधावी व्यक्ति यहां से यात्रा आरंभ करने की पात्रता भी रखता है।

7. **प्रफुल्लता या प्रमुदिता**– शिथिलता, गैर–गंभीरता, विश्राम, खेलभाव, विस्मय बोध, शांति, अकारण खुशी, स्रोतरहित सतत आनंद, आंतरिक उत्साह, ऊर्जा व उमंग की प्रतीति। यह समाधि की सुगंध है।

तंत्र में विपरीत तत्वों का समावेश

पक्षी दो पंखों से आकाश में उड़ान भरता है। एक पंख से दूर तक की उड़ान नहीं भरी जा सकती। हमारे लिए भी दो पैरों से ही यात्रा संभव होती है। एक पैर की लंगड़ी दौड़ से धर्म की मंजिल नहीं मिलती। इसलिए विज्ञान भैरव तंत्र में विपरीत दिखने वाले तत्वों का समावेश भगवान शिव ने किया है। जैसे– पूर्णता+शून्यता, होश+प्रेम, संकल्प+समर्पण, केन्द्रित होना+फैलना, प्रकाश+अंधकार, मृत्यु+अमृत, साक्षी+स्वीकार, अति+मध्य (समता), सक्रियता+शिथिलता, प्रयास+प्रसाद, श्रम+विश्राम, कंपन+निष्कंप, मैं (चेतन) हूं+मैं (तन+मन) नहीं हूं; इत्यादि।

ध्यान में 'स्व–बोध' के कारण अहंकार सघन हो सकता है, प्रेम में 'पर–बोध' के कारण मूर्च्छा आ सकती है। दोनों को एक साथ साधने से दोनों खतरे समाप्त हो जाते हैं। ध्यान–साधना प्रेमी को प्रमाद में न गिरने देगी। प्रेम–साधना ध्यानी को अहंकार में न गिरने देगी। दोनों साधनों का ख्याल रहे, तो कट्टरपंथी–भाव भी नहीं जन्मेगा, अर्थात केवल खुद को सही और दूसरों को गलत मानने की जिद न पकड़ेगी। अंतर्यात्रा ज्यादा सुगम हो जाएगी। इन तथ्यों का ख्याल रखते हुए मंजिल की ओर बढ़ें। शुभाशीष।

–स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

आत्म–रूपांतरण की विधियां

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग–3, विधि 77 से 112 तक तथा अंत में प्रश्नोत्तर चर्चाएं

अनुक्रमांक

क्रम	विज्ञान भैरव तंत्र विधि	पेज न.
77	अंधकार को देखो	07
78	कहीं भी अनुभव!	13
79	मृत्यु संबंधी प्रथम प्रयोग	19
80	मृत्यु का द्वितीय प्रयोग	25
81	अस्तित्व में मिलना	31
82	मेरा विचार और मैं–पन	37
83	सौंदर्य में विलीन	43
84	आसक्ति से दूर	49
85	सब सीमाओं के पार	55
86	न होने के भी परे	61
87	'मैं हूं' की ध्यान विधि	67
88	ज्ञाता और ज्ञेय	73
89	क्षण में समाविष्ट	79
90	ब्रह्मांड व्याप्त है भीतर	85
91	आकाशीय उपस्थिति	91
92	चित्त की सूक्ष्मता	97
93	असीम विस्तार	103
94	ब्रह्मांडीय सार से भरे	109

95	सृजनशीलता के गुण	115
96	व्यापकता की विधि	121
97	अंतरिक्ष है आनंद शरीर	125
98	वक्षस्थल में शांति	131
99	सभी दिशाओं में फैलो	137
100	आत्मवान होने की विधि	143
101	सर्वज्ञ व सर्वव्यापक	149
102	आत्मवान अस्तित्व	155
103	आरंभ में ही जानो	103
104	सर्वशक्तिमान में लीन	167
105	सर्वव्यापी आत्मा	173
106	सबकी चेतना अपनी है	179
107	हर प्राणी में चेतना है	185
108	मार्गदर्शक सत्ता	191
109	देह को रिक्त कक्ष मानो	197
110	हे देवी, लीला करो!	203
111	ज्ञान–अज्ञान को छोड़ो	209
112	आकाश में प्रविष्ट होओ	215
	तंत्र सूत्र संबंधी प्रश्नोत्तर चर्चा	221
	परमगुरु ओशो के आशीष वचन	231

ओम् नमः शिवाय, ओम् नमः शिवाय;
ओम् नमः शिवाय, ओम् नमः शिवाय।
बोले शंकर– सुनो भवानी, तंत्रयोग विज्ञान;
राम नाम का भेद, समाधि, सहजयोग का ज्ञान।।
कलियुग में ओशो फिर से इन सूत्रों को समझाएंगे।
ओशोधारा में फिर प्यासे इस अमृत को पाएंगे।।
ओम् नमः शिवाय, ओम् नमः शिवाय;
ओम् नमः शिवाय, ओम् नमः शिवाय।

विधि-77

अंधकार को देखो

जब चंद्रमा विहीन वर्षा की रात उपलब्ध न हो तो आंखें बंद करो और अपने सामने अंधकार को देखो, फिर आंखें खोलकर अंधकार को देखो। इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक पीएचडी डॉक्टर आया। उस छोटे से गांव में कभी कोई पीएचडी हुआ ही नहीं था। वहां प्राइमरी स्कूल भी नहीं था। इसलिए लोगों ने यह शब्द भी नहीं सुना था। सब लोग उसे डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहब कहते। मुल्ला को बड़ी हैरानी होती कि इसकी कोई क्लीनिक नहीं है, अस्पताल नहीं है यह कैसा डॉक्टर है। एक दिन उसने जाकर पूछा कि डॉक्टर साहब, आप किस चीज के डॉक्टर हैं? उसने कहा मैं पीएचडी हूं, दर्शनशास्त्र का डॉक्टर हूं। नसरुद्दीन ने हैरानी से पूछा कि मैंने टीबी के डॉक्टर देखे, कैंसर के डॉक्टर देखे, दिमागी रोगों के डॉक्टर देखे, हृदय रोगों के डॉक्टर देखे लेकिन ये दर्शनशास्त्र कौन सी बीमारी है, इसका तो मैंने कभी नाम ही नहीं सुना।

वास्तव में फिलॉसफी भी एक बीमारी ही है। फिलॉसफी यानि सोच–विचार, दर्शनशास्त्र यानि कल्पनाओं का खेल, धारणाओं, मतों, सिद्धांतों का खेल,

वाद–विवाद, तर्क–वितर्क, आज तक इससे कोई किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा। कम से कम पिछले दस हजार साल का मनुष्य जाति का इतिहास, फिलॉसफर्स लड़ते रहे, झगड़ते रहे, विवाद करते रहे लेकिन हाथ कुछ भी नहीं आया।

एक और लतीफा मैंने सुना है– एक अनाथ बच्चे को सड़क पर देखकर चंदूलाल ने पूछा कि बेटे तुम अनाथ कैसे हो गए? उसने कहा कि सेठ जी, मेरी मां पड़ोसी के साथ भाग गई और पिताजी इस खुशी को बरदाश्त नहीं कर पाए और वे हार्टअटैक से मर गए। सेठ चंदूलाल ने पूछा कि क्या तुम्हारे कोई बड़े भाई–बहन नहीं हैं? उस अनाथ बच्चे ने कहा कि हैं। चंदूलाल ने पूछा कि क्या वे लोग तुम्हारा लालन–पालन नहीं करते? उस अनाथ बच्चे ने कहा कि मेरे तीन बड़े भाई हैं और तीनों पागलखाने में बंद हैं। सेठ चंदूलाल ने कहा, अरे! बड़ी बुरी खबर है। और बहन कितनी हैं? उस बच्चे ने कहा मेरी बहन यूनिवर्सिटी में है। चंदूलाल ने कहा चलो कोई बात नहीं, कम से कम एक बहन तो ठीक निकली, यूनिवर्सिटी में पढ़ रही है कि पढ़ा रही है? उस बच्चे ने कहा कि आप समझे नहीं, हमारे परिवार में कभी कोई पढ़ता–लिखता नहीं है, यूनिवर्सिटी के मनोविज्ञान विभाग वाले उसका अध्ययन कर रहे हैं। विचित्र हस्ती है वह, खुद के पास कोई डिग्री नहीं है लेकिन कई लोगों को डॉक्टरेट दिला चुकी है, वह डॉक्टर ऑफ डॉक्टर्स है।

सोच–विचार एक महामारी की तरह सारी मनुष्य जाति में फैला हुआ है। दर्शनशास्त्र से दो शाखाएं निकलीं जिन्होंने यथार्थ में कदम रखे, एक विज्ञान और दूसरा अध्यात्म। याद रखना, इनका दर्शनशास्त्र से कोई संबंध नहीं है, ये दोनों प्रयोगवादी हैं, सोच–विचार नहीं। ये बुद्धि पर भरोसा नहीं करते।

विज्ञान प्रयोग करता है पदार्थ के साथ और पिछले तीन सौ साल में विज्ञान ने चमत्कार कर के दिखला दिया। ठीक उसी प्रकार अध्यात्म प्रयोग करता है स्वयं के साथ और अध्यात्म का चमत्कार अपने भीतर घटित होता है। इन दोनों के परिणाम आए, विज्ञान के भी और अध्यात्म के भी। लेकिन हम जिसे दर्शनशास्त्र कहते हैं वह बिल्कुल ही व्यर्थ और बकवास है।

ईश्वर के बारे में जानना नहीं है, ईश्वरमय होना है इस बात को ख्याल रखना। प्रेम के संबंध में नहीं जानना है, प्रेमी होना है। और प्रेमी हुए बगैर प्रेम को नहीं जाना जा सकता, किताबें पढ़कर प्रेम के बारे में नहीं जाना जा सकता। ठीक उसी प्रकार ईश्वर के सिद्धांत जानकर ईश्वर को नहीं जाना जा सकता। तुम्हें ईश्वर ही होना पड़ेगा, भागवत स्वरूप होना पड़ेगा, भगवान होकर ही भगवत्ता को पहचाना जा सकता है। इस भूमिका के साथ विज्ञान भैरव तंत्र के विधि को समझना।

भगवान शिव कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं दे रहे, प्रयोग करने की विधि दे रहे हैं। पिछले प्रयोग में उन्होंने कहा कि 'अंधेरी रात में अंधकार को देखो' और आज विधि नंबर 77 में वे कहते हैं 'जब चंद्रमा विहीन रात उपलब्ध न हो तो आंखें बंद करो और अपने सामने अंधकार को देखो, फिर अपनी आंखें खोलो और उस अंधकार को बाहर भी देखो इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते हैं।'

अद्भुत है यह विधि, करके देखना, बड़ा चमत्कार पैदा हो सकेगा। कोई दो–तीन महीने का प्रयोग और कोई भी व्यक्ति आत्मज्ञान को उपलब्ध हो सकेगा। जब चंद्रमा विहीन रात न हो, अच्छा हो आंख में पट्टी बांध लो, थोड़ी भी रोशनी भीतर न जाए, चांद–तारों की रोशनी भी भीतर न जाए। बेहत्तर हो शहरों से दूर किसी निर्जन स्थान में जहां बिजली भी न पहुंचती हो ऐसे किसी गांव में जाकर साधना करना।

पुराने जमाने में साधु–संत जंगल–पहाड़ों में जाकर, गुफाओं में जाकर रहते थे। उसका कारण यह नहीं था कि परिवार बुरा है और समाज खराब है और संसार को त्यागना है। कारण सीधा–साधा था, संसार के शोरगुल में रहकर अनहद नाद को सुनना थोड़ा कठिन है, इस चकाचौंध वाली दुनिया में रहकर भीतर के अंधकार को महसूस करना जरा कठिन है, भीतर का आलोक अंधकार के समान है।

किसी निर्जन स्थान में आसानी से अपने भीतर डूबा जा सकता है। जंगल और गुफाओं में जाने का यह कारण था। अच्छा हो कभी हफ्ता–दस दिन के लिए छुट्टी मनाने जंगल में, गुफाओं में चले जाओ। आज कल तो लोग घूमने भी जाते हैं तो पर्यटक स्थलों पर जाते हैं, वहां भी वही शोरगुल, वही बाजार, शायद सामान्य गांव से भी ज्यादा शोरगुल वहां पर है। सारी भीड़ उमड़ पड़ती है।

सैटरडे और संडे को भीड़ ही भीड़, उससे अच्छा तो घर में ही रह जाते। अमेरिका में सबसे ज्यादा एक्सीडेंट शनिवार और रविवार को होते हैं। सारे लोग चले समुद्र तट पर एकांतवास करने के लिए। जब पूरा शहर ही वहां पहुंच गया तो एकांतवास कैसे होगा। समझदार आदमी को तो संडे को अपने ही घर में रुकना चाहिए।

अच्छा हो एकांत खोज लेना और अंधेरे में डूब जाना। पहले आंख बंद करके अंधेरे को देखना फिर धीरे–धीरे प्रयोग करना, अंधकार बाहर भी आने लगेगा।

इस विधि को समझाते हुए परमगुरू ओशो ने कहा, अगर तुम आंतरिक अंधकार को बाहर ला सके तो दोष सदा के लिए विलीन हो जाते हैं क्योंकि आंतरिक अंधकार अनुभव में आ जाए तो तुम इतने शीतल, इतने शांत, इतने अनुद्विग्न हो जाओगे कि दोष तुम्हारे साथ टिक ही नहीं सकते। स्मरण रहे, दोष तभी तक रहते हैं जब तक तुम उत्तेजित होने की हालत में रहते हो, दोष अपने आप नहीं रहते, वे तुम्हारी उत्तेजित होने

की क्षमता में बसते हैं।

कोई व्यक्ति तुम्हारा अपमान करता है तो तुम्हारे भीतर उस अपमान को पीने के लिए अंधकार नहीं, इसलिए तुम जल–भुन जाते हो, क्रोधित हो जाते हो, आगबबूला हो जाते हो। किसी बुद्ध का अपमान करो वे चुप–चाप उसे आत्मसात कर लेंगे, वे उसे पचा जाएंगे। कौन अपमान को पचा जाता है? वह भीतर का अंधकार, शांति का आंतरिक पुंज उसे हजम कर जाता है। तुम कुछ भी विषाक्त फेंको वे सबकुछ एब्जार्व कर लेते हैं। उनसे कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। इस प्रयोग को करो। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो इतना ही स्मरण करो कि मैं अंधकार से भरा हूं और सहसा तुम्हें प्रतीत होगा कि कोई प्रतिक्रिया नहीं उठ रही।

तुम रास्ते से गुजर रहे हो एक सुंदर पुरुष या स्त्री दिखाई देती है और तुम कामोत्तेजित हो उठते हो, ख्याल करो कि मैं अंधकार से भरा हूं और तुम पाओगे कि कामवासना विदा हो गई। प्रयोग करके देखो, ये कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं, यह एक प्रायोगिक विधि है, इसमें विश्वास करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

तुम एक असीम शून्य हो गए जिसमें कोई भी चीज गिरकर फिर कभी वापिस नहीं लौटती, तुम एक अतल खाई बन गए। इसलिए शिव कहते हैं, इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते हैं।

कई लोग मुझसे पूछते हैं कि कैसे काम, क्रोध से छुटकारा पाएं? बड़ी ही आसान विधि है, अंधकार में डूबो, अंधकार में जियो। आधुनिक विज्ञान ने अस्तित्व में ब्लैकहोल को खोजा है। आपने शायद सुना होगा ब्लैकहोल्स के बारे में, उनके पास से जो कुछ भी गुजरता है उनमें समा जाता है और सदा–सदा के लिए विलीन हो जाता है।

तुम भी एक ब्लैकहोल बन सकते हो फिर आसपास की परिस्थितियां तुम्हें उत्तेजित न कर पाएंगे, तुम्हें आंदोलित न कर पाएंगी। कुछ भी होता रहे तुम सबकुछ एब्जार्व कर लोगे अपने भीतर, कोई प्रतिक्रिया तुमसे वापिस नहीं लौटेगी, तब तुम शांति के एक पुंज बन जाओगे।

यह विधि बड़ी ही सरल है। करके देखना। सुनने में तो ये तंत्र सूत्र की विधियां बड़ी छोटी–छोटी लगती हैं, अहंकार को चुनौती नहीं मिलती, योग की विधियों में बड़ी चुनौती मिलती है। कुछ कठिन काम करके दिखाने में रस उत्पन्न होता है। एक महत्वाकांक्षा और ज्वर उत्पन्न होता है भीतर, लेकिन याद रखना, चुनौती और ज्वरग्रस्त होना, महत्वाकांक्षा से भरना कोई अच्छी बात नहीं है। इसलिए अक्सर योग के साधक महाअहंकारी होते हैं, रस ही उन्हीं को उत्पन्न होता है योग की विधियों में। कुछ कठिन काम करके दिखाने में जो कोई और नहीं कर सकता।

विज्ञान भैरव तंत्र हमारे देश में प्रसिद्ध न हो सका। कारण, अहंकार को कोई रस नहीं आता। अंधकार स्वरूप हो जाने में किसको रस आएगा। अहंकार को कोई चुनौती नहीं मिलती लेकिन यही विधियां क्रांतिकारी है।

एक प्रवचन में ओशो ने तो यहां तक कहा है कि योग के माध्यम से कोई भी परम मंजिल को नहीं पहुंचा। फिर किसी ने उनसे पूछा कि फिर योगियों का क्या होता है? ओशो ने कहा कि जन्म-जन्मांतर योग की साधना करते-करते थक जाते हैं, असफलता से वे सीखते हैं और तब वे तंत्र की तरफ मुड़ते हैं। जीवन के सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक ढंग को अपनाते हैं। योग को छोड़ते हैं, तंत्र की साधना में लगते हैं और तभी परम मंजिल को पाते हैं।

योग की साधना कितनी ही आकर्षक हो कहीं पहुंचाती नहीं। तंत्र की साधना आकर्षक नहीं लगती क्योंकि इसमें कोई विशिष्टता अनुभव नहीं होती, बड़ी साधारण सी छोटी-छोटी बातें हैं। लेकिन याद रखना, अध्यात्म सरल है, कठिन नहीं है। अहंकार का रस कठिन में होता है, स्वाभाविक बनो, सरल बनो। शिव की इन विधियों को अपनाओ। फिर तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।

आइए इस विधि को करते हैं। आराम से बैठ जाएं। आंखों में पट्टी बांध लें। बाहर की कोई रोशनी आंख के भीतर न पहुंचे किन्तु पट्टी का दबाव भी आंख पर न पड़े। अब भीतर के अंधकार को देखें। देखते जाएं, बिना फोकस किए देखते जाएं। शुरूआत में यह अंधकार निगेटिव होगा और धीरे-धीरे एक पॉजिटिव अंधकार निर्मित होगा। देखते जाएं, ... देखते जाएं, ... कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है, सिर्फ अंधकार है बस।

अब आंख की पट्टी खोल लें। अधखुली आंख रखें और भाव करें कि भीतर का अंधकार बाहर आ रहा है। धीरे-धीरे अंधेरे का एक टुकड़ा आपके सामने मौजूद हो गया।

अब पूरी आंख खोल लें, भाव करें कि अंधेरे का वह टुकड़ा आपके चारों ओर फैल गया। जैसे एक काले कंबल में लिपटे हुए हों ऐसे आप अंधेरे से घिरे हुए हैं। भाव करें कि अंधकार फैल रहा है, ... आपके चारों ओर अंधेरे की एक मोटी परत जमा हो गई।

अब धीरे से खड़े हो जाएं, अंधकार की चादर आपके चारों ओर लिपटी हुई है। आहिस्ता-आहिस्ता अधखुली आंख रखते हुए चलना शुरू करें। भाव करें अंधेरे की चादर अपने चारों तरफ लिपटी हुई, ... आप चल रहे हैं, ... आपके साथ अंधेरा भी चल रहा है। आप एक ब्लैकहोल में समा गए। शांति, शीतलता, अनुद्विग्नता, उत्तेजना रहित चेतना, अद्भुत अनुभूति हो रही है। आपके साथ-साथ अंधेरा चल रहा है।

अब वापिस अपने जगह पहुंचें और आराम से लेट जाएं, ... शिथिल हो जाएं। सांस धीमी हो रही, शरीर शिथिल हो गया, मन अद्भुत शांति से भर गया। अंधकार ही अंधकार है बस, ... डूबते जाएं, ... डूबते जाएं, .. इस मखमली अंधकार में डूबते जाएं।

अंधकार अस्तित्व का गर्भ है, इसी से सारी सृष्टि जन्मती और इसी में विलीन हो जाती। बच्चा अपनी मां के पेट में अंधकार से घिरा होता है नौ महीने, वही उसके जीवन के सर्वाधिक आनंद के क्षण हैं। समाधि में हम फिर उसी अवस्था में पहुंच जाते हैं और अस्तित्व के गर्भ में समा जाते। अंधकार, .. अंधकार, ... अंधकार, डूबते जाएं, .. . डूबते जाएं, ... अंधकार के संग एक हो जाएं। धन्यवाद।

विधि-78

कहीं भी अनुभव

जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर अनुभव!

हल्का हल्का सुरूर है साकी, बात कोई जुरूर है साकी।
तेरी आंखों को कर दिया सजदा, मेरा पहला कुसूर है साकी।
तेरे दर पे वो आ ही जाते हैं, जिनको पीने की आस हो साकी।
आज इतनी पिला दे आंखों से, खत्म रिंदों की प्यास हो साकी।
तेरे रुख पे ये परेशां जुल्फें, इक अंधेरे में नूर है साकी।
तेरी आंखें किसी को क्या देंगी, अपना-अपना सुरूर है साकी।
पीने वालों को भी मालूम नहीं, मयकदा कितने दूर है साकी।

मयकदा तुम्हारे भीतर है। और किसी की आंखें किसी को क्या देंगी अपना-अपना सुरूर है साकी। हम जिसे बाहर खोज रहे वह हमारे भीतर है। कस्तूरी

कुंडल बसे मृग ढूंढ़े वन माहि। कस्तूरी मृग को लगता है कि सुगंध कहीं बाहर से आ रही लेकिन बाहर से नहीं आ रही और उसी भ्रांति में हम तथाकथित समझदार मनुष्य हैं। हिरण को माफ किया जा सकता है, नासमझ पशु है। हम अपने आपको विचारशील प्राणी कहते हैं लेकिन हम उससे ज्यादा भिन्न नहीं।

बाहर कहीं तृप्ति संभव नहीं। बिल्कुल पास– अपने भीतर है मयकदा। वहीं प्यास खत्म होगी। शिव किस अनुभव की कह रहे हैं? स्वयं का। तुम्हें अवधानपूर्ण रुख, एक ध्यानपूर्ण रुझान विकसित करना होगा। जब फूल को देखो तो केवल फूल ही नहीं देखने वाले को भी देखने की आदत डालो। दोनों के बीच विचारों की दीवार न हो। एक वर्तुल बन जाएगा– दृश्य दृष्टि को द्रष्टा पर वापस लौटा देगा। तब दृश्य व द्रष्टा दो ऑब्जेक्ट हो जाते हैं और तुम दोनों के साक्षी बन जाते हो– त्रिकोण के तीसरे बिंदु। अभी मुझे सुनते हुए चंचल मन से न सुनो। अवधान यानी अवेयरनैश, शांत मौन निर्विचार बोध। पहले एकाग्र हो जाओ, फिर समग्ररूपेण बोध में स्थित हो सकोगे।

हम जो भी खोज रहे हैं बाहर उसका मूल उद्गम हम स्वयं हैं और इसलिए वह बाहर कभी भी नहीं मिलता। बाहर केवल प्रतिध्वनि है। जो हमारे भीतर है हमें लगता है कि वह बाहर है। बाहर केवल एक दर्पण है, हम खुद ही उसमें दिखाई दे रहे।

मैंने सुना है मोटे और भारी–भरकम सेठ चंदूलाल जब ट्रेन से उतरे और टीसी ने उनसे टिकिट मांगी तो उन्होंने अचानक तेजी से दौड़ना शुरू कर दिया। टीसी भी संयोग से बहुत मोटा और भारी–भरकम था वो भी पीछे–पीछे पकड़ने को दौड़ना शुरू कर दिया कि कम से कम आज इस मारवाड़ी को बिना टिकिट के पकड़ लूं। अखबार में नाम छप जाएगा इतना बड़ा सेठ और बिना टिकिट के। चंदूलाल भागते गए, भागते गए, पीछे–पीछे टीसी भाग रहा था दोनों भारी–भरकम मोटे इसलिए तेज दौड़ ही नहीं पा रहे थे। दोनों हांफ रहे, आखिर सेठ चंदूलाल अपने घर पहुंच गए, पीछे से एक मिनट बाद टीसी पहुंचा। उसने कहा सेठ जी, आज छोड़ूंगा नहीं, कहां है टिकिट? सेठ जी ने तुरंत जेब से टिकिट निकालकर दिखा दी कि यह है टिकिट। उसने कहा हद हो गई, जब टिकिट है तो भागे क्यों? चंदूलाल ने कहा कि मेरे पास तो एक टिकिट और भी है, अरे कहीं भागते हुए एक गिर जाए तो दूसरी सही, फिर पैंट की जेब से एक दूसरी टिकिट निकालकर दिखाया। टीसी ने कहा हद हो गई और कहा कि मान लो दूसरी टिकिट भी गिर जाए तब? उन्होंने तीसरी टिकिट निकालकर दिखा दिया और कहा कि देखो, मेरे तो रेलवे पास भी हैं। टीसी ने कहा कि अच्छा सच–सच बताओ तुम भागे क्यों? और मैं तुम्हारे पीछे भाग रहा था पकड़ने के लिए तो तुम रुके क्यों नहीं? सेठ ने कहा कि वास्तव में मैं डॉक्टर से इलाज करा रहा हूं दुबले होने के लिए, उसने कहा है कि पांच मिनट रोज दौड़ो। उसने कहा कि जब मैं तुम्हारे पीछे दौड़ रहा था और आवाज लगा रहा था तो रुके

क्यों नहीं? चंदूलाल ने कहा कि मैं समझ रहा था कि शायद तुम भी डॉक्टर से इलाज करवा रहे हो।

हम दूसरे में वही देख सकते हैं जो हमारे भीतर है।

मैंने एक और कहानी सुनी है कि सरदार विचित्र सिंह की पत्नी बहुत नाराज हो गईं, उन्होंने ऐसी ठोकाई की, ऐसी ठोकाई की कि उनकी एक टांग तोड़ दी। सरदार विचित्र सिंह अस्पताल में भर्ती हो गए, एक टांग टूटी हुई, प्लास्तर चढ़ा हुआ था, बड़ी तकलीफ में थे। थोड़ी ही देर में एक और मरीज आया उसका नाम था मुल्ला नसरुद्दीन, उसकी दोनों टांग टूटी हुई थी। बगल के बिस्तर में वह भर्ती हो गया, उसकी दोनों टांग पर प्लास्तर। विचित्र सिंह ने बड़ी सहानुभूति के साथ उसकी तरफ देखा और कहा कि क्यों मुल्ला जी, क्या तुम्हारी दो बीबियां हैं?

गणित बिल्कुल साफ है, मेरी एक बीबी थी तो एक टांग टूटी, तुम्हारी दोनों टूटी हैं और मुसलमान हो तो जरूर दो बीबियां होंगी। दूसरे में हम जो भी देख रहे हैं वह हमारे भीतर का ही प्रोजेक्शन और प्रक्षेपण है। और पूरे जगत में जो भी हम देख रहे हैं वह हमारा प्रक्षेपण है। आज की विधि बड़ी अद्भुत है। विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नंबर 78 में कहते हैं भगवान शिव पार्वती से कि जहां कहीं भी तुम्हारा ध्यान उतरे उसी बिन्दु पर अनुभव, जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान, तुम्हारा अटेंशन जाए होश, किसके प्रति? स्वयं के प्रति। जो तुम बाहर देख रहे हो वही तुम्हारे भीतर है। वाक्य अधूरा सा लगता है, कहते हैं सिर्फ उसी बिन्दु पर अनुभव। किसका अनुभव, क्या अनुभव? स्वयं का अनुभव।

यह बड़ी ही प्यारी विधि है, जहां कहीं तुम्हारा ध्यान जाए। ध्यान को कहीं जबरदस्ती ले जाने की कोशिश न करना। अक्सर धार्मिक लोग वैसा करते हैं। कोई ध्यान लगा रहा है भगवान की मूर्ति में, कोई गुरु का स्मरण कर रहा है। अक्सर लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि गुरु का स्मरण नहीं होता, भगवान का ध्यान नहीं लगता, हरि स्मरण नहीं बनता। मैं कहता हूं किसका ख्याल आता है? कोई कहता है कि प्रेमिका का ख्याल आता है, कोई स्त्री कहती है कि बेटे का ख्याल आता है। मैं उनसे कहता हूं तुम छोड़ो भगवान को, गुरु पर कृपा करो उनको जबरदस्ती मत घसीटो, तुम्हें बेटे का ख्याल आ रहा है तो तुम बेटे का ही ख्याल करो, तुम्हें प्रेमिका का स्मरण आ रहा है तो तुम उस पर ही ध्यान करो। जहां कहीं सहज रूप से तुम्हारा आकर्षण है, लगाव है, प्रेम है वहां चित्त अपने आप जाता है, उसे जबरदस्ती दूसरी दिशा में ले जाने में तुम आत्मसंघर्ष में पड़ जाओगे। तुम्हारे भीतर लड़ाई छिड़ जाएगी, उस लड़ाई में बुरी तरह से परास्त होओगे। कभी भूलकर भी यह भूल नहीं करना। जहां सहज तुम्हारा मन बह रहा है उस बिन्दु पर ध्यान और फिर शिव का सूत्र ख्याल करना, स्वयं का अनुभव। वह उसी

बिन्दु पर हो पाएगा।

बस या रेल में यात्रा करते हुए, बाजार में, घर के काम करते हुए अवधान की कला सीखो। कार में शरीर सफर करे, मन यात्रा न करे। साधना के लिए अतिरिक्त समय की जरूरत नहीं है। अगर तुम मन के साथ संघर्ष करने में लग गए, आत्म अनुभव से चूक जाओगे, स्वयं का ज्ञान नहीं हो पाएगा। तो हमेशा ऐसी विधि चुनना जो तुम्हारे लिए सहज, स्वाभाविक, सुगम और प्राकृतिक हो। कुछ भी अप्राकृतिक करने की कोशिश में साधक पागल हो जाते हैं। अपने सहज जीवन को स्वीकारो। समझो, तुम्हें एक फूल अच्छा लगता है तो तुम फूल को देख रहे हो। अब दो चीजें हो गईं, एक फूल और यहां तुम्हारा शरीर उसको देखने वाला दर्शक। एक दृश्य है और एक द्रष्टा है, इन दोनों के पार तुम्हारी चेतना है। त्रिकोण का तीसरा बिन्दु। नीचे दृश्य, फिर द्रष्टा और ऊपर है साक्षी चेतना। उस साक्षी चेतना में रमो। और यह बात कहीं भी लागू कर सकते हो। तुम अपने प्रेमी के साथ या प्रेमिका के साथ बैठे हो, अपने मित्र के साथ बैठे हो, अपने बच्चों के साथ खेल रहे हो, कि सुंदर बगीचे में टहल रहे, कि खूबसूरत सूर्योदय देख रहे, जहां कहीं सहज तुम्हारा आकर्षण है वहां अचानक स्मरण करो। सामने है दृश्य, यह शरीर है तुम्हारा दर्शक और इन दोनों के पार एक चैतन्य है, योर विटनेसिंग कॉन्सेसनेस, उसका बोध हो जाएगा तब स्वयं का बोध हो जाएगा। सरल से सरल विधियों में से एक।

जापान के झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछा कि आपकी साधना क्या है? बोकोजू ने कहा बड़ी सरल। जब भूख लगती है तो खाना खाता हूं, जब गर्मी लगती है तो ठंडे पानी से नहा लेता हूं, जब नींद आने लगती है तो सो जाता हूं। उस पूछने वाले ने कहा कि हद हो गई, यही काम तो मैं भी करता हूं, इसमें कौन सी साधना। बोकोजू ने कहा कि नहीं, तुम ऐसा नहीं करते, तुम जब खाना खा रहे होते हो तब आफिस के बारे में सोच रहे होते हो, जब स्नान कर रहे हो उस समय भोजन के बारे में विचार कर रहे होते हो, जब सो रहे हो दुनिया भर के सपने तुम्हारे मन में डोल रहे, जब दुनिया में हो तब तुम उन सपनों को देख रहे, तुम हमेशा वहां नहीं हो जहां तुम्हें होना चाहिए। साधना तो बड़ी सरल और सहज है, वर्तमान के इस क्षण में। जहां कहीं तुम्हारा अटेंशन है उसी बिन्दु पर स्वयं का अनुभव संभव है। बड़ा ही आसान है, करके देखना। सुनने में जो चीज सरल लगती हैं उस चीज में हमारा आकर्षण ही पैदा नहीं होता, सोचते हो इसे क्या करना, यह तो बड़ी सरल बात है।

तुम करके देखो, जब खाना खा रहे हो तब सिर्फ खाना खाओ और तुम्हें स्वयं का बोध होना शुरू हो जाएगा। जब तुम मित्र के साथ गप–शप कर रहे हो पूरी समग्रता में वहां मौजूद हो जाओ और आत्मबोध घटित हो जाएगा। तुम गीत गुनगुना रहे, तुम्हें रस है

संगीत में आंख बंद करके गाओ, पूरे मगन होकर गाओ और जल्दी ही तुम पाओगे कि स्वयं का अनुभव होने लगा। जहां–जहां सहज रूप से ध्यान घटित होता है उस परिस्थिति का उपयोग कर लो। और एक अद्भुत घटना घटेगी, जिस दृश्य को तुम देख रहे हो वहां से ऊर्जा वापिस लौटकर आएगी। बचपन में आप दीवाल पर गेंद मारते हैं और गेंद वापिस लौटकर आती है, गेंद को आप जमीन पर मारते हैं तो वह वापिस आपके हाथ में आ जाती है ठीक इसी प्रकार हमारी जीवन ऊर्जा दृश्य से निरंतर द्रष्टा पर लौट रही है, दर्पण से परावर्तित होकर प्रकाश किरणें वापिस हम पर आ रही हैं। उनको एब्जार्व करना सीखो। तब एक और अद्भुत घटना घटेगी, तुम कभी थकोगे नहीं, संसार में रहते हुए तुम सदा ऊर्जा से भरे रहोगे। सब तरफ से परावर्तित होकर शक्ति तुम पर आ रही होगी।

अक्सर लोग ओशो से पूछा करते थे कि आप इतनी किताबें पढ़ते हैं, करीब–करीब एक लाख किताबें पढ़ीं इस छोटे से जीवनकाल में, 1931 में ओशो का जन्म हुआ, दस साल की उम्र में स्कूल में दाखिल हुए 1941 में और 1981 तक वे किताबें पढ़े तो कुल चालीस साल में एक लाख किताबें। एवरेज करीब–करीब सात–आठ किताबें प्रतिदिन, बहुत बड़ी गिनती है सात–आठ किताबें प्रतिदिन पढ़ना। और सुबह प्रवचन दे रहे हैं, दोपहर लोगों से मिल रहे हैं और शाम को प्रवचन दे रहे हैं, यात्रा कर रहे हैं उस सारी व्यस्तता में सात–आठ किताबें प्रतिदिन पढ़ना। कई लोग बार–बार पूछते थे कि क्या आप थकते नहीं हो? नहीं थकते। ओशो जब किताब को देख रहे हैं तो स्वयं के होने का बोध है। किताब से चली प्रकाश की किरणें उनकी आंखों में एब्जार्व हो रही हैं। शक्ति वापिस मिल रही है, खर्च नहीं हो रही है। इस विधि का छोटी–छोटी जगह प्रयोग करके देखना। बड़ी ही अद्भुत घटना घटेगी। इस प्रयोग को समझाते हुए ओशो कहते हैं–

'तुम अनुभव करने वाले को अनुभव करोगे, तुम स्वयं पर लौट आओगे, सब जगह से तुम प्रतिबिंबित होओगे, सब जगह से तुम प्रतिध्वनित होओगे, सारा अस्तित्व दर्पण बन जाएगा, तुम सब जगह प्रतिबिंबित होओगे और केवल तभी तुम स्वयं को जान सकते हो, उसके पहले नहीं। जब तक तुम्हारे लिए सारा अस्तित्व एक आइना न बन जाए, जब तक अस्तित्व का कण–कण तुम्हें रिफ्लेक्ट न करने लगे, जब तक तुम्हारा प्रत्येक संबंध तुम्हीं को प्रतिबिंबित न करने लगे तब तक स्वयं को न जान सकोगे। तुम इतने असीम हो कि छोटे दर्पणों से काम नहीं चलेगा, तुम अपने अंतस में इतने विराट हो कि जब तक सारा अस्तित्व दर्पण न बन जाए तुम्हें खुद की झलक नहीं मिलेगी। जब सारा अस्तित्व दर्पण बन जाता है केवल तभी तुम प्रतिबिंबित हो सकते हो, तुम्हारे भीतर भगवत्ता विराजमान है। और अस्तित्व को दर्पण बनाने की विधि है, अवधान पैदा करो, ज्यादा सावचेत बनो और जहां कहीं तुम्हारा अवधान उतरे, जिस किसी भी विषय पर

तुम्हारा स्वाभाविक रूप से ध्यान जाए अचानक वहीं स्वयं को अनुभव करो। यह बिल्कुल संभव है लेकिन अभी फिलहाल तो कठिन होगा क्योंकि तुमने बुनियादी शर्त पूरी नहीं की। तुम एक फूल को देख सकते हो लेकिन वह ध्यानपूर्ण नहीं है। अभी तो तुम फूल के चारों ओर बस बाहर–बाहर घूमते हो और भागते–भागते फूल को देखते हो चंचलतापूर्वक, तुम उसके साथ क्षण भर के लिए भी ठहरते नहीं। रुको, अवधान पैदा करो, सावचेत बनो और समस्त जीवन फिर ध्यानपूर्ण हो जाता है। भगवान शिव कहते हैं– जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे उसी बिन्दु पर अनुभव, स्वयं का अनुभव।'

बड़ी ही प्यारी यह विधि है। आओ मा ओशो प्रिया के साथ इस विधि को करते हैं।

कृपया खड़े हो जाएं। जोड़ी बनाकर सामने खड़े हुए मित्र को देखें, सामने वाला व्यक्ति आपके लिए दृश्य है, आप द्रष्टा हैं। दृश्य और द्रष्टा दो आब्जेक्ट हैं, आप इन दोनों के पार तीसरे व्यक्ति– सब्जेक्ट हो। दृश्य है, दृश्य को देखने वाला है और इन दोनों को देखने वाला तीसरा बिन्दु है साक्षी, साक्षी, साक्षी।

एक वर्तुल बन जाएगा– दृश्य दृष्टि को द्रष्टा पर वापस लौटा देगा। तब दृश्य व द्रष्टा दो ऑब्जेक्ट हो जाते हैं। जब दृश्य व द्रष्टा दो ऑब्जेक्ट हो जाते हैं तब तुम दोनों के सब्जेक्ट बन जाते हो– साक्षी, त्रिकोण के तीसरे बिंदु।

अब बैठ जाओ और हाथ में पकड़े हुए फूल को देखो। केवल फूल ही नहीं देखने वाले को भी देखने की आदत डालो। दोनों के बीच विचारों की दीवार न हो। कोई विचारों की दीवाल नहीं है, निर्मल, निर्विचार अवस्था में फूल का दर्शन। अब फूल को नीचे रख दें, आंखें बंद कर लें और इस मधुर संगीत को सुनें।

अभी मेरी आवाज या संगीत सुनते हुए चंचल मन से न सुनो। फूल नीचे रख दो। आंख बंदकर लो। पहले कानों पर एकाग्रता साधो, फिर समग्ररूपेण बोध में स्थित हो जाओ। बाहर संगीत है भीतर श्रोता है; इन दोनों को जानने वाला तुम्हारा साक्षी चैतन्य है। संगीत, श्रोता और इन दोनों को जानने वाला साक्षी चैतन्य।

शिथिलीकरण–धीरे से शवासन में लेट जाएं, शिथिल, पूर्ण शिथिल हो जाएं। एक–एक अंग क्रमशः शिथिल हो गये। यह साक्षी चैतन्य की साधना ही इस जीवन का लक्ष्य है। भगवान शिव कहते हैं– जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर अनुभव! अवधान यानी शांत होश। मौन बोध। निर्विचार जागरूकता। और अनुभव? किसका अनुभव? अनुभव करने वाले का अनुभव। आत्म–अनुभव! आत्म–स्मरण।

दो–चाद लंबी–गहरी सांसें लेकर आहिस्ता–आहिस्ता ध्यान से वापस आएं। आज का ध्यान पूरा हुआ।

विधि-79

मृत्यु संबंधी प्रथम प्रयोग

भाव करो कि एक आग तुम्हारे पांव के अंगूठे से शुरु होकर पूरे शरीर में ऊपर उठ रही है, और अंततः शरीर जलकर राख हो जाता है लेकिन तुम नहीं।

मैंने सुना है सरदार विचित्तर सिंह के पड़ोस में किसी की मृत्यु हो गई। सब लोग बड़े दुखी थे। सब लोग गांव-पड़ोस के सांत्वना देने पहुंचे, विचित्तर सिंह भी पहुंचे। लेकिन अन्य लोग जो सांत्वना देने आए थे वे सारी बड़ी-बड़ी बातें पहले ही कह चुके थे। विचित्तर सिंह ने सोचा कि मुझे तो कहने के लिए कुछ बचा ही नहीं है, मैं क्या कहूं? अंत में उन्होंने बड़ा सोच-विचार के कहा कि देखिए, इतने दुखी मत होइए, ये तो परमात्मा की बड़ी कृपा है कि मृत्यु हमेशा जीवन के अंत में आक्रमण करती है, यदि मध्य में या आरंभ में ही कर दे तब कितनी मुसीबत होगी।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, मृत्यु अंत में आक्रमण नहीं करती। अब तो वैज्ञानिक इस बात से राजी हैं कि मृत्यु पहले दिन से ही शुरू हो जाती है। शायद आपको मालूम

न हो, फिजियोलाजिस्ट ने खोज लिया है कि बच्चे के पैदा होते से ही उसके मस्तिष्क के जो न्यूरॉन्स हैं, नर्व सेल्स हैं, पांच हजार न्यूरान्स प्रतिदिन मरने लगते हैं और एक भी नया न्यूरान कभी नहीं बनता।

मृत्यु कोई अंत में घटने वाली घटना नहीं है, मृत्यु निरंतर हो रही है, प्रतिक्षण हो रही है। जब तक मेरा प्रवचन समाप्त होगा आपके भीतर से सैकड़ों मस्तिष्क के सेल्स नष्ट हो चुके होंगे जो कभी दोबारा नहीं बनेंगे।

हमारे शरीर की अन्य कोशिकाएं बन जाती हैं। चमड़ी में घाव हो जाए तो फिर नई चमड़ी बन जाती है, हड्डी टूट जाए तो नई बोन सेल्स बन जाती हैं और हड्डी जुड़ जाती है। लीवर में बीमारी हो जाए, किडनी में बीमारी हो जाए, फिर वे सेल्स बन जाते हैं किन्तु हमारे जो नर्व सेल्स हैं, जन्म से हम जितनी लेकर आए हैं मां के गर्भ से उनमें से रोज पांच हजार सेल्स मरते हैं और कभी भी उनमें से एक का भी रिप्लेसमैंट नहीं होता।

एक भी नई सेल कभी नहीं बनती। हां, एक दिन ऐसा आता है जब नर्वसेल्स इतनी कम हो जाती हैं कि यह मस्तिष्क शरीर को चलाने में सक्षम नहीं रह जाता। हम समझते हैं कि उस दिन मृत्यु घटी लेकिन मृत्यु एक लंबी प्रक्रिया थी जो क्रमशः धीरे–धीरे रोज–रोज घट रही थी। और इसलिए साधक को इस आती हुई मृत्यु के प्रति सचेत होना चाहिए। ऐसा नहीं सोचना कि बाद में घटेगी तब देखेंगे। वह तो रोज घट ही रही है, तुम जानो चाहे न जानो।

हमारे शरीर में जो खून है उसमें जो रेड ब्लड सेल्स हैं उनकी उम्र करीब 120 दिन है, चार माह। इसका मतलब हुआ कि चार माह में हमारा पूरा का पूरा खून बदल जाता है लेकिन हमें पता नहीं चलता। रोज अरबों–खरबों सेल्स नष्ट होते हैं और उतने ही रिप्लेस हो जाते हैं, नया खून फिर बन जाता है भोजन के द्वारा। हमारी जो चमड़ी है उसके ऊपर की परत, एपीडर्मिस, चौदह दिन में पूरी बदल जाती है लेकिन हमें पता नहीं चलता क्योंकि नीचे से चमड़ी की नई परत आ गई, रिप्लेसमैंट हो गया। मस्तिष्क के सेल्स कभी भी रिप्लेस नहीं होते। और ऐसा नहीं सोचना कि मृत्यु अंत में एक दिन आएगी, मृत्यु प्रतिक्षण आ ही रही है। इस तथ्य के प्रति जागरूक होओ। कबीर साहब कहते हैं–

साईं की नगरिया जाना है रे बंदे,
जग नहीं अपना बेगाना है रे बंदे।
पत्ता टूटा डाल से ले गई पवन उड़ाय,
अब के बिछड़े न मिले, दूर पड़ेंगे जाय।

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार,
फूले-फूले चुन लिए कल हमारी बारि।

हम सब लाइन में लगे हुए हैं, अपनी-अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। दूसरे की मृत्यु में ही बस शोक प्रकट मत करना, अपनी मृत्यु के प्रति कब जागोगे। फूले-फूले चुन लिए कल हमारी बारि।

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।
लूट सके तो लूट ले सत्य नाम की लूट,
पाछे फिर पछताओगे जब प्राण जाएंगे छूट।
माटी कहे कुम्हार से तू का रौंदें मोहि,
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूंगी तोहि।
लकड़ी कहे लुहार से तू मत जारे मोहि,
एक दिन ऐसा आएगा, मैं जारूंगी तोहि।
बंदे कर तू बंदगी, तो पावे दीवार,
अवसर मानुष जन्म का बहुरि न बारंबार।
कबिरा सोया क्या करे जाग न जपे मुरार,
एक दिन तो सोना है लंबे पांव पसार।

वह दिन बस जल्दी ही आएगा जब हम लंबे पांव पसार लेंगे, सदा-सदा के लिए सो जाएंगे। धन्यभागी हैं वे लोग जो मृत्यु के पहले ही मृत्यु की कला सीख जाते हैं।

संत गोरखनाथ कहते हैं- मरो हे जोगी मरो, मरो मरण है मीठा, तिस मरणी मरो, जिस मरणी मर गोरख दीठा। ओशो की एक किताब का शीर्षक है ''मैं मृत्यु सिखाता हूं''। आज भगवान शिव उसी तरफ इशारा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि ''भाव करो कि एक आग तुम्हारे पांव के अंगूठे से शुरू होकर पूरे शरीर में ऊपर उठ रही है और अंततः तुम्हारा शरीर जलकर राख हो गया लेकिन तुम नहीं।''

अपनी मृत्यु की कल्पना करो कि तुम चिता पर रख दिए गए हो और जल रहे हो। एक दिन तो वह होना ही है, कल्पना के द्वारा अपनी मृत्यु का साक्षात्कार करो और तब एक अद्भुत बात घटित होती है, शरीर तो नष्ट हो जाता है लेकिन कुछ है जो बच जाता है। तुम्हारा ओंकार स्वरूप, तुम्हारा आलोक स्वरूप, तुम्हारा अमृत स्वरूप। क्षणभंगुर के कंट्रास्ट में शाश्वत का एहसास होता है।

महर्षि रमण के जीवन में ऐसी घटना घटी। जब वह छोटे थे, करीब सोलह–सत्रह साल उम्र थी। परिवार में किसी की मृत्यु हो गई। रमण ऊपर के कमरे में चले गए। उनके मन में आया कि मृत्यु क्या होती है मैं भी जानूं? वे लेट गए, उन्होंने उस मुर्दे को पड़ा हुआ देखा था, उसकी नकल करने लगे। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दिया मुर्दे के समान। भगवान शिव जिस विधि की बात कह रहे हैं यह विधि अंजाने में उनसे हो गई। अपनी मृत्यु की कल्पना उन्होंने की कि मान लो मैं मर गया। करीब घंटे भर के प्रयोग के बाद जब वे वापिस उठे तो वे एक नए ही व्यक्ति थे। रूपांतरण घट गया।

मृत्यु के साक्षात्कार ने अमृत का एहसास दिला दिया।

हमारे परमगुरू ओशो के साथ भी ऐसा ही हुआ था। बचपन में वे अपने नाना–नानी के संग रहे। नानाजी से उन्हें बहुत लगाव था, अति प्रेम था। नानाजी की मृत्यु हुई तब ओशो की उम्र मात्र सात साल थी। उन्हें बहुत गहन सदमा लगा, बहुत दुख हुआ। उस रात जब वे सोने लगे तो उनके मन में यह ख्याल आया कि अब मैं भी मर ही जाऊं तो अच्छा। अब जीकर क्या करना, जिससे मुझे इतना प्रेम था वह विदा हो गया तो अब मैं भी इस दुनिया में क्यों रहूं, मैं भी विदा हो जाऊं।

इस प्रगाढ़ भाव में डूबकर उस रात वे सोए, मृत्यु तो नहीं आई लेकिन एक अद्भुत घटना घटी। शरीर करीब–करीब मुर्दा जैसी अवस्था में पड़ा हुआ था और भीतर से चेतना सिकुड़कर अलग हो गई, स्पष्ट हो गया कि शरीर ही मरता है, चेतना कभी नहीं मरती। यह माटी का दीपक नष्ट हो जाएगा लेकिन इसकी ज्योति नष्ट नहीं होती।

सतोरी का पहला अनुभव ओशो को सात साल में ही हो गया। फिर चौदह साल की उम्र में एक दूसरा अनुभव और हुआ वह भी मृत्यु के प्रयोग के द्वारा ही हुआ और 21 साल की अवस्था में उन्होंने परमज्ञान की अवस्था को पाया।

तो आज हम जो विधि करने जा रहे हैं वह मृत्यु का ही प्रयोग है। लेकिन अधिकांश लोगों के मन में मृत्यु के प्रति बड़ा भय समाया हुआ है। ओशो ने इस विधि को समझाते हुए कहा है कि किस प्रकार से हम उस भय को दूर करें, प्राणायाम की एक खास विधि के द्वारा। फिर इस प्रयोग को करना आसान होगा।

ओशो कहते हैं कि दिन में केवल पंद्रह मिनट के लिए गहरी सांस बाहर छोड़ो, कुर्सी पर बैठ जाओ या जमीन पर और गहरी सांस छोड़ो। सांस छोड़ते समय आंख बंद रखें, जब सांस बाहर जाए तब तुम भीतर चले जाओ और फिर भीतर शरीर को अपने आप सांस लेने दो, तुम सांस न लो। जब सांस भीतर जाए, आंखें खोल लो और तुम बाहर चले जाओ, ठीक उल्टा करो। जब सांस बाहर जाए तो तुम भीतर, जब

सांस भीतर जाए तो तुम बाहर हो जाओ।

इस विधि में उतरने के पहले यह प्रयोग पंद्रह मिनट का जरूर करो ताकि तुम तैयार हो सको, मृत्यु के प्रति स्वागतपूर्ण हो सको, खुले हो सको। मृत्यु का भय खो जाएगा और केवल तभी तुम इस विधि में गहराई से उतर पाओगे। तब मृत्यु एक प्रगाढ़ विश्राम मालूम पड़ेगी। बस लेट जाओ, पहले भाव करो कि तुम मर गए, शरीर एक लाश मात्र है, लेटे रहो और अपने ध्यान को पैर के अंगूठे में ले जाओ, आंख बंद करके भीतर गति करो। अपने ध्यान को अंगूठों पर ले जाओ और भाव करो कि वहां से आग ऊपर की तरफ उठ रही है और सबकुछ जल रहा है।

जैसे–जैसे आग बढ़ती है वैसे–वैसे तुम्हारा शरीर विलीन होता जाता है। तुम अंगूठे से शुरू करो और ऊपर की ओर बढ़ते जाओ। अंगूठे से क्यों, क्योंकि अंगूठा तुम्हारे अहंकार से, तुम्हारे सिर से बहुत दूर है, तुम्हारा अहंकार सिर में केन्द्रित है इसलिए सिर से शुरू करना कठिन होगा तो दूर के केन्द्र से शुरू करो। भाव करो कि अंगूठे जल गए, धीरे–धीरे फिर पूरा शरीर जल गया और केवल राख बची।

ओशोधारा के अमृत समाधि कार्यक्रम में इस विधि को हम सभी साधकों को करवाते हैं। यह विधि अकेले घर में करने के लिए नहीं है, यहां मैं सिर्फ समझाने के लिए आप से बता रहा हूं कि किस प्रकार से की जाती है लेकिन यह गुरू के निर्देशन में ही की जाती है, अकेले में नहीं करना। और विधि करने के पहले एक संकल्प लिया जाता है कि गुरू जब निर्देश देंगे वापिस आने का तब पुनः हम शरीर में प्रवेश कर जाएंगे।

तो चलो इस विधि की शुरूआत करते हैं। सबसे पहले दोनों हाथ जोड़कर संकल्प लें कि आप मेरे सुझाव अनुसार शरीर से बाहर निकल जाएंगे और तीस मिनट बाद जब मैं वापिस बुलाऊंगा तब आप पुनः शरीर में प्रवेश कर जाएंगे। इस भाव को अपने मन में गहराएं। मेरी आवाज सुनते ही आप वापिस आ जाएंगे।

अब प्राणायाम शुरू करें, सांस बाहर छोड़ें, स्वयं को भीतर महसूस करें, जब सांस अपने आप भीतर आए तो स्वयं को बाहर महसूस करें। आंख का खोलना, बंद होना जैसा मैंने समझाया है उस प्रकार से करना। अब अपने ध्यान को सहस्रार पर केन्द्रित करें, सिर के सबसे ऊपरी हिस्से पर। सांस की यह प्रक्रिया चलने दें, कल्पना करें कि आप ऊपर की तरफ भीतर ही भीतर से देख रहे हैं। वही कल्पना आपकी जीवन ऊर्जा को सहस्रार पर केन्द्रित कर देगी। अब आराम से लेट जाएं, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल ढ़ीला छोड़ दें। भाव करें कि आपकी मृत्यु हो

गई, परिवार के लोग आसपास खड़े हो रहे हैं और अर्थी सज रही है। कबीर साहब का यह गीत सुनते हुए अपनी मृत्यु की कल्पना को प्रगाढ़ करें।

आपकी अर्थी सजाई जा रही है, फूल–मालाएं डाल दी गई हैं, चलने की बेला आ गई, अर्थी को लोग उठाकर घर के बार ले जाने लगे हैं, लोगों ने कंधे पर रख लिया है, सारी जमीन–जायदाद, मकान सब छूट गए। सब लोग दुखी हैं, उदास हैं। आपकी शवयात्रा आरंभ हो गई, अंतिम यात्रा।

मरघट की ओर सब लेकर जा रहे हैं आंसू बहाते हुए, रोते–बिलखते। चिता की लकड़ियां सजा दी गई हैं और आपकी लाश को चिता पर रख दिया गया है। अंगूठे से आग शुरू होकर धीरे–धीरे पूरे शरीर को जलाने लगी। शरीर पूरा जल गया, सिर को तोड़ने के लिए कपाल क्रिया की जानी है। एक जोर की आवाज होगी। कल्पना करना उस समय आपकी कपाल क्रिया हुई और एक प्रकाशपुंज सिर से बाहर निकल गया। एक ज्योति सहस्रार से बाहर निकल गई। वह प्रकाशपुंज ही आप हैं।

सब नष्ट हो गया। केवल वही बचा जो नष्ट हो ही नहीं सकता। वही अविनाशी स्वरूप आपका है, ओंकारमय, आलोकमय, अमृतमय।

आधे घंटे बाद जब मैं आपको पुकारूंगा तब वापस लौट आना है।

विधि-४०

मृत्यु का द्वितीय प्रयोग

यह काल्पनिक जगत जलकर राख हो रहा है, यह भाव करो; और मनुष्य से श्रेष्ठतर प्राणी बनो।

महान् पश्चिमी चित्रकार विन्सेंट वानगाग के जीवन पर एक बहुत अद्‌भुत किताब लिखी गयी है जिस किताब का नाम है– 'लास्ट फार लाइफ', जीवेष्णा। जीने की इच्छा। अगर भारत के संतों के ऊपर बुद्ध, महावीर और भगवान शिव के ऊपर कोई किताब लिखनी हो तो उसका नाम लिखना पड़ेगा– 'नो लास्ट फार लाइफ', कोई जीवेष्णा नहीं। हमारा सामान्य मन जीने के प्रति एक पागल इच्छा से भरा हुआ है, हम किसी भी शर्त में, किसी भी हाल पर जीना चाहते हैं। बिना यह पूछे कि आखिर यह जीवन किस लिए? हम क्यों जीना चाहते हैं? जीवेष्णा बड़ी गहन है।

ओशो कहते हैं– 'जीने का एक पागल, अत्यंत विक्षिप्त भाव है हमारे मन में। मरने के आखिरी क्षण तक भी हम जीना ही चाहते हैं। और यह जो जीने की कोशिश

है, यह जितनी विक्षिप्त होती है उतना ही हम दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहते हैं। अगर वैसा विकल्प आ जाए कि सारे जगत को मिटाकर भी, मुझे बचने की सुविधा हो तो मैं राजी हो जाऊंगा। सबको विनाश कर दूं, फिर भी मैं बच सकता होऊं तो मैं सबके विनाश के लिए तैयार हो जाऊंगा। जीवेष्णा की इस विक्षिप्तता से ही हिंसा के सब रूप जन्मते हैं। मरने की आखिरी घड़ी तक भी आदमी जीवन को जोर से पकड़े रहना चाहता है। बिना यह पूछे कि किसलिए? जीकर भी क्या होगा? जीकर भी क्या मिलेगा?

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन को फांसी की सजा मिली थी। जब उसे फांसी पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे तो सीढ़ियों पर चढ़ना था। नसरुद्दीन ने इंकार कर दिया, उसने कहा कि मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढूंगा। सिपाही थोड़े हैरान हुए और बोले कि क्यों नहीं चढ़ेंगे? नसरुद्दीन ने कहा कि ये सीढ़ियां कमजोर मालूम पड़ती हैं, अगर गिर पड़ा तो हाथ-पैर हमारे टूटेंगे। सिपाहियों ने कहा कि मरने वाले आदमी को क्या फर्क पड़ता है। नसरुद्दीन ने कहा कि कौन जानता है अगला क्षण, हो सकता है न मरूं, बच जाऊं किसी कारण से, मैं लंगड़ा होकर नहीं जीना चाहता। मेरी दोनों टांगे सही-सलामत रहनी चाहिए। सीढ़ियां बदलनी पड़ी, नई सीढ़ियां लाई गईं, नसरुद्दीन ने ठोक-बजाकर देखा कि मजबूत हैं कि नहीं तब ऊपर चढ़ा। मजिस्टेट ने आखिर में उससे पूछा कि नसरुद्दीन नियमानुसार तुमसे पूछता हूं तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है, क्या कुछ कहना चाहते हो दुनिया के लिए? नसरुद्दीन ने कहा कि जरूर, दिस इज गोइंग टू लेशन फार मी, ये फांसी मेरे लिए एक शिक्षा हो गई, मैं इससे एक सबक सीख रहा हूं।

मजिस्टेट हैरान हुआ, उसने कहा अब शिक्षा से फायदा क्या, अब सबक का क्या करोगे? नसरुद्दीन ने कहा, अगर कहीं कभी अगला जन्म मेरा हुआ तो मैं स्मरण रखूंगा कि इस जन्म में जिस वजह से फांसी लग रही है, जो भूल-चूक हो गई अपराध करने में जिससे मैं पकड़ा गया अगले जन्म में वो भूल-चूक नहीं करूंगा। ऐसी विक्षिप्त जीवेष्णा हमारे भीतर है, अगले जन्म तक का हिसाब-किताब चल रहा है। किसी भी हाल में हम जीना चाहते हैं। क्यों जीना चाहते हैं? लोगों ने बड़े दार्शनिक सवाल उठाए हैं कि मोक्ष कहां है, कि सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ, कि प्रलय कब होगी ये सारे दार्शनिक सवाल बचकाने हैं, व्यर्थ हैं। असली गहरे से गहरा सवाल यह है कि आखिर जीना क्यों, जीने का पागलपन क्यों?

आज भगवान शिव जो विधि हमें दे रहे हैं वह केवल उन्हीं के लिए कारगर हो

सकेगी जिनके भीतर जीने का पागलपन नहीं है। विधि नंबर 79 में उन्होंने कहा 'स्वयं के जलने की कल्पना करो'। आज विधि नंबर 80 में वे कहते हैं–

'यह काल्पनिक जगत जलकर राख हो रहा है यह भाव करो और मनुष्य से श्रेष्ठतर प्राणी बनो।' यह दूसरी वाली विधि पहले वाली विधि से ज्यादा सरल है। स्वयं की मृत्यु की कल्पना करना कठिन है। हमने कभी अपने आपको मरते तो देखा नहीं, दूसरों को मरते देखा है, दूसरों की चिता को जलते हुए बस देखा है। बहुत लोगों को हम मरघट छोड़कर आए हैं और हम हमेशा ही घर वापस लौट आते हैं, अपने मरने का भाव करना कठिन है जीवेष्णा की वजह से। सारा जगत जलकर राख हो रहा है यह प्रकरांतर से वही घटना है लेकिन इसको कल्पना करना ज्यादा आसान होगा। सारा जगत जलकर नष्ट हो रहा है। जरा सोचें, यदि आपका मकान गिर जाए या आग लग जाए या बाढ़ में बह जाए तो आप बहुत दुखी होंगे लेकिन अगर शहर के सभी मकान भूकंप में गिर गए या बाढ़ में डूब गए तब आपको उतनी तकलीफ नहीं होगी। अपनी मृत्यु कष्टदायी मालूम पड़ती है। लेकिन सारा जगत जलकर राख हो गया इसमें उतना कष्ट मालूम नहीं पड़ता।

अगर केवल आप ही बीमार हुए हैं शहर में तो बड़ी तकलीफ होगी लेकिन अगर वही बीमारी और भी सैकड़ों लोगों को लगी है तब आपको उतनी तकलीफ नहीं होगी। सांत्वना रहती है कि मैं ही अकेला बीमार थोड़ी हूं। तो पिछली वाली विधि बहुत साहसी लोगों के लिए है, जिनके भीतर जरा भी जीवेष्णा नहीं है वे कल्पना कर सकते हैं कि मेरा शरीर जलकर राख हो रहा है। आज की विधि में उतने साहस की जरूरत नहीं है। भाव करो कि पूरा जगत जलकर राख हो गया, निश्चितरूप से उसमें तुम भी राख हो गए लेकिन यह बात इसमें सीधी–सीधी नहीं कही गई है। सारा जगत जलकर राख हो गया, पूरी दुनिया नष्ट हो गई। ये भावनाएं किस प्रकार काम करती हैं?

ओशो कहते हैं कि स्कूल कालेज में बुद्धि का तो प्रशिक्षण देते हैं, विचारों का तो प्रशिक्षण देते हैं काश भावनाओं का, कल्पनाओं का भी प्रशिक्षण दें तो बहुत चमत्कार हो सकेंगे। अभी भी हमारे जीवन में भाव काम कर रहे हैं लेकिन अचेतन रूप से, हमने कहीं भाव की शिक्षा नहीं पाई, कल्पना की शिक्षा नहीं पाई। अगर इनकी शिक्षा हो सके स्कूल और कालेजों में तब मनुष्य जाति बहुत सुखी हो सकेगी। अभी भी भाव काम करते हैं लेकिन अक्सर निगेटिव ढंग से करते हैं। ख्याल करें, गांव में कोई बीमारी फैलती है, कोई छुआछूत का रोग तो बहुत लोग प्रभावित हो जाते हैं किन्तु डॉक्टर प्रभावित नहीं होते, नर्स, कंपाउण्डर और अस्पताल के कर्मचारी प्रभावित नहीं होते। कौन सी बात इनकी सुरक्षा करती है, इनके भीतर का भाव। मरीजों का इलाज

करते–करते अस्पताल के कर्मचारियों के भीतर कहीं यह भाव बैठ गया है कि मैं तो बीमार हो ही नहीं सकता, हमेशा दूसरे ही लोग बीमार होते हैं। गांव के सारे लोगों को बीमारी हो जाती है लेकिन डॉक्टरों को बीमारी नहीं पकड़ती। जबकि उनको सबसे ज्यादा एक्सपोजर हो रहा है उन कीटाणुओं का। दिन भर डॉक्टर घिरा हुआ होता है मरीजों से, नर्स और कंपाउण्डर दिन भर घिरे हुए हैं मरीजों से जिसमें से कोई खास रहा है, कोई छींक रहा है लेकिन उनको खांसी और छींक नहीं लगेगी। टीबी के मरीजों को देखने वाला डॉक्टर सुबह से शाम तक टीबी के कीटाणुओं से घिरा हुआ है लेकिन उसको टीबी नहीं होगी। उसके भीतर का भाव काम कर रहा है, उसके मन में यह भाव है कि मैं तो दूसरों को ठीक करता हूं, मैं कैसे बीमार पड़ सकता हूं।

मैंने सुनी है एक काल्पनिक कहानी। एक सूफी फकीर गांव के दरवाजे पर बैठा हुआ था। एक दिन उसने एक काली छाया को गांव में प्रवेश करते हुए देखा। उसने पूछा तुम कौन हो? उसने कहा मैं मृत्यु हूं। इस गांव से पचास आदमियों को ले जाने के लिए आई हूं। अगले हफ्ते भर के अंदर उस गांव में कोई छूत की बीमारी फैली और करीब पांच सौ लोग मर गए। एक हफ्ते के बाद वह काली छाया फिर गांव से वापस जा रही थी। उस सूफी फकीर ने कहा कि तुमने मुझसे झूठ क्यों कहा, तुमने तो कहा था कि पचास लोगों को लेने आई हो और पांच सौ लोग मर गए। मृत्यु की छाया ने कहा कि मैंने तो सिर्फ पचास ही मारे हैं, शेष साढ़े चार सौ अपने भाव की वजह से मर गए। यह सोचकर कि बीमारी फैली है मरना चाहिए और सब लोग मर रहे हैं। तो भाव हमारे जीवन में बड़ा असर और प्रभाव दिखाते हैं। लेकिन अचेतन रूप से और अक्सर निगेटिव ढंग से। यदि हमें इसका ठीक–ठीक प्रशिक्षण मिले तो बहुत सुंदर तरीके से, पाजिटिव ढंग से इनका उपयोग हो सकता है।

इस विधि के संबंध में व्याख्यान देते हुए ओशो कहते हैं– इस विधि में उतरने के पहले एक सरल सा प्रयोग करो। अपने दोनों हाथों को एक–दूसरे में गूंथ लो। आंखों को बंद कर लो और भाव करो कि हाथ ऐसे गुथ गए हैं कि अब खुल न सकेंगे और उन्हें खोलने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। शुरू–शुरू में तो हमें लगेगा कि तुम केवल कल्पना कर रहे हो और तुम उन्हें खोल सकते हो लेकिन अगर दस मिनट सतत यह भाव करते रहे कि मैं इन्हें नहीं खोल सकता, मैं इन्हें खोलने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता, अब मेरे हाथ खुल ही नहीं सकते और दस मिनट बाद फिर उन्हें खोलने की कोशिश करो। दस में से चार व्यक्ति इस प्रयोग में तुरंत ही सफल हो जाएंगे, चालीस प्रतिशत लोग तुरंत ही इस प्रयोग में सफल हो जाएंगे। दस मिनट के बाद वे

अपने हाथों को नहीं खोल पाएंगे। उनका भाव, उनकी कल्पना वास्तविक बन गई। वे जितना ही संघर्ष करेंगे हाथ खोलने के लिए, जितनी ही ताकत लगाएंगे उतना ही हाथों का खुलना कठिन होता जाएगा। उन्हें पसीना छूटने लगेगा, उन्हीं के हाथ हैं और वे देख रहे हैं कि वे बंध गए हैं और वे उन्हें खोल नहीं पा रहे। लेकिन भयभीत मत होना, पुनः आंख बंद कर लेना और भाव करना कि अब मैं हाथों को खोल सकता हूं और पांच मिनट बाद तुम अपने हाथों को खोल पाओगे। चालीस प्रतिशत लोगों को इस प्रयोग में सफलता मिल जाएगी। इन्हीं चालीस प्रतिशत लोगों के लिए इस प्रकार की भाव वाली विधि, कल्पना वाली विधि आसान है। उनके लिए कोई कठिनाई नहीं है, बाकी साठ प्रतिशत लोगों के लिए इस प्रकार की काल्पनिक विधियां कठिन पड़ेंगी, उन्हें लंबा समय लगेगा। जो भाव प्रमण लोग हैं उन्हें शीघ्रता से इसमें ध्यान कठिन हो सकता है।

चलो, अब आज की विधि को करने के लिए तैयार हो जाएं। एक संकल्प अपने भीतर करें, आधे घंटे बाद जब मैं आपको वापस बुलाऊंगा तब आप पुनः वापस अपने शरीर में आ जाएंगे, बीच में आपकी चेतना शरीर से बाहर हो जाएगी, इस संकल्प को अपने भीतर गहन करें। इस प्रकार की विधियां केवल गुरु के सानिध्य में, आश्रम में, साथ में करने वाली हैं, अकेले घर में करने के लिए नहीं हैं। भाव करें मेरे सुझाव अनुसार आप शरीर के बाहर हो जाएंगे और मेरे पुकारने पर वापस आ जाएंगे।

सब लोग लेट जाएं, विश्रामपूर्वक, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। अपनी सारी ऊर्जा को खींच लें वापस। आंख बंदकर पृथ्वी के ग्लोब की कल्पना करें। सुन्दर धरती, सूरज के चारों ओर परिक्रमा करती हुई। बड़े-बड़े महासागर। तीन चौथाई से ज्यादा नीला जल। एक चौथाई हिस्से में जमीन। जंगलों की हरियाली। ऊंचे-पर्वत, गहरी-घाटियां। गांव, कस्बे, शहर, महानगर, देश, द्वीप, महाद्वीप। मनुष्य जाति, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, भांति-भांति के जानवर, मछलियां, समुद्री जीव-जंतु। सब तरफ जीवन की धड़कन। हरी-भरी वसुंधरा। कल्पना में देखें पूरी धरती को, सूरज के चक्कर लगाती हुई पृथ्वी। यह खूबसूरत जीवंत ग्रह!

अगला चरण, कल्पना करें कि तीसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया है। पागल राजनीतिज्ञों के कारण सर्वनाश होने लगा। परमाणु बम फूट रहे हैं। मिसाइल्स चल रही हैं। पृथ्वी आग का गोला हो गई। सारा संसार जलकर राख होने लगा। बस्तियां उजड़ रही हैं। महानगर राख हो रहे हैं। मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र विनष्ट हो रहे हैं। महासागर भाप बनकर उड़ गए। जंगलों का नामो-निशां नहीं बचा। धुआं ही धुआं, आग ही आग। पूरी पृथ्वी एक मरघट बन गई। यह सुंदर ग्रह पृथ्वी जलकर भष्मीभूत होने लगी। देश के देश राख हो गए। न केवल मनुष्य जाति, पशु-पक्षी सब नष्ट हो गए। जीवन का कोई

नामोनिशान नहीं बचा, सब तरफ राख ही राख बची। सारी पृथ्वी एक धधकता हुआ अंगारा। तीसरा विश्व युद्ध अंतिम विश्व युद्ध हो गया, अब न जलने को कुछ बचा न जलाने वाली आक्सीजन गैस बची। आग बुझने लगी। धधकते हुए अंगारे जैसी हो गई यह पृथ्वी। सब समाप्त।

हां, लेकिन वही बचा जिसे मिटाने का कोई उपाय नहीं है। दिव्य आलोक से ओतप्रोत चेतना के आकाश में गूंज रहा ओंकार का महासंगीत। यही है सत्य, शेष सब स्वप्न है। आपकी आत्मा ओंकार के महासंगीत से गूंजती हुई प्रकाशमय, आलोकमय, चेतन जो शाश्वत है, सनातन है केवल वही बचा। जो अविनाशी है, अमृत है, अजन्मा है केवल वही बचा, वही आपका वास्तविक स्वरूप है। अपने आपको ठीक से पहचान लें, ओंकार और आलोक से ओतप्रोत चैतन्य हैं आप, यही आपका वास्तविक स्वरूप है, इस अशरीरी बोध को गहराएं। आधा घंटे बाद जब मैं आपको वापस पुकारूंगा तब आप पुनः अपने शरीर में प्रवेश करेंगे। हरि ओम तत्सत्।

विधि-81

अस्तित्व में मिलना

जैसे विषयीगत रूप से अक्षर शब्दों में और शब्द वाक्यों में जाकर मिलते हैं, और विषयगत रूप से वर्तुल चक्रों में और चक्र मूल तत्त्व में जाकर मिलते हैं; वैसे ही अंततः इन्हें भी हमारे अस्तित्व में आकर मिलते हुए पाओ।

आज विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नंबर 81 में भगवान शिव देवी पार्वती से कहते हैं– जैसे विषयीगत रूप से अक्षर शब्दों में और शब्द वाक्यों में जाकर मिलते हैं और वे विषयगत रूप से वर्तुल चक्रों में और चक्र मूल तत्त्व में जाकर मिलते हैं वैसे ही अंततः इन्हें भी हमारे तत्त्व में आकर मिलते हुए पाओ। यह कल्पना पर आधारित विधि लगती है। किंतु वास्तविकता में भी ऐसा ही है।

बड़ी अद्भुत विधि है, गहन प्रेम और संवेदनशीलता में डूबकर ही इसे किया जा

सकता है। सारा अस्तित्व हममें आकर मिल रहा है, इस मिलन के भाव को दो प्रकार से घटित किया जा सकता है। पहले की विधियों में हम उसकी चर्चा कर चुके हैं कि हम फैलकर सारे अस्तित्व में मिल रहे हैं और दूसरी विधि यह हो सकती है कि सारा अस्तित्व आकर हममें समा रहा है। कबीर साहब ने कहा– बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाय, हेरत–हेरते हे सखी, रहा कबीर हिराय। बूंद सागर में खो गई, छुद्र विराट के साथ एक हो गया। इसके बीस साल बाद कबीर साहब ने एक दूसरा पद लिखा– हेरत–हेरत हे सखी रहा कबीर हिराय, समुंद समाना बुंद में सो कत हेरी जाय। बड़ी अद्भुत घटना घटी, विराट ही आकर छुद्र में समा गया, अब कहां खोजें, कैसे खोजें, किसे खोजें? बूंद को तो शायद सागर में खोजा भी जा सकता था, जब सागर ही बूंद पर अवतरित हो गया अब बूंद कहां बची।

ओशो ने अपना नाम ओशो चुना स्वयं के लिए यह अंग्रेजी के शब्द ओशनिक एक्सपीरियंस से लिया गया है। अंग्रेज कवि विलियम जेम्स की कविता में इस बात का वर्णन है– सागरीय अनुभव। कबीर जिसे कह रहे हैं समुंद समाना बुंद में, वह बूंद सागरवत हो गई। वही अर्थ है ओशो का, जिसने ओशनिक एक्सपीरियंस किया, अब जो सीमित न रहा असीम हो गया, विराट के साथ जिसकी लीनता हो गई। हमारी जो सीमाएं हैं वे अहंकार के कारण हैं और अहंकार के वजह से ही हमने अपने चारों तरफ सुरक्षा कवच निर्मित कर लिया है, हम चारों तरफ से घिरे हुए हैं और इस घेरे के कारण यह जो प्रोटेक्टिव दीवार हमने अपने चारों तरफ बना ली है इसके कारण ही परमात्मा से हमारा मिलन नहीं हो पा रहा है। योगी उपाय करते हैं कि कैसे योग हो, अगर यह समझ लो कि वियोग केसे हुआ तब योग होना बड़ा आसान हो जाएगा। वियोग हुआ है हमारे अहंकार की वजह से। यदि यह अहंकार समाप्त हो जाए तब हम सदा–सदा से जुड़े ही हुए हैं, युक्त ही हैं, अस्तित्व से कभी हम टूटे ही नहीं।

आपने देखा होगा पृथ्वी पर छोटे–छोटे द्वीप, महाद्वीप जो कि देखने में कितने दूर–दूर लगते हैं, एक से अलग–थलग। कभी सागर के नीचे की जमीन का ख्याल करो तब तुम पाओगे कोई द्वीप–महाद्वीप अलग नहीं है, सारी पृथ्वी एक है। हां, बीच में जो गड्ढे हैं बड़े–बड़े उनमें आकर पानी भर गया और वे समुंदर बन गए। ऊपर–ऊपर से लगने लगा कि ये द्वीप अलग–अलग हैं, आईलैंड्स हैं लेकिन अलग–थलग कोई नहीं हैं। एक वृक्ष में बहुत से पत्ते हैं, हर पत्ता अलग–अलग नजर आता है। कभी गौर से देखो, सभी पत्ते अपने डंठल के द्वारा प्रशाखाओं से जुड़े हैं, प्रशाखाएं शाखा से जुड़ी हैं, शाखाएं तने से जुड़े हैं और तना जड़ से जुड़ा है। एक ही मिट्टी से सारे पत्तों को

भोजन आता, एक ही सूरज की रोशनी सबके लिए पोषण देती, एक ही बादल का जल सबके लिए बरसता और सबकी प्यास बुझाता, एक ही हवा सब पत्तों के लिए हवा देती, पत्ते अलग-थलग कहां, सब जुड़े हुए हैं। इस गहन जोड़ को अनुभव करो। आज की विधि सुनने में ऐसी लगती है कि कोई काल्पनिक विधि है, हमें इस मिलन की कल्पना करनी है। नहीं, जरा भी काल्पनिक नहीं है, वास्तविकता यही है।

मैं श्वांस ले रहा हूं भीतर, छोड़ रहा हूं, अगले ही क्षण उसी हवा को आप लेंगे, छोड़ेंगे तो आपके पड़ोस में बैठा मित्र लेगा, थोड़ी देर बाद पेड़-पौधे उसी श्वांस को लेंगे, फिर छोड़ेंगे तो पशु-पक्षी उसी हवा को लेंगे, फिर हम लेंगे। क्या हम सब जुड़े हुए नहीं हैं। करोड़ों मील दूर है सूरज लेकिन आज सुबह अगर सूरज न ऊगता, ठंडा पड़ जाता तो हम भी यहां ठंडे पड़ जाते। क्या सूरज से हम अलग-थलग हैं, क्या सूरज के बिना हमारा अस्तित्व संभव है? हम पूरे विराट प्रकृति से जुड़े हुए हैं, इस जोड़ को महसूस करो। कभी बैठ जाना पेड़ के नीचे आंख बंद करके और भाव करना कि तुम्हारे रंध्र-रंध्र से हवा गुजर रही है। पेड़ जिस श्वांस को छोड़ रहा है उसे तुम ले रहे हो, तुम जिस वायु को छोड़ रहे हो उसे पेड़ ले रहा है फिर एक गहन मिलन गठित होगा। तब ये छोटा सा प्रयोग छोटा सा नहीं रह जाएगा। कभी नदी में नहाते हुए या तैरते हुए डुबकी साधकर पानी के संग स्वयं को एक महसूस करो, कभी किसी वीरानी जगह में। क्योंकि लोगों के साथ एक होना तो बहुत मुश्किल है, पहले प्रकृति के साथ जुड़ो।

प्रकृति से जोड़ बहुत आसान है। कभी सुनसान, वीरान जगह में, कभी जंगल में, कभी किसी पहाड़ी स्थल पर सारी प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ महसूस करो, विश्रामपूर्ण हो जाओ, रिलैक्स हो जाओ। अहंकार की दीवार को गिरा दो। लोगों के साथ बड़ा कठिन है क्योंकि दूसरा मनुष्य भी अपने अहंकार की दीवार लेकर अपने साथ चल रहा है। उसके साथ हम रिलैक्स नहीं हो पाते। प्रकृति के साथ रिलैक्स होने की कला सीखो और एक बार तुमने उस आनंद को जान लिया, विश्रामपूर्ण होने का तब अजनबियों के साथ प्रयोग करना। जब अजनबियों के साथ सफल हो जाओ तब जान-पहचान वालों के साथ प्रयोग करना। जुड़े हुए होने का भाव गहन मैत्रीभाव का। जब उसमें भी सफलता मिल जाए तब अपने परिवारजनों के साथ करना। आपको सुनकर उल्टा लग रहा होगा, आप उम्मीद कर रहे होंगे कि जिनसे हम प्रेम करते हैं उनके साथ जुड़ना आसान है। नहीं, हजारों लोगों के जीवन को जानकर हमें यही समझ में आया कि दूर प्रकृति से जुड़ना बहुत आसान है।

अहंकार सदा डरा हुआ है, खुलता नहीं। संवेदनशील नहीं बनता। पति-पत्नी को

बात करते देखो, शब्दों की आड़ में बचने की कोशिश चलती नजर आएगी। प्रेमी मौन में निकट आते, गहन संवाद घटता। पति–पत्नी बोलते ही रहते। मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की शादी की सालगिरह पर बीवी ने पूछा कि इस वर्ष हम अपनी वर्षगांठ किस प्रकार मनाएंगे? मुल्ला ने कहा– हम कुछ नया करेंगे। चलो, दो मिनिट मौन रखेंगे।

हर जगह प्रतिरोध है अहंकार का। कोई शिकायत करता है कि मुझे प्रेम नहीं मिलता। वही जिम्मेदार है, क्योंकि वह बिल्कुल बंद है उसे मिल ही नहीं सकता। तुम साधारण तरंगों को भी प्रवेश नहीं दे रहे तो भगवत्ता को कैसे घुसने दोगे? कबीर कहते हैं– जब मैं था तब हरि नाहीं, अब हरि है मैं नाहीं। परमात्मा तब प्रवेश कर पाया जब अहंकार पूर्णतः समाप्त हो गया।

लोगों से संपर्क करने की बजाय, किसी अंधेरी रात में अपनी छत पर लेटकर तारों भरे आकाश से जुड़ जाना ज्यादा आसान है। क्योंकि तारों का कोई अहंकार नहीं है। बगीचे में टहलते हुए पेड़ों के साथ अपने आपको एक महसूस करना। वह ज्यादा आसान है। कभी सूर्य को नमस्कार करते हुए सुबह जुड़े हुए महसूस करना, वह ज्यादा सरल है। कई बार ऐसा होता है कि अजनबियों के साथ हम ज्यादा ग्रहणशील हो पाते हैं। मैंने देखा है लोगों को ट्रेन में यात्रा करते हुए अजनबी मुसाफिरों के साथ अपनी बात शेयर करते हुए, वो भी दिल खोलकर। जान–पहचान वालों के साथ बड़ा मुश्किल है। हम अपने हृदय को बंद कर लेते हैं। इसलिए मैं कह रहा हूं कि पहले प्रकृति से शुरू करना, फिर अजनबियों के साथ उस प्रेमभाव में डूबना, उसके बाद जान–पहचान वालों के संग, उसके बाद परिवार वालों के संग, वह सबसे कठिन मामला है। परिवार वालों को प्रेम करना सर्वाधिक कठिन है।

और उससे भी कठिन एक और प्रेम है वह शायद आपको ख्याल में न हो, वह है स्वयं से प्रेम। हजारों–हजारों साल से धर्मगुरुओं ने हमें इतनी आत्मनिंदा सिखाई है कि हम अपने ही प्रति बहुत नफरत से भरे हुए हैं, गिल्ट फीलिंग से भरे हुए हैं। हर व्यक्ति अपने आपको अपराधी और निंदित महसूस करता है। स्वयं को प्रेम करना सर्वाधिक कठिन है। जब तुम सारे जगत के साथ एक अनुभव कर पाओगे उसके बाद ही यह संभव होगा कि स्वयं के प्रति भी तुम प्रेमपूर्ण हो पाओगे। तब सारे अस्तित्व के साथ एक होने की यह घटना घटेगी जिसकी तरफ भगवान शिव इशारा कर रहे हैं। इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा–

'अहंकार एक मात्र प्रतिरोध है, जब तुम कहते हो नहीं, अहंकार खड़ा हो जाता

है। जब तुम कहते हो हां, अहंकार विदा हो जाता है। मैं उस व्यक्ति को आस्तिक कहता हूं जिसने अस्तित्व को हां कहना सीख लिया, जिसमें कोई 'नहीं' नहीं बची। कोई प्रतिरोध न बचा, उसे सब स्वीकार है, सबकुछ घटित होने देता है, वह अपना द्वार बंद नहीं करेगा। उसके दरवाजे मौत के लिए भी खुले होंगे। इस खुलेपन को लाना है तो ही तुम यह विधि साध सकोगे क्योंकि यह विधि कहती है कि सारा अस्तित्व तुममें बहा आ रहा है, तुममें आकर मिल रहा है, तुम समस्त अस्तित्व के संगम हो, तुम्हारी तरफ से विरोध नहीं, स्वागत है। तुम उसे अपने में मिलने देते हो, इस मिलन में तुम तो विलीन हो जाओगे, शून्य आकाश हो जाओगे, असीम आकाश क्योंकि यह विराट ब्रह्माण्ड, छुद्र चीजों में नहीं उतर सकता। वह तो तभी उतरता है जब तुम उसके जैसे असीम और विराट आकाश स्वरूप हो जाते हो। यह होता है, धीरे–धीरे होता है।'

'तुम्हें और–और संवेदनशील बनना होगा और तुम्हें अपने प्रतिरोधों के प्रति, अहंकार के प्रति सजग बनना होगा। यह विधि तभी संभव है जब तुम पूर्णरूपेण खुले हुए, ग्रहणशील हो, भयभीत नहीं हो। गहन प्रेम में ही भय मिटता है। क्योंकि यह विधि पूरे ब्रह्माण्ड को अपने में प्रवेश देने की है। प्रत्येक चीज मेरे अस्तित्व में आकर मिल रही है, मैं खुले आकाश के नीचे खड़ा हूं और सभी दिशाओं से, हर कोने से सारा अस्तित्व मुझमें मिलने चला आ रहा है इस भाव में डूबो, इस भाव में तुम्हारा अहंकार नहीं बच सकेगा।'

'इस खुलेपन में जहां समस्त अस्तित्व तुममें मिल गया तुम 'मैं' की भांति नहीं रह जाते, तुम स्वयं ही आकाश स्वरूप हो जाते हो। मैं का केन्द्र खो जाता है। संत कबीर ने कहा है– प्रेम गली अति सांकरी ता मे दो न समाय, जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि है मैं नाहिं। अहं और ब्रह्म में एक ही हो सकता है। अपने अहं को गलने दो, ब्रह्म को अवतरित होने दो।'

आओ इस विधि के लिए हम बैठते हैं। बाहर बगीचे में चलकर पेड़ों के नीचे बैठेंगे और इस भाव में डूबेंगे कि हमारे रंध्र–रंध्र से हवा गुजर रही है। न केवल हम श्वांस ले रहे हैं नाक से शरीर के रोम–रोम से श्वांस ले रहे हैं। और यह बात केवल कल्पना ही नहीं, सच्चाई भी यही है। हवा की सरसराहट की आवाज सुनना, अपनी संवेदनशीलता को जगाना। वस्तुतः हवा तुमसे गुजर रही है, तुम श्वांस छोड़ते तो वृक्ष उस श्वांस को लेते, वृक्ष श्वांस को छोड़ते तो तुम उसे लेते। जिस जमीन पर बैठे हो उस जमीन के साथ अपने को जुड़ा हुआ महसूस करो।

ठंड का यह सुहाना मौसम, सूरज की किरणें हमारे चेहरे पर पड़ रहीं हैं और

ऊष्मा प्रदान कर रही हैं। सूरज के साथ एक जोड़ को महसूस करो। जैसे करोड़ों मील दूर से सूरज ने अपने हाथ फैला दिए हैं हमें छूने के लिए। इस प्रेम भरे स्पर्श को महसूस करो, अपने द्वार–दरवाजों को खोल दो। सूरज दस्तक दे रहा है, उसे भीतर आने दो। ये केवल कल्पना नहीं है, सचमुच में सूरज का प्रकाश हमारे भीतर जा रहा है, उसकी गर्मी हमें जीवन की शक्ति दे रही है, उसकी किरणें हमारी त्वचा में विटामिन–डी निर्मित करती हैं, ठीक वैसे ही जैसे पत्तियों के क्लोरोफिल में भोजन निर्मित करती हैं। हम सूरज से जुड़े हुए हैं।

वृक्षों के साथ जोड़, धरती के साथ, सूरज के साथ जोड़, अब इसके साथ एक संवेदनशीलता और बढ़ाएं। जो भी आवाज सुनाई दे रही है उसे प्रेमपूर्वक सुनें। हवा की सरसराहट, किसी पक्षी का चहकना, दूर से आती आवाज जैसे सर्प अपनी पूरी त्वचा से सुनते हैं ऐसे सुनो। सिर्फ कानों से ही नहीं, संपूर्ण शरीर से सुनो, तुम्हारा रोम–रोम कान बन जाए, जितनी गहराई से सुनोगे उतनी ही शांति अवतरित होने लगेगी। विचार शून्यता आने लगेगी।

जिसे सुनने की कला आ गई उसे कोई धर्मग्रंथ और गुरु के प्रवचन सुनने की जरूरत नहीं है। पत्तों की खड़खड़ाहट में, पक्षियों की चहचहाहट में, नदी के कलकल में परमात्मा ही प्रगट हो रहा है। वह नादब्रह्म ही सब प्रकार की ध्वनियां बन गया। सुनो, गौर से सुनो। सारे अस्तित्व से ध्वनियां आकर तुममें समाहित हो रही हैं। भगवान शिव कहते हैं जैसे अक्षर शब्दों में, शब्द वाक्य में जाकर मिलते हैं, जैसे वर्तुल चक्रों में और चक्र मूल तत्व में जाकर मिलते ठीक ऐसे ही सारे अस्तित्व को स्वयं में समाहित होता हुआ महसूस करो। विश्राम, विश्राम, तुम तुम न रहे, अस्तित्व अस्तित्व न रहा, दोनों एक हो गए।

विधि-82

मेरा विचार और मैं-पन

अनुभव करो : मेरा विचार, मैं-पन, आंतरिक इंद्रियां-मुझ!

किसी शायर ने लिखा है–

टुकड़े टुकड़े दिन बीता, धज्जी धज्जी रात मिली,
जितना जिसका आंचल था, उतनी उसे सौगात मिली।
रिमझिम रिमझिम बूंदों में, जहर भी है और अमृत भी,
आंखें हंस दीं दिल रोया, यह अच्छी बरसात मिली।
जब चाहा खुद को समझें, हंसने की आवाज सुनी,
जैसे कोई कहता हो, ले फिर तुझको मात मिली।

जब भी हम खुद को समझने चलते हैं, स्वयं को खोजने चलते हैं, बुरी तरह से हारते हैं। ले फिर तुझको मात मिली और इस हार का कारण, हमने खुद को होना समझा है वह अहंकार हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। अहंकार स्वयं ही एक असत्य है और इसलिये असत्य कभी जीत नहीं सकता। ऋषियों ने कहा है, सत्यमेव जयते। केवल सत्य की ही विजय हो सकती है, अहंकार कैसे जीतेगा? जीतने की कोशिश कर सकता है, जीत नहीं सकता। अहंकार केवल एक मान्यता है हमारा अंध विश्वास, बस हम मानते हैं कि है। वह है कहीं भी नहीं, उसकी कोई सत्ता नहीं है, उसका कोई एक्जिस्टेंस नहीं है। मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन एक नये शहर में पहुँचा। उसे कुछ काम था वहाँ के महापौर से, मेयर साहब से, उसने स्टेशन पर कुली से पूछा कि मैयर साहब किस प्रकार के आदमी हैं कुछ बताओ? कुली ने गुस्से में नसरूद्दीन की तरफ देखा और कहा कि उस दुष्ट शैतान के बारे में न पूछो, महाबदमाश। नसरूद्दीन थोड़ा हैरान हुआ, एक कुली भी इज्जत नहीं करता, मेयर की। आगे बढ़ा, किसी चाय वाले से पूछा, उसने कहा अगर मैं जिन्दा रहा, बूढ़ा हो गया हूँ वैसे में, अगर मैं जिन्दा रहा तो अगले चुनाव में उसको वोट कभी न दूंगा। नसरूद्दीन ने एक पनवाड़ी से पूछा कि मेयर साहब के बारे में क्या ख्याल है। उसने कहा, किसी काम से आये हो क्या? नसरूद्दीन ने कहा, उनसे कुछ काम है, उस पनवाड़ी ने कहा वो निकम्मा किसी काम का नहीं है। एक वृद्ध महिला से पूछा कि उसका घर कहाँ है, मेयर साहब का। उसने कहा कि कहीं तुम उस शैतान के रिश्तेदार तो नहीं हो।

नसरूद्दीन ने देखा कि शहर के सारे लोग मेयर साहब से नाराज हैं, गया, उनसे मुलाकात की, बातचीत की, अन्त में उनसे पूछा कि आप कब से मेयर हैं, उसने कहा कि चार साल से इस सिरदर्द को सम्भाले हूँ, बड़ा काम रहता है, सुबह से लेकर रात तक व्यस्त रहता हूँ, शहर की सारी समस्यायें निपटानी पड़ती हैं। नसरूद्दीन ने पूछा कि इसके लिये आपको तनख्वाह कितनी मिलती है? मैयर ने कहा कि यह पद तनख्वाह के लिये नहीं है, तनख्वाह तो इसकी कुछ भी नहीं होती, बस पद–प्रतिष्ठता, इज्जत के खातिर इतना काम कर रहा हूँ। कौन तुम्हारी इज्जत कर रहा है, यह प्रतिष्ठा, यह अहंकार, बस तुम भर मान रहे हो कि है और कोई भी नहीं मान रहा। यह अहंकार झूठ है और इसलिए इस अहंकार को सम्भालने में हम जो समय और शक्ति बरबाद कर रहे हैं वह सब व्यर्थ जा रही है।

आज के विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नम्बर 82 में भगवान शिव पार्वती से कहते हैं, हे देवी! अनुभव करो, मेरा विचार, मैं पन, आन्तरिक इन्द्रियाँ और मुझ। एक–एक शब्द को गौर से समझना, सबसे पहले तो वे कहते हैं अनुभव करो, हम अनुभव की

भाषा हीं भूल गये हैं। सिर में सोच–विचार चलते हैं, अनुभव होता है हृदय में। हमें अपनी संवेदनशीलताओं को जगाना होगा। जब चाय पी रहे हो तो चाय की खुशबू का अहसास करो, जब भोजन कर रहे हो स्वाद का पूरा–पूरा अनुभव करो, अपने परिवार वालों के बीच, मित्रों के बीच जब हो, खोपड़ी से न जिओ, थोड़ा हृदय से, छाती से जीना सीखो। हमारे सारे स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी हमें विचार करना तो सिखाते हैं, विज्ञान तो सिखाते हैं, कहीं भी प्रेम का पाठ नहीं सिखाया जाता, संवेदनशीलता जगाने के उपाय नहीं सिखाये जाते। धर्म में प्रवेश केवल उन्हीं को मिल सकता है जो भाव के तल पर जीना सीख गये हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन के बारे में, एक कॉफी हाउस में बैठा था, कोई सैनिक युद्ध से वापिस लौटा था और वह कॉफी हाउस के लोगों को बड़ी ऊँची–ऊँची बातें सुना रहा था कि उसने इतने लोगों की गर्दनें काट दीं, इतने लोगों का कत्ल कर दिया दुश्मनों को किस तरह गाजर–मूली की तरह काटा। नसरूद्दीन को भी जोश आ गया, उसने कहा क्या तुमने काटा, अरे एक जमाना था हमारा, युवावस्था में हम भी गये थे युद्ध में, हजारों दुश्मनों के पैर गाजर–मूली की तरह काट दिये। वह सैनिक थोड़ा हैरान हुआ उसने कहा, सिर काटने की बात हमने बहुत सुनी ये पैर काटना पहली बार सुन रहे हैं, बेहत्तर होता आप दुश्मनों के सिर काटते। नसरूद्दीन ने कहा सिर तो पहले हीं कोई काट चुका था, जब हम पहुँचे तब मुर्दा लाशें पड़ी हुई थीं।

अध्यात्म में प्रवेश उसी को मिल सकता है जो अपना सिर काटने को राजी हो। तो सबसे पहले सिर से नीचे उतरना, हृदय के तल पर आना। भगवान शिव कह रहे हैं हे देवी! अनुभव करो, इसके बाद वे कहते हैं मेरा विचार, एक प्रश्न चिह्न, जो भीतर विचार चल रहे हैं, क्या वे वास्तव में तुम्हारे हैं? जरा गौर से देखना कोई भी विचार तुम्हारा नहीं है, कुछ माता–पिता ने दिये, कुछ परिवार–समाज ने दिये, कुछ स्कूल के शिक्षकों ने दिये, कुछ पण्डित–पुरोहितों ने, कुछ अखबार के संपादकों ने, कुछ टेलीविजन के न्यूज रीडर ने, कुछ यहाँ–वहाँ से कचरा कूड़ा तुमने बटोर लिया है, इसमें तुम्हारा विचार कोई भी नहीं। ये विचार बिना जड़ों के, आवारा बादलों के समान हैं। जब तक तुम इन्हें अपना समझ रहे हो तब तक इनसे मुक्ति न मिलेगी, तब तक तुम इन्हें पकड़ोगे, इन्हें बचाने की कोशिश करोगे, इनके लिये लड़ने–झगड़ने को तैयार हो जाओगे। जरा स्मरण करो, बचपन में तुम्हारे विचार थे वे कहाँ गये? गुड्डे की टाँग टूट गई थी और तुम रात भर रोए थे, सोये नहीं थे, खाना नहीं खाया था, फिर युवावस्था आ गई, खेल–खिलौने छूट गये, अब तुमसे कोई कहे कि कहाँ गये वो गुड्डे–गुड़िया? तुम कहोगे, अरे! छोड़ो बचपन की बातें लेकिन फिर जवानी के गुड्डे–गुड़िया आ गये।

फिर प्रेम कहानी शुरू हो गई और फिर वही जीने–मरने का सवाल पैदा हो गया, फिर एक दिन प्रौढ़ावस्था आ जायेगी तुम्हारी, कोई तुम्हें याद दिलायेगा क्या हुआ उस गुड़िया का? जिससे तुम शादी करने की सोच रहे थे और नहीं हो पाई थी। तुम कहोगे अरे भूल–भाल भी गये, कहाँ की बातें, जवानी का जोश था।

सवाल है कि अभी प्रौढ़ावस्था में जिस विचार को तुम अपना विचार कह रहे हो, क्या वह तुम्हारा है और क्या वह टिकने वाला है? वह भी बादलों की तरह आया और चला जायेगा, कोई भी विचार तुम्हारा नहीं। जब तक इस भांति विचारों को न देखो, उनके साक्षी और द्रष्टा न हो पाओगे। विचारों से अपनेपन का भाव तोड़ो, तब और भीतर प्रवेश करो। शिव कहते हैं– 'मैं पन', वह जो हमारा अहंकार है, इगो है, जिसको हम स्वयं का होना समझ रहे हैं, उस पर एक प्रश्न चिह्न लगाओ, जरा गौर से देखा है क्या? तुम पाओगे वह भी एक ख्याल मात्र है। बस तुम समझ रहे हो कि तुम हो, वास्तव में तुम हो नहीं। बुद्ध ने इसलिये आत्मा शब्द की जगह अनात्मा शब्द का प्रयोग किया। नो सेल्फ होने जैसी कोई चीज नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, बुद्ध की बात लोगों को बहुत बुरी लगी, उन्हें नास्तिक कहा गया। बुद्ध नास्तिक नहीं हैं, सत्य की घोषणा कर रहे हैं, वे कह रहें हैं कि भीतर जाओ और खोजो, कोई भी मैं जैसा नहीं मिलेगा। मैं पन केवल एक ख्याल है झूठा ख्याल, भीतर प्रवेश करोगे कोई आत्मा न मिलेगी।

भगवान शिव कह रहे हैं तब और भीतर प्रवेश करो। मुझ, यह मुझ शब्द थोड़ा अजीब लगता है, कहते हैं, आंतरिक इन्द्रियाँ और मुझ, कुछ वाक्य अधूरा सा लगता है। आन्तरिक इन्द्रियाँ एक बार जग जायें, खुल जायें, फिर मुझ का अहसास होता है, वह अहंकार से भिन्न हैं, मैं पन से अलग है वह बात। आंतरिक इन्द्रियाँ हमारी चेतना की, देखने सुनने की क्षमतायें हैं। हमारी जो कांशियसनेस है वह भीतर सुन सकती हैं ओंकार की ध्वनि, वह भीतर देख सकती हैं आंतरिक आलोक को, वह भीतर दिव्य सुगन्ध और दिव्य स्वाद को महसूस कर सकती है। केवल हमारे शरीर की बहिर्इन्द्रियाँ ही नहीं हैं, चेतना की अन्तस इन्द्रियाँ भी हैं। उन अन्तर्इन्द्रियों को एक बार जगाना होगा और तब उस चैतन्यता में मुझ का अहसास होता है। इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा– अगर तुम अपनी आंतरिक इन्द्रियों को पहचान लो, तो तुम समाज से बिल्कुल मुक्त हो गये।

यही मतलब है जब तुमने शास्त्रों में पढ़ा था कि सन्यासी समाज का हिस्सा नहीं है क्योंकि वह स्वयं को आन्तरिक इन्द्रियों के द्वारा जानता है, अब उसका अपने से संबंध दूसरों के मतों पर आधारित नहीं, अब स्वयं का ज्ञान किसी और के माध्यम से

देखा गया प्रतिफलन नहीं है, अब उसे खुद को जानने के लिये किसी दर्पण की जरूरत नहीं है, उसने आन्तरिक दर्पण को पा लिया, वह सीधा–सीधा स्वयं को जानता है और आन्तरिक सत्य को तभी जाना जा सकता है जब तुमने आन्तरिक इन्द्रियों को पा लिया हो, तब तुम आन्तरिक इन्द्रियों के द्वारा स्वयं को देखते हो, स्वयं को सुनते हो और तब अहसास होता है मुझ, इसे शब्दों में कहना कठिन है इसलिये मुझ शब्द का प्रयोग किया गया है। कोई भी शब्द गलत होगा, मुझ भी गलत है। लेकिन मैं विलीन हो गया, अहंकार गया। स्मरण रहे, इस मुझ का मैं पन से कुछ लेना–देना नहीं है। जब सारे विचार निर्मूल हो गये, मैं पन विलीन हो गया, आन्तरिक इन्द्रियाँ प्रकट हो गयीं तब मुझ का अहसास होता है, तब पहली दफा मेरा असली होना प्रकट होता है, वही असली होना मुझ है।

बाहरी संसार न रहा, विचार न रहे, अहंकार का भाव न रहा और मैंने अपने आन्तरिक इन्द्रियों को, चैतन्य को, मेधा को, बोध को या उसे जो भी नाम दो उसे जान लिया, तब इस आन्तरिक इन्द्रियों के प्रकाश में मुझ का अवतरण होता है। यह मुझ तुम्हारा नहीं है, यह तुम्हारा अन्तर्तम है जिसे तुम अभी तक नहीं जानते। यह मुझ अहंकार नहीं है, यह मुझ तुम्हारे विरोध में नहीं है, यह मुझ जागतिक घटना है, यह विराट है, असीम है, इसमें सबकुछ निहित समाया हुआ है। यह लहर नहीं है, सागर है। अनुभव करो मेरा विचार, मैं पन, आन्तरिक इन्द्रियाँ और मुझ और तब एक अन्तराल प्रगट होता है, मुझ अभिव्यक्त होता है। व्यक्ति जानता है कि मैं ब्रह्म हूं, अहम् ब्रह्मास्मि। यह जानना अहंकार का दावा नहीं है क्योंकि अहंकार तो जा चुका। इस विधि के द्वारा तुम अपना रूपान्तरण कर सकते हो। लेकिन सबसे पहले भाव जगत में स्थिर होना सीखो, हृदय के द्वारा जीना सीखो। बड़ी प्यारी विधि है, बड़ी सरल। लेकिन शर्त यही है भाव जगत से जीना सीखो। महर्षि रमण अपने शिष्यों को एक प्रयोग करवाते थे कि खोजो मैं कौन हूँ? तिब्बत के साधक एक प्रयोग करते हैं कि मैं कहाँ हूँ? बड़े प्यारे प्रयोग हैं। आओ, हम भी इन प्रयोगों में डूबते हैं और उस वास्तविक मैं को खोजते हैं, झूठे मैं से मुक्त होते हैं। धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आयें आज की जो ध्यान विधि है महर्षि रमण की ध्यान विधि, जिसमें हम आँख बन्द करेंगे और पूछेंगे स्वयं से मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ? आँखें बन्द कर लें। और बोले मुँह से–

मैं कौन हूँ? ..... शान्त हो जायें, कोई उत्तर नहीं आया। कोई उत्तर नहीं आया। अब तिब्बती विधि से पूछें– मैं कहाँ हूँ? मैं कहाँ हूँ? ..... लाख खोजा पर मैं नहीं मिला, खोजत खोजत हे सखी रहा कबीर हिराय। आयें अब शिव की विधि में, बैठ जायें आँखें बन्द रखें, बिल्कुल चुप्प होकर महसूस करना है मेरा विचार, मैं पन यानि प्रेजेन्स, अहम भाव, आन्तरिक इन्द्रियाँ, भीतर लगातार कुछ गूँज रहा है, लगातार... कुछ बरस रहा है... इसे महसूस जो कर रहा है वह आन्तरिक इन्द्रियाँ और इस आन्तरिक इन्द्रियों को भी महसूस करने वाला जो तत्त्व है वह है मुझ, एसेन्स, ब्रह्मसत्ता। अब धीरे से शवासन में लेट जायें, अनुभव करें, महसूस करें अहम् ब्रह्मास्मि! अहम् ब्रह्मास्मि! आत्मसत्ता यानि मुझ, यही जागतिक विराट सत्ता है, मुझमें सारा ब्रह्माण्ड समाया है। अहम् ब्रह्मास्मि! दो चार गहरी श्वांसें लें, आहिस्ता–आहिस्ता उठकर बैठें, दोनों... हाथ... जोड़कर... स्वयं को नमस्कार कहें। जनक की तरह मेरा मुझको नमस्कार...।

विधि-83

सौंदर्य में विलीन

कामना के पहले और जानने के पहले मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं! विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ।

जिसे चाहा सभी ने दिल समझकर, वे धोखा खा गए मंजिल समझकर। जहां भी हमने चाहा वहां हमने धोखा खाया। चाहत में ही धोखा छिपा है। चाहत यानि स्वप्न, भविष्य की कामना। वह है नहीं, केवल हमारी कल्पना है, निश्चित् ही धोखा सिद्ध होगी।

जिसे चाहा सभी ने दिल समझकर,
वे धोखा खा गए मंजिल समझकर,
गमों की मोम ठंडी हो गई है,
बहुत अच्छा किया संगदिल समझकर।
पलटकर यूं न देखो तुम मुझे बस,
तड़पता छोड़ दो बिस्मिल समझकर,

तमन्नाओं ने यूं झटका है दामन,
नाकामे चीज को बुज़दिल समझकर।

काश, तमन्नाएं झटक जाएं, छोड़कर चली जाएं तो हमारा असली जीवन शुरू हो। तमन्नाओं को, कामनाओं का जीवन भी भला कोई जीवन है। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या मृत्यु के बाद जीवन है? मैं उनसे कहता हूं, जरा गौर से यह तो देखो कि क्या मृत्यु के पहले जीवन है?

कामनाओं और वासनाओं से भरा यह जीवन भी कोई जीवन है? यह तो धीरे–धीरे बस मरने का ही नाम है। खूब धोखा खा रहे हैं हम।

कामनाएं यानि स्वप्न, क्षितिज जैसे जो कहीं हैं ही नहीं। वे हमें आकर्षित कर रहे हैं। हम उसके पीछे भाग रहे हैं और इस भागदौड़ को, इस आपाधापी को हमने जीवन समझ लिया है और फिर हम कह रहे हैं कि हम तड़प रहे हैं।

पलटकर यूं न देखो तुम मुझे, बस, तड़पता छोड़ दो बिस्मिल समझकर।

काश, हमें थोड़ा भी होश आ जाए, थोड़ा भी ख्याल आ जाए अपना फिर इन तमन्नाओं को छूटना दुखदायी न होगा। तड़पने में नहीं, समाधि में ले जाएगा।

कबीर साहब ने कहा है– शबद निरंतर में मन लागा, मलिन वासना त्यागी। कहा है कि मलिन वासनाएं हमें त्याग करके चली गईं। जब से शबद निरंतर में, ओंकार में, प्रभु की वाणी में हमारा मन लगा, तमन्नाएं झटककर चली गईं। तमन्नाएं छोड़कर चले जाना सौभाग्य का दिन है। यह कोई दुख और रोने की बात नहीं है। मलिन वासनाएं, भविष्य के सपनों में कब तक उलझे रहोगे?

आज के सूत्र में भगवान शिव पार्वती से कहते हैं कि हे देवी! ''कामना के पहले और जानने के पहले मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं।'' हम जिसे स्वयं का होना समझ रहे हैं वह कामनाओं की, विचारों की, अज्ञान की गठरी के अलावा और है क्या? इसी कचरे–कूड़े को हमने स्वयं का होना समझ लिया है।

मैं आपसे पूछूं कि बताइए मकान यानि क्या? आप कहेंगे ईंट, गारा, सीमेंट, लोहे का जोड़, गलत! मकान सिर्फ इतना ही नहीं है, तुम ईंटें खिसका लो, लोहा निकाल लो, सीमेंट–गारा दूर कर लो तो पीछे क्या शेष बचता है? तुम कहोगे मकान समाप्त हो गया। मैं कहता हूं, नहीं, पीछे एक खाली स्पेस है, एक आकाश शेष बचा। असली मकान वही था।

अभी आप यहां ओशो मंदिर में बैठे हैं तो वास्तव में आप किस चीज में बैठे हैं?

दीवाल में बैठे हैं कि छत में बैठे हैं, कि खिड़की–दरवाजे में, कि खम्भे के भीतर बैठे हैं। आप उस इनर स्पेस में बैठे हैं। असली ओशो मंदिर क्या है? वह भीतर का रिक्त स्थान, दीवालों ने उसे घेरा है, ऊपर से छत ने उसे ढंका है लेकिन वास्तव में हम जिसे कमरा कहते हैं वह भीतर का खाली स्थान है। जिस मकान में हम रहते हैं वह भीतर का खाली स्थान है उससे अपना आइडेंटीफिकेशन कर लो। हमने दीवालों को, खम्भों को, छतों को स्वयं का होना समझ लिया है।

ये कामनाएं, वासनाएं, चाहतें, विचारों को ही हमने स्वयं का होना समझ लिया है। किसी से पूछो, आपका परिचय? कहता है, यह है मेरा नाम, मेरे पिता का नाम यह है, कुल और वंश यह है, मेरी शिक्षा, मेरा प्रोफेशन, फलां शहर का होने वाला हूं, इस देश का हूं, यह मेरा धर्म है। वह अपने आपको क्या समझ रहा है।

तुम कहते हो कि तुम हिन्दू हो इससे क्या पता चलता है? इससे यही पता चलता है कि गीता के विचार तुमने पढ़ लिए, रट लिए। हिन्दू होना विचारों का एक संग्रह है। मुसलमान होना किन्हीं दूसरे विचारों का संग्रह है, उसने कुरान पढ़ ली है। जब तुम कहते हो मैं कम्युनिस्ट हूं, तुम विचारों के एक संग्रह मात्र हो कि इसके अलावा और कुछ भी हो? नहीं, तुम विचारों के संग्रह ही हो।

छोटे बच्चों से पूछो तो वे भविष्य के सपने के बारे में सोचते हैं। उनसे पूछो कि तुम क्या हो? वे कहते हैं हम बड़े होकर डॉक्टर बनेंगे, कोई कहता है मैं कंप्यूटर सांइटिस्ट बनूंगा। अभी से उस कामना में जीना शुरू कर दिया। अगर कोई कामना न हो, कोई विचार न हो तब तुम होओगे कि नहीं होओगे? निश्चितरूप से जैसा तुम अभी स्वयं को जानते हो वैसे तो न होओगे। यह तो केवल कामनाओं की गठरी का नाम है लेकिन फिर भी पीछे कुछ बचेगा वह तुम्हारी वास्तविक आत्मसत्ता होगी।

भगवान शिव कह रहे हैं कि कामना से पहले और जानने के पहले मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं? विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ। विमर्श करने का अर्थ विचार करना नहीं होता, विमर्श करने का मतलब होता है जागरूक होकर देखो, निरीक्षण करो और अचानक तुम पाओगे कि भीतर एक रिक्त स्थान का उदय हुआ और उसी में है अद्भुत सौंदर्य। कामनाओं में कैसा सौंदर्य, विचारों में कैसा सौंदर्य। विचार तो ऐसे हैं जैसे मच्छर भिनभिना रहे हों, ऐसे ही हमारी खोपड़ी में विचार भिनभिना रहे हैं। सारी कुरूपता के कारण वही हैं।

मैं पढ़ रहा था एक चुटकुला। एक चींटी ने अंतर्जातीय विवाह किया एक मच्छर

से। चार घंटे हो गए कोई संतान न हुई। सहेलियों ने आकर पूछा कि अरे! चार घंटे हो गए और अभी तक कोई संतान नहीं हुई? चींटी ने कहा कि मैं परिवार नियोजन के साधन का उपयोग कर रही हूं। उसकी सहेलियों ने पूछा कौन सा साधन? उसने कहा कि मैं लिपिस्टिक की जगह ओडोमास उपयोग करती हूं।

दूसरे दिन सुबह चींटी बैठकर रो रही थी, सफेद कपड़े पहनकर, उसने अपना सिंदूर पोछ लिया था। सहेलियों ने पूछा कि क्या हुआ? चींटी ने कहा कि क्या बताऊं, बड़ी दुर्घटना हो गई, मैंने पुरानी आदतवश आज रात को भी आलआउट कमरे में लगा लिया था इसलिए पतिदेव समाप्त हो गए।

तो ये जो विचारों के मच्छर हमारे चारों तरफ मंडरा रहे हैं इनको साक्षीभाव के ओडोमास से दूर किया जा सकता है। इसी का नाम ध्यान है। और आलआउट यानि समाधि। मच्छर सदा–सदा के लिए समाप्त। ये चेतना की चींटी अंतर्जातीय विवाह कर बैठी है विचारों के मच्छरों से। काश, ये संबंध टूटें। लेकिन याद रखना, रोने की जरूरत नहीं है, सिंदूर पोछने की जरूरत नहीं है। ये खुशी मनाने का क्षण है। क्योंकि ये जो बेमेल मेल हुआ है इसमें दुख ही दुख था।

विचारों और कामनाओं से ग्रस्त होकर हमने कौन सा सुख पाया। वे सुहाग के दिन नहीं थे, अब सुहाग के दिन आए।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने कोर्ट में जज से कहा कि हुजूर, मैं इस चरित्रहीन स्त्री से तलाक लेना चाहता हूं। जज ने पूछा कि क्यों इस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाते हो? मुल्ला ने कहा कि हुजूर, इससे निकाह तो मैंने किया है और यह खुदा से बच्चा मांगती है। तुम किससे मांग रहे हो इससे फर्क नहीं पड़ता। लोग अपनी कामनाओं को धार्मिक रूप दे देते हैं।

पहले किसी और से मांग रहे थे, किसी से प्रेम मांग रहे थे, किसी से शिक्षा मांग रहे थे, किसी से धन मांग रहे थे, किसी से इज्जत और सम्मान मांग रहे थे, आदर के लिए गिड़गिड़ा रहे थे और अब भगवान से मांगने लगे लेकिन मांग जारी है। मांग बंद नहीं हुई, मंदिर–मस्जिद, चर्चों में जाकर लोगों की प्रार्थनाएं सुनो, सिवाय मांग के वे और क्या हैं? काश, इन मांगों के प्रति हम जागें।

इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा, कामना के उठने के पहले स्मरण रखो, जब कामना आ जाए तो स्मरण रखो और जब कामना विदा हो जाए तो भी स्मरण रखो। कोई विचार उठे तो ख्याल रखो, उसे देखो, बस देखो कि विचार

उठा, देर–अबेर वह विदा हो जाएगा क्योंकि सबकुछ क्षणिक है और बीच में एक अंतराल होगा, दो विचारों के बीच में खाली जगह है, दो कामनाओं के बीच में अंतराल है और उस खाली जगह में मैं नाम की, अहंकार नाम की कोई चीज नहीं है।

मन में चलते हुए विचारों को देखो और तुम पाओगे कि वहां अंतराल हैं। चाहे वह कितना ही छोटा हो मगर अंतराल है। एक विचार जाता है, दूसरा आता है, फिर एक गैप। उस गैप में मैं नहीं है और वह अंतराल ही तुम्हारा असली होना है। वही तुम्हारा वास्तविक अस्तित्व है। आकाश में विचार के बादल आ–जा रहे हैं किन्तु दो बादलों के बीच में गैप्स हैं और उन गैप्स में ही आकाश है।

शिव कहते हैं कि विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ। विमर्श करो कि कामना पैदा हुई और कामना गई और उस अंतराल में मैं मौजूद हूं। उस कामना ने मुझे अशांत नहीं किया। विमर्श करो कि कामना आई, गई, वह थी, अब नहीं है और मैं अनुद्विग्न हूं, ज्यों का त्यों हूं, मुझमें कोई बदलाहट नहीं हुई। विचार करो कि कामना छाया की भांति आई और चली गई। उसने मुझे स्पर्श भी नहीं किया।

बड़ी ही प्यारी यह विधि है। और ओशो सजेस्ट करते हैं कि अच्छा हो कि जोर से बोलो। तुम सड़क से जा रहे हो और एक कार गुजरी और तुम्हारे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि काश, यह कार मेरे पास हो, अब जोर से बोलो कि मेरे भीतर कामना उठ रही है। मेरे भीतर विचार उठा और अचानक तुम पाओगे कि एक पृथकता निर्मित हो गई। इस कामना से, विचार से तुम दूर हो गए।

यह शुरूआत में बोलना बड़ा ही उपयोगी होगा। धीरे–धीरे फिर तुम साक्षीभाव की साधना सीख जाओगे, पृथकता को सीख जाओगे फिर बोलने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन शुरूआत में यह उपयोगी होगा। जोर से बोलो कि मेरे भीतर कामना उठ रही है, मेरे भीतर विचार आया और अचानक एक गैप निर्मित हो जाएगा। उस गैप में स्वयं का साक्षात् होगा। बड़ी ही प्यारी विधि है यह। चलो, इसका प्रयोग करते हैं।

1. खड़े होकर चारों ओर देखो। मन ही मन में कहो कि मेरे भीतर कामना उठ रही है, विचार चल रहे हैं।

2. अब आंख बंदकर लो। अचानक निष्कामना और निर्विचार की स्थिति जन्म गई। इसे चुपचाप देखते रहो।

3. आराम से बैठ जाओ। किताब पढ़ते हुए अपने गेसटाल्ट को बदलो, पंक्तियों

की बजाय खाली स्थान को देखो। तुरंत विचार थम गए। कामनाएं विदा हो गईं।

4. अंतिम चरण– शिथिलीकरण। भाव करो कि देह के समस्त अंग शिथिल हो रहे हैं। रिलैक्स। समस्त अंग शिथिल हो रहे हैं। रिलैक्स।

सांस धीमी हो रही है। सांस धीमी हो रही है। शरीर शिथिल और सांस धीमी हो गई है।

अब मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। मन बिल्कुल शांत हो गया।

न कोई कामना है, न कोई विचार शेष बचा।

अब क्या बाकी रहा? देखो, आप हो? क्या आप हो?

विधि-84

आसक्ति से दूर

शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओ और यह भाव करो कि मैं सर्वत्र हूं। जो सर्वत्र है वह आनंदित है।

उदासियों ने मेरी आत्मा को घेरा है,
रुपहली चांदनी है और घुप्प अंधेरा है
कभी टिमटिमाया तारा, तो कभी जुगनू,
अपनी किस्मत में लिखा नहीं सवेरा है
क्षितिज के पार जो दिखती है रौशनी जैसी,
वह रौशनी है, खुदा जाने या अंधेरा है
खुदा के वास्ते मेरे गम तो न छीनो मुझसे,
इसे तो रहने दो मेरा, यही तो मेरा है
सिवाय गमों के, उदासियों के, अंधेरों के, हमारे पास है क्या और? और इन सब

का कारण सारे दुखों का कारण है। शरीर के प्रति हमारी आसक्ति और मोह। हम हैं चैतन्य स्वरूप और स्वयं को मान बैठे हैं शरीर। यहाँ से दुखों की शुरूआत होती है और जब तक यह मोह भंग न हो तब तक आनंद की कोई संभावना नहीं और चूँकि आदिकाल से अनंत–अनंत जन्मों में हम विभिन्न–विभिन्न शरीरों से बंधे रहे इसलिये यह आसक्ति का पैदा हो जाना भी स्वाभाविक है लेकिन मनुष्य योनि में आने के बाद अब यह विवेक उत्पन्न होना चाहिये।

आज की विधि में भगवान शिव कहते हैं पार्वती से कि शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओ और यह भाव करो कि मैं सर्वत्र हूँ। जो सर्वत्र है वह आनंदित है, जो देह की सीमा में कैद है, बंधन में है वह कैसे आनन्दित हो सकता है, सीमा ही तो हमारा बंधन है। मनुष्य जाति का पूरा इतिहास उठा कर देखो, कितनी लड़ाइयाँ हुई, कभी राजनीतिक स्वतंत्रता के लिये, कभी आर्थिक स्वतंत्रता के लिये, विभिन्न प्रकार की गुलामियों से लड़ाई ही लड़ाई, लड़ाई ही लड़ाई, उसी से सारा इतिहास पटा है। ये सारी लड़ाईयाँ वास्तव में स्वतंत्रता पाने के लिये लड़ाईयाँ हैं। किन्तु वह स्वतंत्रता मिलती नहीं जब तक कि आत्मिक स्वतंत्रता न मिले। बाहर हो सकता है कि तुम्हारा राज्य बड़ा हो जाये, साम्राज्य का विस्तार कर लो, फिर भी तुम्हारे विस्तार की एक सीमा होगी, असीम नहीं हो जाओगे। सिकन्दर भले ही विश्व विजेता बन जाये, फिर भी विश्व की तो एक सीमा है।

ये पृथ्वी है कितनी सी, इस बड़े अस्तित्व में धूल के कण के बराबर भी नहीं। हम धन कमाना चाहते हैं शायद इसलिये कि हमारा विस्तार हो जाये। हम चाहते हैं बहुत लोग हमें प्रेम करें, हमारी यश और प्रतिष्ठा हो, वह भी विस्तार का एक उपाय है, हम असीम होना चाहते हैं, विराट हो जाना चाहते हैं लेकिन यह अचेतन रूप से चल रहा है, साफ–साफ हमें नहीं है कि क्यों हम धन के दीवाने हैं, क्यों हम शक्ति की पीछे दीवाने हैं, कारण स्पष्ट हो जाये तब खोज भी स्पष्ट हो जायेगी कि बाहर के जगत में यह नामुमकिन है। बाहर की दुनिया में कितने ही लोग मुझे प्रेम करें, मुझे सम्मान दें फिर भी उसकी एक सीमा होगी। असीम नहीं हो सकती बात, असीमता तो केवल स्वयं के भीतर हो सकती है। जब तक शरीर के साथ मेरा तादात्म्य जुड़ा है तब तक मैं असीम नहीं हो सकता और जब तक असीम नहीं हो सकता, आनंदित नहीं हो सकता। सीमा और बंधन कारागृह के समान हैं, वही दुख का कारण है और उसी को हमने अपना समझा है। यह कवि कह रहा है– 'खुदा के वास्ते मेरे गम तो न छीनो मुझसे, इसे तो रहने दो मेरा, यही तो मेरा है', और कोई सम्पदा तो है नहीं, बस विपदा ही विपदा है।

उसका मूल कारण देह के साथ आसक्ति, मेरे पन का भाव।

मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन एक होटल में ठहरा था। जब वह होटल से विदा हुआ, स्टेशन पहुँचा तब उसे अचानक याद आई कि अपना छाता तो वह होटल में ही भूल आया, छाता उठाने के लिये वह वापस आया, इस बीच में वह कमरा किसी हनीमून मनाने आये नये जोड़े को दे दिया गया था, दरवाजा बन्द था, नसरूद्दीन ने बाहर से आवाज सुनी, पति अपनी पत्नी से कह रहा है कि तुम्हारे सुन्दर बाल किसके लिये हैं? पत्नी ने कहा, तुम्हारे लिये और किसके लिये। और उसने कहा कि ये तुम्हारे रसीले होंठ किसके हैं? पत्नी ने कहा कि तुम्हारे हैं। इस प्रकार उनका प्रेमालाप चल रहा था, एक–एक अंग की बात चलती गई, चलती गई, अन्त में नसरूद्दीन ने चिल्ला कर कहा कि हे देवी! तुम कौन हो मुझे पता नहीं लेकिन एक बात बता दूँ वह जो कोने में छाता रखा है वह मेरा है। हमारा तादात्म्य, आईडेन्टिफिकेशन हो गया चीजों से। मेरे, मेरे, मेरे के विस्तार में, मैं खो गया है। हमारी आत्मा इस मेरे के फैलाव में खो रही है।

काश, उस आत्मा को हम जान लें तो हम सर्वस्व को पहचान लें। कैसे इसकी शुरूआत हो? सबसे पहला बिन्दु तो यही होगा कि अपने शरीर की आसक्ति के प्रति पूर्णतः जागरूक हो। भूल जाओ थोड़े देर के लिये आत्मा–वात्मा की बातें। अभी तो तुम बस शरीर हो, इसको ही जानो। यह जानना बड़ा दुखदायी होगा क्योंकि शरीर मरणधर्मा है। क्या आप जानते हैं आपके मस्तिष्क के पाँच हजार सेल्स प्रतिदिन मर रहे हैं? और कभी रिप्लेसमेंट उनका नहीं होता, नये सेल्स नहीं बनते। क्या आप जानते हैं आपका खून चार महीने में पूरा बदल चुकता है? चमड़ी की ऊपर की परत, एपिडर्मिस, हर दो हफ्ते में समाप्त हो जाती है लेकिन रिप्लेस्ड हो जाती है, नीचे से दूसरी आ जाती है, पता नहीं चलता। शरीर प्रति क्षण मर रहा है। जब तक आप मेरा प्रवचन सुनकर जायेंगे आपके भीतर से, मस्तिष्क के सौ–डेढ़ सौ सेल्स नष्ट हो चुके होंगे। प्रतिक्षण मृत्यु करीब आती जा रही है। देह से इस आसक्ति को पूर्णतः से भोगो, इसके कष्ट को अच्छी तरह से जानो।

जब तुम देखोगे कि मकान में आग लगी है, तब, 'कैसे' न पूछोगे, अचानक छलांग लगाकर मकान के बाहर हो जाओगे। बुद्ध तो अपने साधकों को कहते थे, जाकर तीन महीने मरघट में रहो, सुबह से शाम तक चिताओं को जलते देखो। अच्छा है कि किसी प्रियजन की मृत्यु के निकट मौजूद रहो, प्रियजन को चिता पर जलते देखना, ऐसा ही लगता है जैसे मैं ही मर रहा हूँ। मृत्यु को जरा निकट से भोगो तब देह

से आसक्ति छूटेगी। यह विधि उन लोगों के लिये कठिन होगी जिन्हें मौत से अतिशय भय लगता है। उनके लिये ओशो ने एक सजेशन दिया है कि जो लोग मृत्यु से अत्याधिक भयभीत हैं, इस विधि को करने के पहले महीना भर एक दूसरा प्रयोग करें। जब याद आये जोर से श्वांस बाहर छोड़ें और क्षण भर को श्वांस बाहर रोकें। बाहर जो श्वांस मौत का प्रतीक है, भीतर आती श्वांस जनम का प्रतीक है। छूटती श्वांस पर ध्यान दें, धीरे–धीरे मृत्य का भय विदा होगा और तब शिव की यह विधि करना आसान होगा। देह से आसक्ति अपने आप गिरने लगेगी।

मैंने सुना है एक नास्तिक के बारे में उसने अपने आफिस में एक बोर्ड लगा रखा था– गॉड इस नो व्हेयर, ईश्वर कहीं भी नहीं है। एक दिन उसका छोटा बच्चा, जो अभी–अभी स्कूल जाना शुरू किया था उसके आफिस में आया और उसने वह बोर्ड पढ़ा, इतना बड़ा शब्द 'नो व्हेयर' वो पढ़ नहीं सकता था, उसने दो हिस्सों में तोड़कर पढ़ा 'गॉड इस नॉव हियर' परमात्मा अभी और यहीं है। सुनकर वह नास्तिक चौंका, बात बिल्कुल ठीक है। 'दैट व्हिच इस नो व्हेयर इज एवरी व्हेयर', जो कहीं नहीं है वो सब कहीं है, वह सर्वत्र है। देह में हम अपने आपको सीमित मानते हैं, मानने की वजह से हम हो गये हैं, वास्तव में वह हमारा स्वरूप नहीं है, हम हो नहीं सकते बन्द।

कई लोग मुझसे पूछते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा कहाँ जाती है? यह प्रश्न बिल्कुल निरर्थक है क्योंकि इसमें बुनियादी भ्रांति वही की वही बरकरार है कि फिलहाल आत्मा इस देह में बन्द है, यह तो हम मान ही बैठे कि इस देह में बन्द है। अब सवाल है कि मौत के बाद कहाँ जायेगी? कहीं नहीं जायेगी क्योंकि वास्तव में वह बन्द है नहीं, यह केवल एक मानसिक कारागृह है जो हमने बनाया, सचमुच में बन्द नहीं है। हम अपनी आत्मा को, अपने प्राण को किसी भी चीज में बांध सकते हैं। समझो किसी आदमी के पास हीरा है और उसने हीरे में अपने प्राण बिल्कुल लगा रखे हैं, उसका हीरा खो जाये तो मर जायेगा, आत्महत्या कर लेगा, हार्टअटेक हो जायेगा। कोई आदमी बड़ी ऊँची कुर्सी में विराजमान है, उसकी कुर्सी छीन लो, उसका जीवन छिन जायेगा, उसने कुर्सी में अपने जीवन को रख दिया था।

बच्चों की कहानियाँ रहती हैं न कि राजा ने तोते में अपने प्राण रख दिये, जब तक वह तोते की गर्दन न दबाओ राजा मर नहीं सकता। हम सबने भी विभिन्न जगहों में अपने प्राण रख दिये हैं। इस शरीर में अपने प्राण हमने रख दिये हैं। सिर्फ मान्यता की बात है वास्तव में कहीं नहीं रखे हैं। जिस आदमी ने हीरे में अपने प्राण रखे हैं वह नासमझ है, बाकी की सारी दुनिया बिना हीरे के बड़े मजे से जी रही है। इसी आदमी के

पास जब हीरा नहीं था तब भी यह जीवित था। देह में केवल हमने माना है कि हमारे प्राण हैं। यह आसक्ति गिर जाये। इस संबंध में ओशो समझाते हैं जिस क्षण तक आसक्ति को दूर हटा पाओगे और तुम्हें बोध होगा कि मैं सर्वत्र हूँ, परम आनन्द महसूस होगा। शरीर तुम्हें नहीं सीमित करता है, तुम्हारी आसक्ति तुम्हें सीमित करती है। शरीर तुम्हारे और सत्य के बीच अवरोध नहीं करता है, उसके बीच तुम्हारी आसक्ति, अटैचमेंट अवरोध निर्मित करती है। एक बार तुमने जान लिया कि आसक्ति नहीं है तो फिर तुम्हारा कोई शरीर भी नहीं है, अन्यथा तुम शरीर में बन्द हो। मान बैठे हो, जैसे यह मान्यता टूटी कि सारा अस्तित्व तुम्हारा शरीर बन जाता है, तुम्हारा शरीर समग्र अस्तित्व का हिस्सा बन जाता है तब तुम और अस्तित्व पृथक–पृथक नहीं रह जाते।

सच तो यह है कि तुम्हारा शरीर तुम्हारे पास आया हुआ निकटतम अस्तित्व है और कुछ नहीं। शरीर निकटतम अस्तित्व है और फिर वही फैलता जाता है, तुम्हारा शरीर अस्तित्व का निकटतम हिस्सा है और फिर सारा अस्तित्व फैलता जाता है। एक बार तुम्हारी आसक्ति भर टूट जाये कि शरीर न रहा, फिर सारा अस्तित्व तुम्हारा शरीर बन जाता है तब तुम सर्वत्र हो, सब तरफ हो और तभी तुम आनन्दित हो सकते हो।

आओ आज इस विधि को करने के लिये हम बाहर बगीचे में प्रयोग करते हैं। सभी लोग गोल घेरे में खड़े हो जायें, एक–एक मित्र का हाथ पकड़ कर। जो मित्र गोले में भीतर की तरफ हैं वे आँख बन्द करें और जो बाहर हैं वे आँख खोल कर रहें। चलना शुरू करेंगे, आँख खुले हुये मित्र की जिम्मेवारी है कि आँख बन्द वाले मित्र को संभाल कर चलाये कि कहीं वह गिरे न। बन्द आँखों से चलते हुये शरीर को देखें, बड़ा अद्भुत अनुभव होगा। शरीर से पृथक स्वयं के साथ चैतन्य का अहसास होगा। जब मैं स्टाप कहूं तो अचानक रूक जाना। स्टॉप। स्टार्ट। शरीर चल रहा है... मैं अचल हूँ...। स्टॉप, स्टार्ट... शरीर गतिमान है... मैं अगतिमान हूँ... मैं केवल देख रहा हूँ दूर से... जैसे किसी और का शरीर चल रहा है... स्टॉप। स्टार्ट... शरीर का कम्पन, मैं हूं निष्कम्प, मैं हूँ शरीर का ज्ञाता, शरीर है दृश्य, मैं उसका द्रष्टा... स्टॉप। स्टार्ट... ठीक अब सभी मित्र पीछे पलट जायें। अभी जो मित्र आँख खोले थे वे बन्द कर लें जो बन्द किये थे वे आँख खोल लें। अपने मित्र को चलाना शुरू करें। स्टार्ट... स्टॉप। साक्षी भाव, पैर रूक गये, श्वांस भी रूक गयी, विचार भी रूक गये। स्टार्ट... स्टॉप। सब ठहर गया। स्टार्ट... स्पष्ट देखें... शरीर गति कर रहा मैं अगतिमान द्रष्टा हूँ...। स्टॉप। शरीर से आसक्ति टूटी, मेरे पन का भाव टूटा...। महसूस करें मैं कहाँ हूँ और आश्चर्य होगा, आप लोकेट न कर पायेंगे, मैं कहीं भी नहीं हूँ क्योंकि मैं सर्वत्र हूँ, जो कहीं नहीं है वह

सब कहीं है। हाथ छोड़ दें, भाव करें मैं साक्षी चैतन्य हूँ, सर्वत्र हूँ। भगवान शिव कहते हैं जो सर्वत्र है वही आनन्दित है। हाथ ऊपर उठाकर अहोभाव से भरें। बैठ जायें, जमीन पर झुक जायें, अपने धन्यवाद अर्पित करें।

ओम नमः शिवाय।

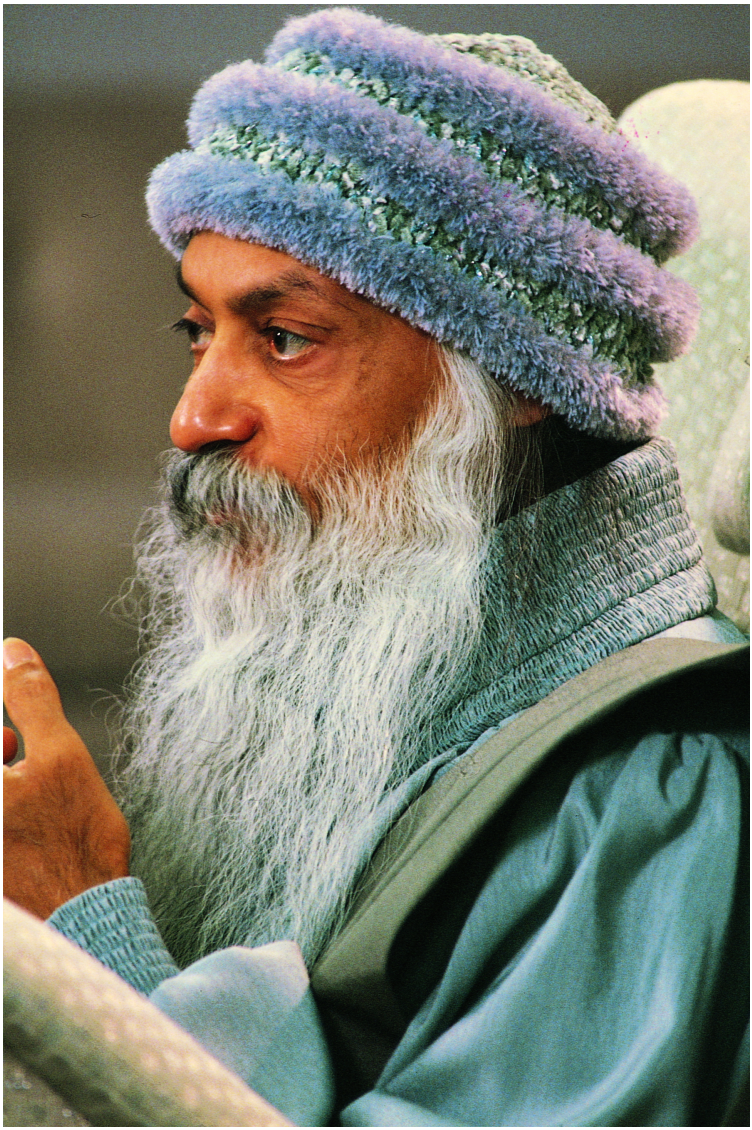

विधि-85

सब सीमाओं के पार

ना-कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।

लो यह नज़्म –

अजनबी देश के रास्तों पर भटकते जमाना बीत गया,
रंज और गम का लम्बा सा फसाना बीत गया,
मैंने सोचा है कि आज तुझे एक खत लिख दूँ
हाँ आज लिख दूं कि सुलगते हुये अरमानों में,
कितने जहरीले गरम तीर चुभा करते हैं
कैसे धुँधियाई हुई रात में बेबस आँसू
डर के तन्हाई से थम-थम के बहा करते हैं
और हम हैं कि बस हाथों से कलेजा थामे,

बेरहम वक्त की हर चोट सहा करते हैं
झुंझलाहट में तुझे भूल भी जाने की कसम खाई,
मगर फिर लौट के घर जाने की दुआ भी माँगी
तू जो मिल जाये तो इन जलती हुई आँखों को,
तेरे होंठों के तले ढेर सा आराम मिले,
तेरी बाँहों में सिमट कर तेरे सीने के तले,
मेरी जागी हुई स्याह रातों को आराम मिले।
लेकिन यह जो खत मैं लिखूँगा तेरे लिये,
कौन ले जायेगा इस अजनबी शहर से इसे।
यह तो खो जायेगा बेनाम सी गलियों में कहीं,
तेरा पता भूल गया हूँ, मैं खत दूँ तो किसे।
आह मैंने सोचा था कि आज तुझे खत लिखूंगा।

प्रार्थना करने वाले लोग मंदिर–मस्जिद में, ईश्वर को पुकारने वाले लोग जो खत लिख रहे हैं, वो सब बेनाम गलियों में खो जायेंगे। ईश्वर का पता कहाँ? उसका ठिकाना किसे मालूम? कौन वह खत पहुँचायेगा? यह तो खो जायेगा बेनाम सी गलियों में कहीं, तेरा पता भूल गया हूँ। मैं खत दूँ तो किसे? तुम जिन पण्डित, पुरोहित, पादरियों को, मौलवियों को खत दे रहे हो, भगवान के नाम प्रार्थना दे रहे हो, उन्हें खुद भी भगवान का पता नहीं है। कौन पहुँचायेगा उन्हें? प्रार्थनायें काम नहीं आयेंगी। हमारी पुकारें काम नहीं आयेंगी। कुछ और ही विधि अपनानी होगी। परमात्मा की गुणवत्ता है परम शून्यता। काश! हम भी परम शून्य हो जायें, तब उससे नाता जुड़ सकेगा। शून्य से शून्य का मिलन हो सकेगा। हमारी प्रार्थना काम नहीं आयेगी क्योंकि वह है शब्दों में और परमात्मा है निशब्द। परमात्मा की भाषा है मौन, हमारी भाषा वह नहीं समझता। दुनिया में कोई चार हजार से ज्यादा भाषायें मनुष्य जाति बोलती हैं और सभी को वहम है कि उनकी भाषा परमात्मा समझता है। भारत में पण्डित पुरोहित कहते हैं कि संस्कृत देववाणी है। कोई वाणी देववाणी नहीं है, परमात्मा की तो एक ही वाणी है मौन। शून्य हो जाना।

भगवान शिव आज विधि नम्बर पचासी में उसी तरफ इशारा कर रहे हैं, वे कहते हैं, हे देवी पार्वती! न कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है। न

कुछ का विचार, जो है ही नहीं उसका विचार करो। बड़ी नामुमकिन और कठिन बात कह रहे। असम्भव, यह हो ही नहीं सकता। हम कुछ का विचार कर सकते हैं, न कुछ का विचार कैसे करेंगे। यह तरकीब है शून्य करने की और तब आत्मा असीम हो जायेगी। उस महाशून्य के साथ एक हो जायेगी। तब परमात्मा से मिलन हो सकेगा। प्रार्थनायें काम नहीं आयेंगी, प्रार्थना करना बन्द करो, तुम्हारा बोलना काम नहीं आयेगा, अपनी बकवास बन्द करो। चुप हो जाओ। न कुछ का विचार करो। परिणामस्वरूप निर्विचार अवस्था घटित होगी। तब परमात्मा से मिलन है, फिर महासुख की बरसात होगी। इसलिए याद रखना– मेरा जोर प्रार्थना पर नहीं, साधना पर है। प्रार्थना में परमात्मा केन्द्र बन जाता है, साधना में तुम, तुम्हारा रूपान्तरण केन्द्रिभूत होता है।

शून्य हो रहो, मिट रहो, वह भी शून्य है, तुम भी शून्य हो जाओ। दो शून्य दो नहीं होते, शून्य और शून्य मिलकर एक ही शून्य हो जाता है। इसलिए जो शून्य हो गये, जो असीम हो गये, उस विराट के साथ वह भी एक हो गये। कल हमने चर्चा की थी कि जहाँ कहीं भी तुम्हारा अवधान हो, वहीं पर अनुभव। विधि नम्बर चौरासी में, वहीं तुम हो जहाँ तुम्हारा अवधान है। आज विधि नम्बर पचासी में जागरूकता का अगर कोई विषय न हो, न कुछ का विचार, अर्थात् कोई विषय नहीं, आब्जेक्टलेस थिंकिंग। वो नो थिंकिंग में ले जायेगी, निर्विचारता में ले जायेगी। निर्विषय चेतना हो जायेगी। नींद में भी हम निर्विषय होते हैं, लेकिन हम अचेत होते हैं। सुषुप्ति और समाधि में यही भेद है। सुषुप्ति में निर्विचार अचेतना होती है, समाधि में निर्विचार चेतना होती है। तो आज की विधि बड़ी प्यारी विधि है। जो नहीं है उसका विचार करो।

जापान के झेन फकीर एक विधि का प्रयोग करते हैं, वे कहते हैं अपने शिष्य से कि अपने ओरिजनल फेस को, मौलिक चेहरे को खोजो। जब तुम्हारा जनम नहीं हुआ था तब तुम्हारा चेहरा कैसा था और मृत्यु के बाद तुम्हारा चेहरा कैसा होगा? जाओ खोजो। महीनों लग जाते, वर्षों बीत जाते, शिष्य सोचता रहता, सोचता रहता। लेकिन इस संबंध में क्या सोचोगे? मृत्यु के बाद तुम्हारा चेहरा कैसा होगा? जनम के पहले तुम कैसे थे? जब तुम नहीं थे, तब तुम कैसे थे? और जब तुम नहीं हो जाओगे तब तुम कैसे होओगे? वर्षों की इस प्रक्रिया में गुजरते, सोच–विचार करते–करते आखिर मन थक जाता है। मन की वह थकावट ही इस विधि का लक्ष्य है। उस अपने मौलिक चेहरे का ज्ञान होता है। याद रखना उसका कोई रूप नहीं है, उसकी कोई आकृति नहीं है। वह वास्तव में है नहीं। यह तो मन से तादात्म्य तोड़ने की एक विधि है। तो पिछली विधि

चौरासी नम्बर में देह से आसक्ति तोड़ना था।

आज की विधि नम्बर पचासी में मन से आसक्ति तोड़ना है। यह दो हमारी परतें हैं। शरीर हमारी बाहरी परत है, मन हमारी आन्तरिक परत है। देह से अनासक्त होना ज्यादा आसान है, उससे हमारा तादात्म्य उतना गहरा नहीं है, मन से तादात्म्य तोड़ना जरा कठिन है क्योंकि वह भीतरी मामला है। कोई अगर आपसे कहे कि अरे आपके शरीर में बीमारी है, कोई रोग है तो आपको सुनकर अच्छा लगता है, सहानुभूति और प्रेम जैसा जान पड़ता है, बुरा नहीं लगता। लेकिन अगर कोई कहे कि आपके मन में कुछ रूग्णता है, आप मानसिक रूप से बीमार हैं, तो बड़ी चोट लगती है। कोई कहे आपका पैर लंगड़ा है, कैसे लंगड़े हो गये? तो लगता है यह आदमी सिम्पैथी जता रहा है। कोई कहे कि आपका दिमाग खराब है, तो एकदम क्रोध आता है। मन से हमारा तादात्म्य बड़ा गहरा है और इसलिए मन से अनासक्त होना कठिन है। इसलिए निर्विचार होना इतना कठिन है। जब तक तुम विचारों को अपना मान रहे हो, तब तक उससे छुटकारा न होगा। मन है क्या? विचारों का संग्रह। एक ब्लू प्रिंट, जिसके आधार पर फिर हमारा नया जन्म हो जाता है। यह देह तो मर जाती है, ये मन आगे यात्रा करता है, फिर नया शरीर धारण कर लेता है। काश, इस मन की मृत्यु हो जाये तो वह महामृत्यु महापरिनिर्वाण बन जायेगी। ध्यान महामृत्यु है। इस मन से छुटकारा, मन की सीमाओं से छुटकारा। क्योंकि हर विचार की सीमा होगी, हर धारणा की सीमा होगी।

मैंने सुना है, सेठ आत्माराम जी अपनी पत्नी सीमा देवी से तलाक करवाने के लिये वकील के पास पहुँचे। वकील ने कहा कि आत्माराम जी, आपकी पत्नी सीमा देवी से तलाक करने में पचास हजार रूपये खर्च होंगे। सेठ जी बोले– हद हो गई वकील साहब, पचास हजार रूपये! अरे पण्डित जी ने तो पाँच सौ एक रूपये में शादी करवाई थी सीमा से। वकील ने कहा– देख लिया न सस्ते काम का परिणाम। सीमा से बंध जाना, सीमा से शादी करना कितना आसान है। सीमा से छुटकारा बड़ा कठिन है। न कुछ का विचार। हिन्दू की, चीनी की, भारतीय की, जैन की, मुसलमान की, डॉक्टर की, इंजीनियर की सबकी सीमायें हैं, उनका ज्ञान ही उनकी सीमा बन गया है। शून्यता है असीम, उस शून्यता में प्रवेश करना है।

इस विधि को समझाते हुये परमगुरु ओशो कहते हैं– अमन की अवस्था में सीमित आत्मा असीम हो जाती है, सीमायें विलीन हो जाती हैं और तब अचानक तुम सर्वत्र हो जाते हो, तुम सब कहीं हो जाते हो। तुम अचानक सब कुछ हो जाते हो।

अचानक तुम वृक्ष में हो, पत्थर में हो, आकाश में हो, मित्र और शत्रु दोनों में हो। अचानक सब सर्वत्र तुम ही तुम हो। सारा अस्तित्व दर्पण के समान हो गया और तुम अपनी ही प्रतिछवि सब तरफ देख रहे हो। यही अवस्था आनन्द की अवस्था है। अब तुम्हें कुछ भी अशांत नहीं कर सकता क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं। अब कुछ भी तुम्हें मिटा नहीं सकता क्योंकि तुम्हारे सिवाय कोई भी नहीं। और मृत्यु नहीं क्योंकि मृत्यु में भी तुम्हीं हो। जीवन में भी तुम हो, अब कुछ भी तुम्हारे विरोध में नहीं। एकमात्र अकेले तुम ही हो। इस एकाकीपन को महावीर ने कैवल्य कहा है। समग्र एकान्त, एकान्त क्यों? क्योंकि सबकुछ तुममें समाहित है, तुम सर्वस्व हो गये। तुम इस अवस्था को दो ढंगों से अविभक्त कर सकते हो। तुम कह सकते हो केवल मैं ही मैं हूँ, अहम् ब्रह्मास्मि। मैं समग्र हूं, सब मुझे समाविष्ट है। सब नदियाँ, सागर मुझमें विलीन हो गयीं। मैं हूँ सागर, अकेला मैं हूँ और कुछ भी नहीं है, सूफ़ी सन्त यही कहते हैं। मुसलमान उन्हें कभी समझ नहीं पाते कि सूफ़ी ऐसी बातें क्यों करते हैं? किसी सूफ़ी ने कहा है बस केवल मैं हूँ और मैं ही परमात्मा हूँ। यह विधाायक ढंग है कहने का कि अब कोई पृथकता न ही।

बुद्ध नकारात्मक ढंग से इसी बात को कहते हैं कि मैं नहीं हूँ, कुछ भी नहीं है, दोनों बातें सच हैं। क्योंकि जब सब कुछ मुझमें सम्मिलित है तो अपने को मैं कहने में फिर क्या तुक बचा। मैं सदा ही तू के विरोध में है, तू के संदर्भ में है। मैं अर्थपूर्ण तभी है जब तू भी है। जब तू न रहा, तो मैं व्यर्थ हो गया। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि मैं नहीं हूं कुछ भी नहीं है, कहीं कोई परमात्मा नहीं है। या तो सबकुछ तुममें समा गया या तुम शून्य हो गये और सब में विलीन हो गये। दोनों अभिव्यक्तियाँ ठीक हैं, दोनों अभिव्यक्तियाँ परिपूरक हैं। ये एक दूसरे के विरोधी नहीं, दोनों बातें सच हैं। शून्यता और पूर्णता गणित के हिसाब से भी एक ही हैं। पूर्ण में पूर्ण जोड़ो, पीछे पूर्ण शेष बचता है, शून्य में शून्य जोड़ो, शून्य ही शेष बचता है। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं पूर्ण में से पूर्ण निकाल लो तब भी पीछे पूर्ण ही बच जाता है। ठीक वही बात शून्य के बारे में कही जा सकती है, न कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है। आओ इस प्यारी विधि को हम करते हैं।

धन्यवाद्।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आज का ध्यान, शान्त, शिथिल होकर बैठ जायें। आँखें बन्द कर लें। अपने मौलिक चेहरे को खोजें, जब जन्म नहीं हुआ था...। जन्म से पूर्व का चेहरा...। गर्भ में प्रवेश करने के पहले तुम कैसे दिखते थे? जरा याद करें... खोजने की कोशिश करें... । झेन फकीर जिसे कहते हैं फाइन्ड आउट यूअर... ओरिजनल फेस...। खोजने वाले.. . गुमशुदा हो गये... सारी सीमायें विलीन हो गयीं...। ना कुछ का विचार करें... इस शून्यता में लीन हो जायें... लीन हो जायें...। जैसे ही शून्य हुये, विराट हो गये...। विराट की सघन प्रतीति इस विराट के संग, आनन्द ही आनन्द है। दो चार गहरी–गहरी लम्बी–लम्बी श्वांसें, आहिस्ता आहिस्ता ध्यान से वापस आयें, उठकर बैठ जायें...। दोनों हाथ जोड़ लें... और अनुभव करें भीतर ही भीतर, मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप को नमस्कार...। अपने स्वयं के वास्तविक स्वरूप को नमस्कार...।

हरि ओम् तत्सत्।

आज का ध्यान पूरा हुआ।

विधि-86

न होने के भी परे

भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है, जो पकड़ के परे है, जो अनस्तित्व के, न होने के भी परे है।

राम की सुनसान काली रातों में दूर एक दीप टिमटिमाता है।
एक वीरान सी खामोशी में कोई साया सा सरसराता है।
वह कौन है?
गोया तेरे मरीजे-उल्फत का सांस सीने में थम के आता है।
मेरे अश्कों के आइने में आज कौन है जो मुस्कुराता है।
वह कौन है?
कौन दस्तक सी देता रहता है कैसा पैगाम चला जाता है

एक गुमनाम रास्ते का निशां लम्हा–लम्हा किसे बुलाता है?
वह कौन है?
क्यों इक अजनबी सदा पे मेरी रूह का तार झनझनाता है!
आखिर वह कौन है? और क्यों बुलाए जाता है? वह कौन है?

वह कोई और नहीं तुम्हारा ही अन्तर्तम है। वह तुम ही हो, मत कहो कि दूर एक दीप टिमटिमाता है। वह कहीं दूर नहीं तुम्हारे भीतर ही टिमटिमा रहा है। बाहर उसकी प्रतिछवि नजर आ रही है, है वह तुम्हारे भीतर। और इसलिये बाहर वह कभी मिलेगा नहीं। जैसे आकाश में चाँद हो और झील में उसका प्रतिबिम्ब बने और हम झील में चाँद को खोजने चले, कभी मिलेगा नहीं। क्योंकि चाँद ऊपर आकाश में है। ठीक ऐसे ही संसार एक दर्पण है, हमारी ही छाया उस पर बन रही और हम उन्हें पकड़ने चले, वे छायायें कभी हाथ नहीं आतीं। रोशनी हमारे भीतर है और हम दीप की खोज बाहर कर रहे हैं, मत पूछो कि वह कौन है, वह तुम्हीं हो। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं, तत्वमसि। सुनी होगी आपने वह कहानी। श्वेतकेतु गुरुकुल से सबकुछ सीख के आ गया, गणित और भाषा, व्याकरण, ज्योतिष, जितनी विद्यायें उस समय प्रचलित थीं। पच्चीस साल की उम्र में जब लौट के आया उसके पिता ने पूछा– क्या–क्या सीख कर आये? उसने पूरी सूची गिना दी। पिता ने कहा क्या तुमने वह जाना, जो जाना नहीं जा सकता? श्वेतकेतु हैरान हुआ, उसने कहा ऐसा कैसे हो सकता है जो जाना नहीं जा सकता उसे कैसे जानूँ? पिता ने पूछा, क्या तुमने उसे देखा जो देखा नहीं जा सकता? और उसे सुना जो सुना नहीं जा सकता? श्वेतकेतु ने कहा, क्षमा करें हमारे शिक्षकों ने कोई ऐसी बात हमें नहीं सिखाई। पिता ने कहा फिर तुम वापिस जाओ। यह असली ज्ञान नहीं है।

श्वेतकेतु वापस पहुँचा गुरुकुल में। अपने गुरूओं से उसने कहा, मेरे पिता ने मुझे वापस भेजा है। गुरु मुस्कुराये। उन्होंने कहा ठीक, अब तुम्हारे भीतर प्यास पैदा हुई। तो अब उस अगम, अगोचर के बारे में बतायेंगे। अब ये–ये साधना करो। कई वर्ष लगे, एक दिन श्वेतकेतु को परम ज्ञान घटा, आत्मज्ञान घटा, तब वह वापस अपने घर लौटा। यह उपनिषद् का वचन बड़ा प्यारा है, श्वेतकेतु से कहा गया था, उसके गुरु ने अन्त में कहा आत्मज्ञान हो जाने पर, तत्वमसि श्वेतकेतु, तू ही है वह जिस ब्रह्म को तू खोज रहा है, अगम, अगोचर को, वह कोई और नहीं। मत पूछो कि वह कौन है, कौन दस्तक सी देता रहता है, कैसा पैगाम चला आता है। यह पैगाम परमात्मा का अनाहत नाद है, यह दस्तक उसके हाथों की आवाज है और वह अजनबी नहीं है। मत कहो कि क्यों इक

अजनबी सदा पे मेरी रूह का तार झनझनाता है, तुम्हारे भीतर ओंकार गुंजित हो ही रहा है, भीतर के शून्य में एक संगीत बज रहा है, यह अजनबी नहीं। यह बात अलग है तुमने बहुत समय से भीतर की तरफ देखा नहीं।

पहली बार देखो तो अजनबी सा लगेगा, अपरिचित सा लगेगा। कुछ भी अपरिचित नहीं है, वह तुम ही हो, तुम्हारा ही अन्तर्तम है। और पूछते हो आखिर ये कौन है क्यों बुलाये जाता है। यह ऐसा ही है जैसे सागर पुकारे नदियों को, ये नदियाँ उसी से उत्पन्न हुई थीं। कोई चीज अपने मूल स्रोत में समा जाना चाहती है, ठीक ऐसे ही हमारी अन्तरात्मा, उस परमात्मा, में परम शून्यता में विलीन हो जाना चाहती है। याद रखना हमारी तीन संभावनायें हैं, पशुता की, मनुष्यता की और दिव्यता की। मनुष्यता है बीच में, पीछे हम पशुता का जगत छोड़ के आये हैं और आगे दिव्यता के लोक, भगवत्ता के लोक में जा सकते हैं। मनुष्य जैसा है वह द्वन्द्व में और तनाव में है। मनुष्य होकर हम ऐसे ही हो सकते हैं। पीछे का गुरूत्वाकर्षण हमें पीछे खींचता है, फिर से जानवर जैसे हो जाने के लिये पुकारता है, इसलिए तो शराब का और मादक द्रव्यों का इतना प्रभाव है। थोड़ी देर को हम अपनी मनुष्यता को, चेतन मन को भूल जायें। लेकिन पीछे लौटना तो असंभव, जीवन की इस कार में कोई रिवर्स गियर नहीं है। भूल सकते हैं हम मनुष्यता को, लेकिन अब हम पशु हो नहीं सकते। फिर वापस आना होगा, फिर वही तनाव होंगे, फिर वही द्वन्द्व होगा। एक ही उपाय है अब हम अतिक्रमण करें, आगे चलें।

मनुष्य एक पुल के समान है, नदी के पिछले पार, जानवरों का पशु–पक्षियों का जगत है और नदी के उस पार बुद्धों का, ज्ञानियों का, ऋषियों का जगत है, मनुष्य बीच का सेतु है, इस सेतु से हमें गुजरना ही होगा। द्वन्द्व में से चुनाव तृप्ति नहीं ला सकता। मैंने सुना है एक जर्मन परफैक्सनिस्ट की मृत्यु हुई। उसे तेज कार चलाने का बड़ा शौक था। जब वह ऊपर पहुँचा परलोक में, उससे पूछा, आप कहाँ जाना चाहते हैं नरक या स्वर्ग? उसने कहा कि क्या चुनाव हमारे हाथ में है? चन्द्रगुप्त ने कहा कि निश्चित रूप से तुम्हारे हाथ में है। जर्मन ने कहा, आश्चर्य! हम तो सुनते थे कि कर्मो के अनुसार मिलता है। चित्रगुप्त ने कहा, नहीं तुम्हीं तय कर लो कहाँ तुम्हें जाना है। गया वह स्वर्ग। स्वर्ग में तेज चलने वाली कोई कार ही नहीं थी, बैलगाड़ी का जमाना था वहाँ। राजपथ बड़े सुन्दर थे, हाइवे बने हुये थे सुपर हाईवे, लेकिन कार नहीं थी, उसने कहा इससे अच्छा तो मैं नरक में जाना पसंद करूंगा, नरक गया। नरक में कार थीं बड़ी तेज चलने वाली, ढाई सौ तीन सौ किलोमीटर की स्पीड से, लेकिन सड़कें

बिहार जैसी थीं, बैलगाड़ी भी मुश्किल से चल पाती थी। तुम स्वर्ग और नरक में भी चुनोगे तो भी दुख ही मिलेगा। एक जगह हाईवे है कार नहीं है, दूसरी जगह कार हैं और सड़क नहीं है। द्वन्द्व का अतिक्रमण करना होगा, द्वन्द्व में से एक चीज की तृप्ति हो जाये तो दूसरी अतृप्त रह जाती है और इसलिये हमेशा ही संताप बना रहेगा। इन दोनों के बीच कोई समन्वय और समझौता नामुमकिन है और वही नाकामयाब कोशिश करने की हम कोशिश कर रहे हैं, वह हमेशा ही असफल होगी। ये विधियाँ, तंत्र की विधियाँ द्वन्द्व के पार ले जाने के लिये हैं, द्वन्द्व में से चुनाव करने के लिये नहीं। तंत्र का जोर चुनाव रहितता पर है, च्वाईसलेसनेस पर और इसलिए कई बार भ्रम पैदा हो जाता है, कई लोग समझते हैं कि तंत्र पशु के पक्ष में हैं। नहीं, तंत्र पशु के पक्ष में नहीं है, पशुता का भी अतिक्रमण करना है, साक्षी बनना है, स्वयं से जुड़ना सीखो और अपने से ऊपर उठने की कोशिश करो।

मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन एक चित्रकला प्रदर्शनी देखने गया। वहाँ एक चित्र में एक नग्न सुन्दरी खड़ी थी लेकिन उसके शरीर पर फूल–पत्तियों से लदी हुई एक बेला चढ़ी हुई थी, नसरूद्दीन गौर से वहीं देखने लगा, पत्नी ने पीछे से हुद्दा मारा और कहा कब तक यहाँ खड़े रहोगे, क्या पतझड़ होने का इंतजार कर रहे हो। पतझड़ हो सकता है हमारे मन का, अगर हम इन्तजार करें, कल्पना भी इस बात की कर लें। ये जो विचारों के पत्ते हैं, ये जो विश्वासों के फूल हैं, ये जो धारणाओं की शाखायें हैं और ये जो मूर्छा की जड़े हैं, ये उखड़ सकती हैं, बहुत आसान है।

भगवान शिव आज की विधि में कहते हैं– अकल्पनीय की कल्पना करो, उसे पकड़ने की कोशिश करो जो पकड़ में नहीं आता और उसे देखने की कोशिश करो जो दिखाई नहीं देता। क्या यह संभव है? अकल्पनीय की कल्पना, हम तो जो कल्पना करते हैं उसमें भी मिश्रण होता है। आप कह सकते हैं मैंने एक उड़ता हुआ घोड़ा देखा, लेकिन यह कोई नई बात नहीं है क्योंकि आपने उड़ने वाले पक्षी भी देखे हैं और घोड़ा भी देखा है आपने दो चीजों को जोड़ दिया। यह कल्पना असंभव नहीं है, सिर्फ दो चीजों का मिश्रण है। लेकिन अगर आप धैर्यपूर्वक लगे रहे और जो भी कल्पनायें मन में आयीं उन्हें हटाते गये, हटाते गये, नेति–नेति, न यह न वह, नाइदर दिस नॉर देट, अन्त में फिर क्या बचेगा, अन्त में केवल तुम ही बचोगे, तुम्हारा चैतन्य रूपी शुद्ध दर्पण बचेगा, जिसमें कोई छवि नहीं बन रही। सारे दृश्य विदा हो जायेंगे, चेतना प्रतिक्रमण करके स्वयं पर वापस लौट आयेगी।

इस विधि को समझाते हुये परमगुरु ओशो कहते हैं– अगर इस ऊर्जा को कुछ

भी देखने को न हो, पकड़ने को न हो, कुछ उसे प्रभावित न करे, तो वह अप्रभावित, असंस्कारित, अस्पर्शित लौट आयेगी स्वयं पर। अगर वह शुद्ध वापस खुद पर लौट आये, तब तुम स्वयं को जानते हो। यह ऊर्जा का शुद्ध वर्तुल बन जाता है। अब ऊर्जा तुमसे बाहर कहीं नहीं जा रही, भीतर ही गति कर रही है और भीतर एक वर्तुल बना रही है। अब कोई दूसरा नहीं है तुम स्वयं अपने में ही गति करने लगे, यह गति ही आत्मप्रकाश, आत्मबोध, आत्मज्ञान बन जाती है। बुनियादी तौर से सारी ध्यान विधियाँ इसी के अलग–अलग रूप हैं। भगवान शिव कहते हैं पार्वती से कि भाव करो मैं किसी ऐसी चीज की चिन्तना करता हूँ जो दृष्टि के परे है, जो पकड़ के परे है, जो अनास्तित्व के परे है, न होने के भी परे है और वह तुम स्वयं हो, अगर यह हो सके तो तुम पहली बार स्वयं को जानोगे, अपने अस्तित्व को पहचानोगे, जानने वाली आत्मा को जानोगे।

ज्ञान के दो प्रकार हैं– विषयगत ज्ञान और आत्मगत ज्ञान। एक तो आब्जेक्ट की नॉलेज है और एक सब्जेक्टिव नोईंग है, वह सब्जेक्टिव नोईंग ही परम ज्ञान है, उसी की तरफ ये सारी विधियाँ इशारा करती हैं, ऑब्जेक्ट से सब्जेक्ट की ओर चलो। विज्ञान ऑब्जेटिव ज्ञान की खोज करता है, धर्म सब्जेक्टिव नोईंग में प्रवेश करता है, भीतर एक शून्यता निर्मित हो जायेगी। हमारे मन के कई रूप हैं। जो हमारा सामान्य मन है, वह चंचलता वाला मन है, अगर इसकी स्पीड और बढ़ जाये तो व्याकुलता पैदा होती है और अगर वह तीव्र गति स्थिर हो जाये तो विक्षिप्तता, पागलपन पैदा होता है। फिर मन की स्पीड अगर कम हो तो तल्लीनता, और कम हो तो एकाग्रता, और कम हो तो समग्रता उत्पन्न होती है, अन्ततः संलीनता उत्पन्न होती है और इन सबके पार इन सात मन अवस्थाओं के पार आठवीं है अतिक्रमण करने वाली, वह है शून्यता। भगवान शिव अद्भुत बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं उस शून्यता के भी पार, अनास्तित्व के भी पार चलो। बड़ी ही अद्भुत विधि है परम विधियों में से एक शून्यता के भी पार चलो।

जापान के झेन फकीर लिंची के पास उसका शिष्य आया और उसने कहा कि मैं शून्य हो गया हूँ। लिंची ने उसे धक्का मारकर गिराया और कहा कि शून्यता को भी फेंक कर आओ, ये कौन है जो कह रहा है कि मैं शून्य हो गया हूँ। कुछ छाया बाकी है अभी मैं की, इसे भी मिट जाने दो। भगवान शिव उसी परम दशा की अमनी दशा की ओर इशारा कर रहे हैं। आओ इस विधि में डूबते हैं।

मेरे प्रिय आत्मन्! नमस्कार।

आज की ध्यान की शुरूआत में ऐसी चीज का चिन्तन करें जो दृष्टि से परे है, जो

हमें दिखाई नहीं देता, जो इन आँखों से देख नहीं सकते, उसके बारे में सोचे...। जो इन आँखों से दिखाई नहीं देता उसे महसूस करें। अब कोई ऐसी चीज को खोजें जो इन हाथों से पकड़े नहीं आती, जो इन दो हाथों की पकड़ से परे है उसका चिन्तन। ऐसी वस्तु का अनुभव जो इन हाथों के स्पर्श से परे है...। अब ऐसी वस्तु का चिन्तन जो न है और न नहीं है... जो है के पार तो है नहीं के भी पार है। देश और काल की सीमा से पार न होने से पार... न होने से पार...। धीरे से लेट जायें। उपनिषदों का सारसूत्र है नेति–नेति, न यह न वह, वही तुम हो... वही तुम हो...। तत्वमसि श्वेतकेतु। जितनी देर भाव... करें। उतनी देर लेटे–लेटे इसका अनुभव करें। तत्वमसि श्वेतकेतु वह तुम ही हो...। जो अस्तित्व और अनास्तित्व के पार, होने न होने के पार, वह तुम ही हो...।

आज का ध्यान पूरा हुआ। ओम नमः शिवाय।

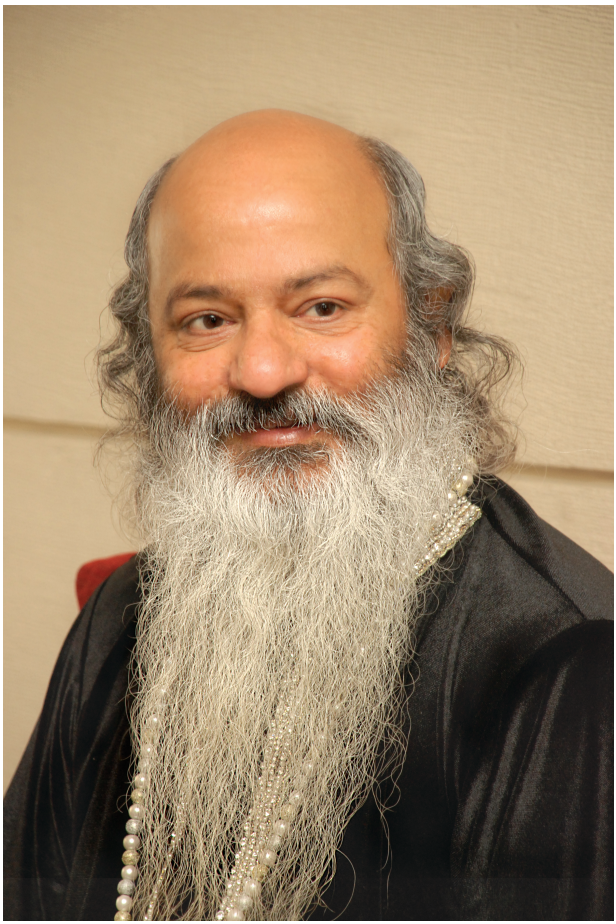

विधि-87

'मैं हूं' की ध्यान विधि

मैं हूं। यह मेरा है। यह यह है। हे प्रिये, ऐसे भाव में भी असीमतः उतरो।

1952 में अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में कुछ छात्र सम्मोहन पर प्रयोग कर रहे थे, चार लड़के मिलकर एक पाँचवे लड़के को सुझाव दे रहे थे और अद्भुत परिणाम आ रहे थे। जो भी वह लड़का भाव करता था ठीक वैसा ही हो जाता था। मजाक–मजाक में इन चार को सूझा कि उसे सम्मोहित करके कहें कि भाव करो कि तुम मर रहे हो और आश्चर्य की घटना घटी, दुर्घटना हो गयी वह लड़का सचमुच में मर गया। सिर्फ भाव से, इस ख्याल से कि मैं मर रहा हूँ और वह मर गया। इस घटना को लेकर अमेरिका के संविधान में सम्मोहन के खिलाफ कानून बन गया। बिना सरकारी अनुमति के कोई सम्मोहन का प्रयोग नहीं कर सकता। तो केवल विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान के विभाग में रिसर्च करने वालों को अनुमति है।

याद रखना जो चीज विध्वंसक बन सकती है वह सृजनात्मक भी बन सकती है। भाव की क्षमता अपार है। आज हम जो भी हैं हमने ऐसा भाव किया था इसलिए हम ऐसे हो गये। यदि हम कुछ और होना चाहते हैं सिर्फ हम भाव करें और भाव के परिणाम आने शुरू हो जायेंगे। दुनिया के बड़े से बड़े सृजनशील लोग, सिर्फ भाव से हो गये। भाव की एक खूबी और है, भाव हमें स्वयं की ओर ले जाता है, विचार हमें स्वयं से दूर ले जाते हैं। विचार का काम है तोड़ना, विश्लेषण करना, खण्ड–खण्ड बांटना, विभाजित करना। भाव का काम है जोड़ना, इसलिए जहाँ कहीं प्रेम होता है वहाँ हम जोड़ महसूस करते हैं, अपनापन महसूस करते हैं। आज की यह विधि बड़ी अद्भुत है।

भगवान शिव कहते हैं पार्वती से, भाव करो कि मैं हूँ। बड़ी अद्भुत विधि, पूरे विज्ञान भैरव तंत्र का सार सूत्र इन दो छोटे से शब्दों में समा सकता है। भाव करो कि मैं हूँ, यह मेरा है, यह, यह है। हे प्रिये ऐसे भाव में असीमित उतरो, इसमें कहीं कोई सीमा न आये। मन की हमेशा सीमा होती है, विचार की सीमा होती है। विभाजन करने में तो हम और क्षुद्र से क्षुद्र सीमा में चले जाते हैं इसलिए आश्चर्य नहीं कि विचार का उपयोग करते हुये विज्ञान विश्लेषण करता जाता है और अन्ततः परमाणु पर पहुँच जाता है, क्षुद्र से क्षुद्र में पहुँच जाता है। भाव का उपयोग करते हुये आध्यात्मिक व्यक्ति जोड़ता जाता है, जुड़ता जाता है और अन्त में सारे अस्तित्व के साथ एक हो जाता है, वह ब्रह्म को, परमात्मा को जानता है। ये दो छोर हैं, एक परमाणु, दूसरी तरफ परमात्मा। विचार से चले विश्लेषण की प्रक्रिया से तो परमाणु पर पहुँच जाओगे, भाव से चले जोड़ने की प्रक्रिया से तो परमात्मा में पहुँच जाओगे।

शिव कह रहे हैं मैं हूँ, हमें बस अपना भर अहसास नहीं होता और सबका अहसास होता है, कारण, हमारी सारी इंद्रियाँ बाहर की तरफ खुलती हैं, आँख बाहर देखती, कान बाहर सुनते, हाथ बाहर छूते, जो भी ज्ञान हम प्राप्त करते वह सब बाहर का है। भीतर का ज्ञान कैसे प्राप्त हो? विचार से न होगा इसलिये शास्त्र काम न आयेंगे, ग्रन्थ काम न आयेंगे, गुरु के उपदेश काम न आयेंगे। भीतर तो सीधा सीधा स्वयं का साक्षात् करना होगा, यह तो भाव से ही संभव है। लेकिन भाव का तो कहीं कोई प्रशिक्षण दिया नहीं जाता। विचार के तो स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय हैं, भाव का तो कहीं कोई पाठशाला नहीं है। भाव सीखना होगा, वह शक्ति जो विचारों में नियोजित है, दिन–रात सोच विचार में मग्न है वहाँ से वह शक्ति मुक्त हो तो वह हृदय में आये और हम भाव से जुड़ें। निर्विचार कैसे घटित हो? यही बड़ी से बड़ी साधना है। निर्विचार की अवस्था में हम स्वयं अपने से जुड़ जाते हैं। विचार दूसरों से जोड़ने के

लिये सेतु है इसलिए विचार एक सामाजिक घटना है। छोटा बच्चा जब तक बोलना नहीं सीखा, भाषा नहीं सीखा तब तक वह असामाजिक है, भाषा सीखने के साथ ही उसका सामाजिक होना, सोशल होना शुरू होता है। संत फिर समाज के पार उठ जाते हैं क्योंकि भाषा और मन के पार उठ जाते हैं। साधु–संन्यासी जो घर–गृहस्थी छोड़कर जंगल चले जाते हैं वे अपने मन को साथ ही ले जाते हैं, जो समाज ने उनको दिया था और असली त्याग करने योग्य वस्तु, वह विचारों का संग्रह ही था।

जो व्यक्ति साधु बन गया वह अभी भी कहता है कि मैं जैन साधु हूँ, कि मैं हिन्दू संन्यासी हूँ, उसने हिन्दुत्व न छोड़ा, उसने जैन शास्त्र न छोड़े, पत्नी को छोड़ दिया, बच्चों को छोड़ दिया, माता–पिता को छोड़ दिया। यह तो और भी मूढ़ता हो गयी, जिनके साथ भाव का जोड़ था उन्हें छोड़ दिया और विचारों का बोझ, वह गठरी अपने साथ ही ले गये। यह त्याग कोई त्याग न हुआ, असली त्याग तो मन का त्याग है। ज्यादा से ज्यादा स्वयं के प्रति जागरूक बनो। शिव कहते हैं ख्याल करो मैं हूँ और मेरा है यह सारा अस्तित्व। इतना विराट अस्तित्व मेरा है, लेकिन हमें अपनी सम्पदा का ख्याल ही नहीं। जब तुम अपने प्रति जागरूक होंगे तभी तुम दूसरों के प्रति भी जागरूक होना शुरू करोगे। तब तुम्हें समझ में आयेगा कि तुम जीवन्त हो और सब तरफ प्राण ऊर्जा ही धड़क रही है। तब चीजों को तुम दूसरे तरीके से देखना शुरू करोगे। तुम घर देर से पहुँचे और पत्नी नाराज हो रही है, तब तुम इसको निगेटिव ढंग से न देखोगे। पत्नी के क्रोध को तुम इस भांति देखोगे कि वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी, इंतजार करते–करते थक गई और इसलिए मुझ पर क्रोधित हो रही है। उसका यह क्रोध भी प्रेम का एक रूप है, यह प्रेम के खिलाफ नहीं है उसकी प्रतीक्षा, प्रतीक्षा की घड़ियाँ ही अन्ततः क्रोध में परिणित हो गईं। तुम्हारे देखने का ढंग बदल जायेगा। लेकिन सबसे पहले तो अपने भीतर सजग होना शुरू करो, स्वयं के होने के प्रति सजग बनो।

ओशो ने इस विधि को समझाते हुये कहा– यह विधि बहुत सुन्दर है, ख्याल करो मैं हूँ। इसे अनुभव करो, इसमें स्थित हो और फिर जानों यह मेरा है, यह अस्तित्व, यह प्रवाहमान जीवन मेरा है। तुम कहे चले जाते हो– यह घर मेरा, यह सामान मेरा, तुम अपनी चीजों की बातें करते हो और तुम्हें पता भी नहीं कि तुम्हारी सच्ची सम्पदा क्या है? समग्र जीवन, सम्पूर्ण आत्मा तुम्हारी सम्पदा है। तुम्हारे भीतर गहनतम संभावना छिपी है अस्तित्व के अंतर्नादित रहस्य की, तुम उसके मालिक हो। शिव कहते हैं कि महसूस करो कि मैं हूँ, अनुभव करो कि यह मेरा है, यह बात सतत् स्मरण रखनी है,

इसे विचार नहीं बना लेना, इसे फीलिंग बनाना है, हृदय से अनुभव करना कि यह मेरा है, यह अस्तित्व मेरा है और तब तुम कृतज्ञता अनुभव कर पाओगे। तब तुम अहोभाव से भर पाओगे। अभी तो तुम भगवान को धन्यवाद देते हो, वह भी बड़ा ऊपरी और औपचारिक होता है। कैसी हमारी दीनता है कि हम ईश्वर के साथ भी औपचारिकता बरतते हैं। अभी तुम कैसे कृतज्ञ हो सकते हो, कृतज्ञ होने लायक तुमने कुछ जाना भी नहीं है। जब तक तुम अपने जीवन के अस्तित्व में केन्द्रित अनुभव नहीं करते, उसके साथ एकात्म अनुभव नहीं करते, परिपूरित अनुभव नहीं करते, जब तक तुम जीवन के नृत्य में सहभागी नहीं होते तब तक धन्यवाद दोगे भी कैसे?

यह पूरा अस्तित्व तुम्हारा है। जब यह प्रतीति होगी, यह रहस्यमय ब्रह्माण्ड मेरा है, यह सारा जगत मेरे लिये है, इसने मुझे पैदा किया है, मैं इसका ही फूल हूँ। जानते हो यह चेतना जो तुम्हें मिली है, यह जगत का सुन्दरतम फूल है। और करोड़ों-करोड़ों अरबों वर्षों में यह पृथ्वी तुम्हारे होने की तैयारी में लगी हुई थी। यह मेरा है इसे अनुभव करो, यही जीवन है, ऐसा है यह, तथाता। अनुभव करना कि मैं नाहक की चिन्ता कर रहा था, मैं व्यर्थ ही भिखारी बना हुआ था, व्यर्थ ही अपने को भिखारी समझ रहा था। मैं तो इस अस्तित्व का मालिक हूँ। अचानक तुम सम्राट हो जाओगे, स्वयं की सम्पदा को जब जानोगे तो। अभी तुम देखते नहीं कि हमारे पास क्या है? मैंने सुना है, मुल्ला नसरूद्दीन अपने मित्र चन्दूलाल से कह रहा था कि भगवान ने आपको सबकुछ तो दिया है, यह धन-दौलत, यह बड़ा मकान, यह खूबसूरत बीबी, ये प्यारे-प्यारे बच्चे, नाम, पद, प्रतिष्ठा, आपको तो देखकर यह कहावत सच लगती है कि खुदा मेहरबान तो गधा पहलवान। खुदा मेहरबान तो गधा पहलवान, उसकी कितनी मेहरबानी है, सामानों से मत तोलना। मकान और बीबी और बच्चे और डिग्री ये तो कुछ भी नहीं, अपने भीतर तो झांको। असली सम्पदा तो वहाँ छिपी हुई है।

मैंने सुना है एक युवक ने अपनी प्रेमिका को जो वेडिंग रिंग दिया था, शादी की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर उसने अपनी पत्नी से कहा कि डार्लिंग खुश हो जाओ, आज तुम्हें एक सरप्राईज देने वाला हूँ, पत्नी ने पूछा क्या? उसने कहा वह जो वेडिंग रिंग मैंने हीरे का तुम्हें दिया था सगाई के समय, आज वह पूरी तरह से तुम्हारा हो गया, क्योंकि मैंने उसकी आखिरी किश्त भी चुका दी है। बाहर की छोटी-छोटी संपदाओं की हम इतनी कीमत आंकते हैं, पच्चीस साल से किश्त चुका रहे हैं और भीतर जो मिला है वह कितना अद्भुत है, उसका हमें कभी ख्याल

भी नहीं आता। अपनी सम्पदा को देखो। शिव कह रहे हैं अपने भीतर भाव में डूबो, हृदय पूर्वक स्वयं से जुड़ो और तब तुम्हें पता चलेगा तुम पूरे अस्तित्व से जुड़े हो। किसी गीतकार ने लिखा है–

संदली सांसें मिलीं उससे लगावट के कारण
नींद टूटी मेरी उसकी गुनगुनाहट के कारण।
मौत की बर्फीली रगों में दिल धड़कने लगा
उसके कदमों की गर्मी और आहट के कारण।
मेरे छोटे से घरौंदे पे जब उसने सीपियां जड़ीं
जुगनू हीरे से लगे उसकी सजावट के कारण।
महकते, रंग भरे, हो गए दिन रात मेरे
विराट चाहत से हुई खिलावट के कारण।

विराट के साथ प्रेम जुड़ जायेगा लेकिन शुरूआत स्वयं से करो। अपने भीतर डूबो, स्वयं के होने का अहसास करो और तब अचानक तुम्हें पता चलेगा तुम इस सारे अस्तित्व के सम्राट हो। महानतम सम्पदा के तुम मालिक हो, व्यर्थ भिखारी बने न घूमो। तुम स्वयं भगवान हो, यह सारा ब्रह्माण्ड तुम्हारा है तब धन्यवाद उठेगा। वह धन्यवाद ही असली प्रार्थना है। प्रार्थना माँगना नहीं, प्रार्थना धन्यवाद देना है। भिखमंगे की भाषा छोड़ो, तुम्हें कितना मिला हुआ है जरा गौर से देखो। शिव कहते हैं, हे पार्वती! अनुभव करो मैं हूँ, यह मेरा है और इस भाव में असीमतः उतरो, इसकी कोई सीमा नहीं, तुम अनन्त, अनादि, असीम के हकदार हो। अपने को जानो।

धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आज की ध्यान विधि में तन, मन, चेतन तीनों का समावेश है। पहले तन का अहसास करेंगे। यह अनूठी देह हमें मिली है, इसके प्रति अहोभाव से भरें, अपना अहोभाव नाचकर, गाकर, झूमकर, उत्सव मनाकर प्रकट करें...।

बैठ जायें आँखें बन्द कर लें अब अपनी आन्तरिक सम्पदा पर नजर करें, अपने मन को फील करें, अपने मन के प्रति धन्यवाद से भरें, मेरा प्यारा मन सबसे जटिल

और कितना छोटा सा कम्प्यूटर है यह। कितनी बातों का समावेश है इसमें। क्या–क्या समाया है इसमें...। मेरा प्यारा मन... तुझे लाख लाख शुक्रिया...। इस धन्यवाद भाव में एक प्रार्थना उठ गई... एक गीत उठ गया... दोनों हाथ जुड़ जाने दें... और तीन बार नमन करें झुक कर...। मन के पार अपने चैतन्य का अनुभव करें... दोनों हाथ आकाश की ओर उठा लें... और शुक्रिया के भाव में डूबे। अब धीरे से शवासन में लेटे, अपने होने को महसूस करें, अनुभव करें मैं हूँ..., मैं हूँ, यह सब कुछ मेरा है, मेरा ही मेरा है इस जहान में..., सब कुछ मेरा है... सर्वस्व मेरा है।

आज का ध्यान पूरा हुआ।

ओम नमः शिवाय।

विधि-88

ज्ञाता और ज्ञेय

प्रत्येक वस्तु ज्ञान के द्वारा ही देखी जाती है। ज्ञान के द्वारा ही आत्मा क्षेत्र में प्रकाशित होती है। उस एक को ज्ञाता और ज्ञेय की भांति देखो।

कार्ल मार्क्स ने घोषणा की है कि सारे धर्म अफीम के नशे हैं। आदमी को सुलाने की तरकीबें हैं कि वे अपने दुखों को भूल जाये। किसी हद तक उसकी बात सही है।

किसी शायर ने लिखा है–

सो जा मेरी मोहब्बत, मेरी बेजुबां सहेली,
यूं ही सहर तक रहेगी, तेरी दास्ताँ पहेली।
तुझे दिल की धड़कनों में न छुपा सकेगा कोई,

तेरे आँसुओं की कीमत न चुका सकेगा कोई।
यूं ही उम्र भर रहेगी तेरी आत्मा अकेली।
सो जा मेरी मोहब्बत, मेरी बेजुबाँ सहेली।
मेरे दिल की धड़कनों को न सिखा ये बहाने।
न पुकार जिन्दगी को, सखी मौत के सिरहाने।
सो जा मैं दे रही हूँ लोरियाँ नशीली।
सो जो मेरी मोहब्बत, मेरी बेजुबां सहेली।
यूं ही सहर तक रहेगी, तेरी दास्तां पहेली।

कार्ल मार्क्स की बात पश्चिम में पैदा हुये धर्मों के बारे में सही है। काश, उसे पतंजलि महर्षि के योग शास्त्र का पता होता। काश, उसे विज्ञान भैरव तंत्र की विधियों का ज्ञान होता। काश, उसने महावीर और बुद्ध के बारे में सुना होता, तब वो ऐसी बात न कहता। धर्म जगाने के उपाय हैं, धर्म लोरी नहीं है। धर्म जगाने का उपाय है, झकझोरने का उपाय है। भीतर की चैतन्यता को, जागरूकता को बढ़ाने का उपाय है। लेकिन तथाकथित धर्मों के नाम पर जो चल रहा है उसके बारे में निश्चित रूप से कार्ल मार्क्स की बात सही है। याद रखना विज्ञान भैरव तंत्र की विधियों को समझते हुये, अगर सिर्फ विधि को क्रियाकांड की भांति आंतरिक ढंग से किया तो वह सुनाने वाली लोरी बन जायेगी। जागरूकता का तत्व उसमें से गायब न हो। पहेली सुलझ सकती है, यूँ ही सहर तक रहेगी, तेरी दास्ताँ पहेली, यह कहने की कोई जरूरत नहीं। सहर हो ही चुकी है, सुबह हो ही चुकी है और पहेली सुलझ सकती है, बड़ी आसान है पहेली को सुलझाने की तरकीब। हम द्वैत में बंटे हुये हैं, काश हम अद्वैत में पहुँच जायें। एक त्रिकोण का ख्याल करो, नीचे दो कोण हैं उसमें, हमें केवल उनका पता है, ऊपर एक तीसरा, शीर्ष कोण भी है उसे हम भूल गये, काश उसकी याद आ जाये, तो पहली सुलझ जाये। नीचे दो दिखाई पड़ रहे हैं, है जबकि एक सत्य। दो झूठ हैं और झूठ में उलझ कर हमारा जीवन दुखी हो गया है। काश, उससे हमारा नाता जुड़ जाये, अद्वैत की पहचान हो जाये, तब वह परम घटना घट जायेगी।

आज की विधि नम्बर 88 में भगवान शिव कहते हैं पार्वती से, कि प्रत्येक वस्तु ज्ञान के द्वारा ही देखी जाती है। ज्ञान के ही द्वारा आत्म क्षेत्र में प्रकाशित होती है। उस एक को ज्ञात और ज्ञेय की भांति देखो। उस एक को, वह ज्ञाता और ज्ञेय दोनों

से परे है। महावीर ने उसको केवल ज्ञान कहा है। ज्ञाता और ज्ञेय, नोअर एण्ड नोन, ऑब्जरवर एण्ड आब्जर्वड् दोनों के पार है ऑब्जर्वेशन, दृष्टा और दृश्य के पार है दर्शन। बड़ी गहन जागरूकता साधनी होगी। हम क्यों नहीं साध पाते, उसके कारण को भी समझ लें। मैंने सुना है, एक नेताजी एक मंच में भाषण देने पहुँचे, कोई पन्द्रह–बीस मिनट बोलते रहे, कुछ घबराये से लड़खड़ाये से, फिर अचानक उन्होंने कहा कि भाइयों आज मैं लम्बा भाषण नहीं दे पाऊंगा, मुझे जल्दी घर जाना है, मेरे घर में आग लगी है। हम सबके जीवन के घर में भी आग लगी है और हमें कोई अर्जेन्सी नहीं, आपातकालीन स्थिति है। घर हमारा जला जा रहा है और हमें होश नहीं। इसलिए हम धर्म की यात्रा पर नहीं निकल पाते। साधना की शुरूआत केवल तभी होती है जब तुम्हें जलती हुई जिन्दगी का अहसास हो जाये। तब तुम चौंकोगे–जागोगे, भागोगे। फिर व्यर्थ की चीजों में अपने जीवन को नहीं उलझाओगे।

मैंने सुना है कि जब स्वर्ग और नरक का निर्माण हुआ, तो लम्बे समय तक नर्क में कोई आया ही नहीं। शैतान और उसके डिपार्टमेंट के कर्मचारी खाली बैठे, बस हाथ पर हाथ धरे, कुछ करने को ही नहीं। तब उन्होंने एक योजना बनाई, मीटिंग की कि क्या किया जाये ताकि लोग नर्क आयें। तीन प्रस्ताव रखे गये, पहला प्रस्ताव यह था कि हम अपने दूतों को धरती पर भेजें और वे प्रचार करें कि सारे धर्म गलत हैं, यह बाइबिल, वेद, कुरान कोई भी सही नहीं हैं। न कहीं कोई स्वर्ग है न कहीं कोई नरक है, न कहीं कोई ईश्वर है। तब लोग निश्चित रूप से नर्क आने लगेंगे। प्रयोग किया गया लेकिन यह सफल न हुआ, लोगों ने उन दूतों की बात न सुनी। दूसरा प्रस्ताव आया कि थोड़ा कम्प्रोमाईज का मार्ग खोजना होगा, हम लोग जाकर कहें कि हाँ, वेद भी सही हैं, कुरान भी सही है, बाइबिल भी सही, ईश्वर भी है लेकिन शैतान जैसी कोई चीज नहीं, नरक कहीं है ही नहीं, तुम मजे से पाप करो। कहीं नरक नहीं जाने वाले। ये वाला प्रपोजल भी काम न किया। तब एक तीसरा प्रपोजल आया और वह बड़ा कारगर सिद्ध हुआ। वह प्रपोजल यह था कि कहो कि धर्म ग्रंथ भी सही हैं, स्वर्ग–नरक भी हैं, ईश्वर, शैतान भी हैं, सब कुछ सही हैं, तुम्हारे पण्डित पुरोहित जो समझा रहे हैं, लेकिन जल्दी क्या है, आराम से, बाद में कभी करना ध्यान साधना, अभी समय नहीं है।

लोगों से मैं कहता हूँ कि छः दिन के लिये आ जाओ, ध्यान समाधि कार्यक्रम में। परमात्मा को जान लो, वे कहते हैं जरूर कभी आयेंगे। कभी कब आयेगा, मौत पहले आ जाती है कभी नहीं आ पाता। छः दिन का समय नहीं निकाल पाते,

परमात्मा को जानने के लिये। शैतान वाली ट्रिक काम कर गई। उसका कि जल्दी क्या है, बाद में कर लेंगे न जरूर, करना तो है। हैं तो हम धार्मिक व्यक्ति, निश्चित रूप से ईश्वर को पाना चाहते हैं, बस थोड़ा सा यह काम निपट जाये फिर आते हैं। वह काम कभी निपटते नहीं, जिन्दगी निपट जाती है, आदमी निपट जाते हैं।

तो तीन बातें स्मरण रखना, जिसे भी साधक बनना है। पहली बात घर तुम्हारा जल रहा है, जिसे तुम जिन्दगी कह रहे हो वो प्रति पल मौत के मुँह में समाती जा रही है। दूसरी बात याद रखना संकट की, आपातकालीन इमर्जेन्सी सिच्युऐशन है। चौंको, जागो, झकझोरो अपने आपको, यूँ सोये-सोये न जियो। और तीसरे बात याद रखना ध्यान की विधियों का परिचय ध्यान की समझ नहीं है। परिचय मात्र को समझ मत जान लेना। एक तो इंटलेक्चुअल अंडरस्टैंडिंग और एक है एक्जिस्टेंशियल एक्सपीरियंस। निश्चित रूप से बौद्धिक ज्ञान उपयोगी होगा अगर अस्तित्वगत ज्ञान में ले जाये। लेकिन सिर्फ विधि के परिचय को ही ध्यान मत समझ लेना वरना तुम पण्डित बन जाओगे, शास्त्री बन जाओगे। शास्त्र तुम्हारे किसी काम न आयेंगे। मैंने सुना है सेठ चंदूलाल बुढ़ापे में बहुत बहरे हो गये। उन्होंने सुना कि अमेरिका में कान की मशीन खोजी गई हो जो ट्रांसपेरेन्ट है, किसी को दिखाई भी नहीं देती। उन्होंने वह मंहगी मशीन बुलवाई। डाक्टर ने उनके कान में फिट कर दी। परिवार के लोगों को पता नहीं, कि चन्दूलाल सुनने लगे हैं। एक हफ्ते बाद डाक्टर ने चंदूलाल से पूछा कि चंदूलाल कुछ फर्क पड़ा मशीन लगाने से? चंदूलाल ने मुस्कुराकर कहा कि बहुत फर्क पड़ा है, परिवार वालों को पता नहीं कि मैं उनकी बात सुन रहा हूँ। पिछले एक हफ्ते में मैं चार बार अपनी वसीयत बदल चुका हूँ। वे मेरे बारे में क्या बातें कर रहे हैं सब मुझे पता है। असली फर्क कान की मशीन से नहीं पड़ेगा। असली फर्क पड़ेगा जब तुम भीतर श्रोता के प्रति ज्ञान से भरो। चंदूलाल चाहे कान से सुने, चाहे ट्रांसपेरेन्ट मशीन से, बाहर की ही सुन रहे हैं। ध्यान उनका बाहर ही है, भीतर ध्यान कब आयेगा। कहने वाले को नहीं, सुनने वाले को पकड़ो, तब वहाँ से ध्यान की शुरूआत होती है।

शिव कह रहे हैं बाहर है ज्ञेय, भीतर है ज्ञाता और इन दोनों के पार है ज्ञान। इस विधि को समझाते हुये परमगुरु ओशो ने कहा- जानने की घटना को तीन बिन्दुओं में बांटा जा सकता है- ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। ज्ञान दो बिन्दुओं के बीच, ज्ञाता और ज्ञेय के बीच सेतु की भांति है। सामान्यतः तुम्हारा ज्ञान सिर्फ ज्ञेय को, विषय को प्रकट करता है, आब्जेक्ट को और ज्ञाता, जानने वाला सब्जेक्ट, छुपा

हुआ रह जाता है। सामान्यतः तुम्हारे ज्ञान में एक तीर होता है। समझो तुम गुलाब का फूल देख रहे हो तो बस, गुलाब के फूल की तरफ तुम्हारा तीर है। जब तक वह तीर तुम्हारी तरफ भी न जाने लगे, तब तक ज्ञान तुम्हें संसार के संबंध में तो जानकारी देगा लेकिन तुम स्वयं आत्मज्ञान से वंचित रह जाओगे। ध्यान की सभी विधियाँ जानने वाले को प्रगट करने की विधियाँ हैं। जार्ज गुर्जिएफ इसी तरह की एक विधि का प्रयोग करता था। उसे वह आत्मस्मरण, सेल्फ रिमेंम्बरन्स कहता था। उसने कहा कि जब तुम किसी चीज को जान रहे हो, जानने वाले को भी जानो।

अपने ज्ञान की क्षमता को विषय में मत भटक जाने दो। अपने ऊपर भी अपना ख्याल लाओ। अभी तुम मुझे सुन रहे हो, मुझे सुनते हुये तुम दो ढंगों से सुन सकते हो। एक ढंग कि तुम्हारा मन सिर्फ मुझ पर केन्द्रित हो जाये। तुम मेरी वाणी को सुनो और सुनने वाले को भूल जाओ। तब बोलने वाला तो जाना जायेगा, सुनने वाला भुला दिया जायेगा। दूसरा ढंग हो सकता है सुनने का कि तुम बाहर की ध्वनि को सुनो और सुनने वाले को भी जानो, श्रोता को भी पहचानो। तुम्हारे ज्ञान को द्विमुखी होना चाहिये। एक–साथ दो बिन्दुओं की ओर, डबल ऐरोड कॉन्शियसनैस, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों की ओर प्रवाहित, तो एक ही दिशा में, सिर्फ विषय की दिशा में नहीं बहना चाहिये। उसे एक साथ दो दिशाओं में ज्ञेय और ज्ञाता की तरफ प्रवाहित होना चाहिये, इसे ही आत्मस्मरण कहते हैं। बुद्ध ने इसे ही सम्यक् स्मृति, सम्मासति कहा है। अपना स्मरण न छूटे, अपना ख्याल रखना और तब हम त्रिकोण के तीसरे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, वही साक्षी चैतन्य है। नीचे है ज्ञाता और ज्ञेय, ऊपर है साक्षी चैतन्य। बात बड़ी आसान है एक बार समझ लो फिर करना बहुत सरल है।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आओ अब हम इस प्रयोग को करते हैं। दो–तीन छोटे–छोटे स्टेप में बांट देंगे।

सबसे पहले मंच पर लगी ओशो की तस्वीर को गौर से देखें। पूरे तल्लीन होकर, एकाग्र होकर देखें। ओशो की तस्वीर को देखना, सारे जगत को भुला देना होगा। एकाग्र हो जायें...। अब दूसरा भाव करें। सामने ओशों की तस्वीर है और इन आँखों के पीछे मैं हूँ...। डबल एरोडे कॉन्शियसनैश...। ओशो की तस्वीर दृश्य है, मैं द्रष्टा हूँ। सेल्फ रिमेम्बरेन्स...। करने में बड़ा आसान... शायद समझने में कठिन लगे। प्रयोग बिल्कुल सरल है। आओ अब एक दूसरा प्रयोग करते हैं। आपके

सामने एक फूल रखा है। उस फूल को अपने हाथ में उठा लें। आँखों के सामने ले आयें और बड़े प्यार से एकाग्रता से तल्लीन होकर फूल को देखें। दूसरा तीर जोड़ दें, कौन है फूल को देखने वाला... आत्मस्मरण...। डबल एरोड कॉन्शियसनेस, साइमलटेनसली और अचानक तीसरा बिन्दु प्रकट हो गया, चैतन्य साक्षी, जो दृश्य और द्रष्टा दोनों को जान रहा है। वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है क्योंकि उसके और पीछे नहीं खिसक सकते, बियॉन्ड आब्जेक्ट एण्ड सब्जेक्ट। वह जो तीसरा बिन्दु है उसके पार नहीं जाया जा सकता। यू केन नॉट ट्रांसेन्डेंट। फूल को नीचे रख दें। विश्राम पूर्वक लेट जायें और उस तीसरे बिन्दु, ट्रांसेन्डेंटल प्वाईंट पर स्थिर हो जायें। वही आत्मरमण की अवस्था है, ध्यान की, समाधि की अवस्था है। जब तक भाव हो, इस अवस्था में डूबे रहें।

बहुत बहुत धन्यवाद्।

ओम नमः शिवाय। ओशो शरणम् गच्छामि।

विधि-८९

क्षण में समाविष्ट

हे प्रिये, इस क्षण में मन, ज्ञान, प्राण, रूप, सबको समाविष्ट होने दो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरूद्दीन रेलवे प्लेटफार्म पर रेल का इंतजार कर रहा था। एक भिखारी ने आकर कहा कि साहब आप तो अखबार पड़ चुके, मुझे दे दीजिये मैं भी पढ़ लूँ। नसरूद्दीन ने खुशी-खुशी उसे अखबार दे दिया। थोड़ी देर बाद वह बोला कि एक रुपया दीजिये, चाय पीने का बड़ा मन हो रहा है। नसरूद्दीन को दया आ गई कि पढ़ा-लिखा आदमी है बेचारा मजबूरी में भीख मांग रहा है, एक रुपया उसको दिया। वह चाय पीकर आया फिर बोला कि साहब अगर दो रुपया और दे दें तो समोसा भी खा लूँ। नसरूद्दीन ने दो रुपये और दिये। वह फिर लौट के आया उसने कहा कि समोसे में मिर्च बहुत थी अगर पाँच रुपये और दे दें तो थोड़ी जलेबी खा लूँ। नसरूद्दीन को हंसी तो आयी लेकिन पाँच रुपये दे दिये और उससे कहा कि मेरे भाई इकट्ठा ही क्यों नहीं माँग लिया एक बार में। उस भिखारी ने कहा तो फिर ठीक है पाँच सौ रुपये का नोट दे दीजिये, लंच भी ले लूंगा, डिनर भी ले लूंगा और गर्ल फ्रैण्ड के

साथ शाम को सिनेमा देखकर रात किसी होटल में सोऊंगा। सब कुछ इकट्ठा।

आज का सूत्र भगवान शिव कहते हैं, हे प्रिये! इस क्षण में मन, प्राण, रूप सबको समाविष्ट हो जाने दो। सब–कुछ इकट्ठा हो जाने दो। टुकड़ों–टुकड़ों खण्ड में न बाँटो। ध्यान की बहुत सी विधियाँ खण्ड करना सिखाती हैं। वे कहती हैं कि भाव करो कि तुम शरीर नहीं हो, कि तुम मन नहीं हो, तन मन से दूर साक्षी बनो, यह संसार तुम नहीं हो। भगवान शिव आज बिल्कुल विपरीत बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं सब कुछ को अपने में समाविष्ट हो जाने दो। इकट्ठा सबकुछ तुममे समा जाये, तुम किसी से भिन्न न रह जाओ। अहंकार को पिघलाने के ये दो उपाय संभव हैं। यह उपाय बहुत कारगर यद्यपि थोड़ा कठिन है क्योंकि हम जिस प्रकार की जीवन शैली जी रहे हैं, हमने चीजों को अपने में समाना बन्द कर दिया है और शिव शर्त लगा रहे हैं इस क्षण में। हम हमेशा भूत या भविष्य में जीते हैं, स्मृतियों अथवा कल्पनाओं में जीते हैं, वर्तमान के इस क्षण में कभी नहीं आते। सबकुछ समाविष्ट करने के लिये इस क्षण में आना होगा। किसी शायर ने लिखा है–

यह न सोचो कल क्या हो, कौन कहे इस पल क्या हो।
रो मत, न रोने दो, ऐसे भी जल थल क्या हो।

बहती नदी की बाँधे बांध, चुल्लू में हलचल क्या हो।
रात ही जब चुपचाप मिले, दिन में फिर चंचल क्या हो।
आज ही आज की कहे, सुनें, क्यों सोंचे हम कल क्या हो।
यह न सोचो कल क्या हो, कौन कहे इस पल क्या हो।

इस पल में आ जाओ। ओशो की देशनाओं में एक मुख्य देशना है, लिविंग मूमेंट टू मूमेंट। वर्तमान के क्षण में जीना सीखो। यह तरकीब है कठिन, लेकिन बड़ी सुन्दर। अगर एक बार तुम्हें पकड़ आ गयी, तो बहुत अनूठी चेतना को विस्तृत करने वाली। आधुनिक युग में मादक द्रव्यों का इतना जो प्रभाव पड़ रहा है उसका कारण यही है कि हम इतने सिकुड़ गये हैं, इतने सिमट गये हैं, इतने अहंकारग्रस्त हो गये हैं, अपने आपमें कैद, अहं की काराग्रह में। हम किसी भी प्रकार से फैलना चाहते हैं, चाहे शराब पीकर, चाहे गाँजा–भाँग लेके चाहे एल.एस.डी. ले के। चेतना को विस्तृत करना चाहते हैं, अहंकार को हम भूल जाना चाहते हैं। वास्तव में मादक द्रव्यों का प्रभाव इसीलिए है कि

हम अपने क्षुद्र अहंकार से थोड़ी देर के लिये मुक्ति पा जाते हैं रासायनिक उपाय द्वारा। यद्यपि ये रासायनिक उपाय खतरनाक हैं। कई बार सुनने में आता है कोई व्यक्ति भाँग खाकर तीसरी मंजिल की खिड़की से कूद गया। इस समय उसको स्वयं का होना अलग महसूस नहीं हो रहा था। उसको तीसरी मंजिल का मकान और नीचे धरती की दूरी समझ नहीं आ रही थी। ये रासायनिक द्रव्य खतरनाक हैं। किन्तु शिव की इस विधि के द्वारा आत्म जागरण के द्वारा अगर इस विस्तार को तुम पा सको, सबको अपने में समाविष्ट कर सको, तो अद्भुत घटना घटेगी।

बहुत ही प्यारी और अद्भुत विधि है यह। मन का काम है विभाजन करना, तोड़ना। नेति–नेति वाली कई विधियाँ मैंने आपको समझायीं। यह विधि सबसे उल्टी है। यह भी मैं हूँ, यह भी मैं हूँ, सबकुछ मैं हूँ। कहीं केन्द्रित मत बनो, अकेन्द्रित हो जाओ, फैल जाओ। कई बार जो लोग बहुत नेति–नेति की साधना करके आते हैं यहाँ ओशोधारा के कार्यक्रम करने, उनको समाधि में डूबने में कठिनाई पड़ती है क्योंकि समाधि में फैलाव है, विस्तार है। नेति–नेति तुम्हें सिकोड़ेगी, सिमटायेगी।

कई बार आत्मा जैसे सुन्दर शब्द के पीछे केवल सूक्ष्म कुरूप अहंकार ही खड़ा हो जाता है। इसलिए तुमने अक्सर देखा होगा ध्यानी, योगी, गंभीर किस्म के लोग हो जाते हैं, बड़े अहंकारग्रस्त हो जाते हैं। इसके ठीक विपरीत भक्त किस्म के लोग प्रसन्न, प्रफुल्लित और आनंदित होते हैं, क्योंकि वे शुरूआत से ही अहंकार को गलाने की चेष्टा करते हैं, नेति–नेति के उसमें नहीं जाते। वे तो सर्वत्र, सबकुछ में फैल जाते हैं और सबकुछ को अपने आपमें समा जाने देते हैं। जब इस विधि को करोगे तो कभी कभी तुम्हें लगेगा कि तुम बिल्कुल हल्के–फुल्के हो गये। कभी लगेगा तुम्हारे शरीर की सीमा खो गई। सामान्यतः हम अपनी त्वचा को अपनी सीमा मानते हैं हम समझते हैं कि इसके अन्दर हम बन्द हैं। अचानक तुम्हें लगेगा तुम बहुत विराट हो गये, पूरा कमरा तुमसे भर गया और कभी–कभी तो ऐसा लगेगा तुम कमरे से बाहर निकल गये। पूरा मकान तुम्हारे भीतर है। पिछली सदी में एक अद्भुत संत हुये, स्वामी रामतीर्थ, उन्होंने इस प्रयोग को किया। वे कहते थे कि चाँद–तारे मेरे भीतर घूमते हैं। सूरज मेरे भीतर उगता और डूबता है। लोग उन्हें पागल समझने लगे। जब वे अमेरिका गये, लोग चकित हुये कि यह किस प्रकार के आदमी हैं।

भारत में तो इस प्रकार की बात चलती है क्योंकि यहाँ बहुत संत हुये हैं, यह बातें हमने सुनी हैं कई लोगों के मुँह से। अमेरिका में बिल्कुल नई बात थी। रामतीर्थ ने कहा कि सारा ब्रह्माण्ड मेरे अंदर घूमता है। रामतीर्थ ने आत्महत्या की, ऐसा लोग कहते हैं।

मेरी दृष्टि में तो आत्महत्या नहीं थी वह। गंगा के किनारे बैठकर उन्होंने एक बहुत सुन्दर कविता लिखी। उन्होंने लिखा कि पूरा ब्रह्माण्ड मेरा शरीर है अब, मैं इस छोटे से क्षुद्र शरीर को क्यों ढोंऊं। यह बोझ जैसा हो गया है और इसको मैं अब विदा करना चाहता हूँ। अब मैं उस असीम और विराट के साथ कोई भी दीवार रखना नहीं चाहता, यह मेरा शरीर एक दीवाल जैसा हो गया है। वह आत्महत्या, आत्महत्या नहीं थी, वह महाशून्य में विलीन हो जाना था। इस प्रकार की विधि को अगर करोगे, इस प्रकार के गहन भाव में डूब सकोगे।

ओशो ने एक प्रवचन में समझाया है कि जब तीन दिन का ध्यान शिविर लेते हैं, तो पहले दिन जब लोग आते हैं अपने–अपने अहंकार की कैद में बंद। फिर धीरे–धीरे पिघलना शुरू होते हैं। सामूहिक रूप से उठते–बैठते, खाना खाते, ध्यान विधियों में डूबते, तीसरा दिन आते–आते एक सामूहिक चेतना, एक कलेक्टिव कान्शेसनेस का उदय होता है। और तब ध्यान में डूबना बड़ा आसान हो जाता है। मैत्रीपूर्ण माहौल में, परिवार के बीच, मित्रजनों के बीच हम फैला हुआ और रिलैक्स अनुभव करते हैं। शत्रुओं के साथ हम क्यों थक जाते हैं? क्योंकि हम अपने अहंकार से चिपक जाते हैं। शत्रु की मौजूदगी में अपने अहंकार को भूलना संभव नहीं है। कुछ संतों ने बहुत अद्भुत बात कही। जीसस ने कहा अपने शत्रु को भी ऐसा प्रेम करो जैसा कि तुम स्वयं को करते हो। इसका अर्थ हुआ फिर तो हमारे सीमा के बाहर कुछ भी न रह गया। शत्रु तक को समाविष्ट कर लिया स्वयं में। सूली पर लटके हुये जीसस क्राइस्ट ने अपने हत्यारों के लिए प्रार्थना की, हे प्रभु इन्हें क्षमा कर देना, बेचारे जानते नहीं कि क्या कर रहे हैं। और एक सामान्य संसारी लोग हैं जो अपने प्रियजनों के साथ, मित्रों के साथ भी एकता का अनुभव नहीं कर पाते।

मैंने सुना है कि एक आदमी ज्योतिषी के पास गया और उसने पूछा कि क्या अगले जनम में भी यही पत्नी मिलेगी? ज्योतिषी ने कहा– हाँ, उसने कहा, लो मारे गये, तब तो आत्महत्या करने का भी कोई फायदा नहीं। हम जिन्हें अपना कह रहे हैं, बस ऊपर ऊपर से ही अपना कह रहे हैं। उनके प्रति भी हमारा अहंकार मिटा नहीं है। काश, जीसस की बात हम समझ पायें। शत्रु को भी प्रेम करो लेकिन पहले कम से कम मित्र को तो प्रेम करने लगो। और उसके भी पहले शिव कह रहे हैं कम से कम अपने रूप, अपने शरीर, अपने मन, अपने प्राण इसको तो प्रेम करने लगो। इस विधि को समझाते हुये परमगुरू ओशो ने कहा– जब तुम किसी मैत्रीपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण समूह से मिलते हो तो तुम अपने व्यक्तित्व को भूल जाते हैं। तुम उस मूल आधार पर उतर आते

हो जहाँ तुम मिल सकते हो। जब किसी शत्रुतापूर्ण व्यक्ति से मिलते हो, तुम ज्यादा अहंकारी हो जाते हो। तुम अपने अहंकार से चिपक जाते हो। और इसी कारण थके–मांदे हो जाते, तुम्हारी ऊर्जा चुक जाती है। क्योंकि सारी ऊर्जा सामूहिक भाव से आती है। यह ध्यान विधि करते समय प्रारंभ में तुम्हें सामूहिक जीवन का भाव अनुभव होगा और अंत में जागतिक चेतना का अनुभव होगा। जब सब भेद गिर जायेंगे, सारी सीमायें विलीन हो जायेंगी और अस्तित्व एक इकाई एक बायोलाजिकल यूनिट हो जायेगा, सबकुछ सम्पूर्ण हो जायेगा, सब उसमें सम्मिलित हो जायेगा, समाहित हो जायेगा। यह विधि सबको समाविष्ट करने के लिये कहती है अपने निजी अस्तित्व से शुरू करो और सम्पूर्ण अस्तित्व को अपने में समा लो।

कहते हैं शिव हे प्रिये! इस क्षण में मन, ज्ञान, प्राण, रूप सबको समाविष्ट होने दो। याद रखने की बुनियादी बात है समावेश करने की। किसी को अलग मत रखो, बाहर मत रखो। इस सूत्र की कुंजी है समस्त का समावेश। सबको समाविष्ट करो, समेट लो। अपने को बढ़ाते जाओ, फैलाते जाओ, विस्तीर्ण हो जाओ। पहले अपने शरीर से यह प्रयोग शुरू करो और फिर बाहरी संसार के साथ भी यह प्रयोग करो। किसी वृक्ष के नीचे बैठकर वृक्ष को देखो और फिर आँखें बन्द कर लो और अनुभव करो कि वृक्ष मेरे भीतर है। आकाश को देखो और फिर आँखें बन्द कर लो और अनुभव करो कि आकाश मेरे भीतर है। सूर्योदय को देखो और फिर आँखें बन्द करके भाव करो कि सूरज मेरे भीतर उग रहा है। फैलते जाओ, फैलते जाओ, विराट होते जाओ और बहुत अद्भुत अनुभव में शीघ्र ही प्रवेश कर जाओगे, समाधि घट जायेगी। नेति–नेति में व्यक्ति सिकुड़ता है, समाधि में व्यक्ति फैलता है। महावीर ने, जिन्होंने संकल्प की साधना दी मुख्य रूप से, अंत में वे निष्कर्ष निकालते हैं कि प्रत्येक आत्मा अलग–अलग है, कहीं कोई परमात्मा नहीं है और जिन लोगों ने फैलाव की साधना की उनका निष्कर्ष बिल्कुल अलग है कि आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है, मैं नहीं हूँ, बस ब्रह्म ही ब्रह्म है। ये दो प्रकार के साधक जगत में रहे हैं। अगर आप मेरा रिकमण्डेशन पूछें, मैं आपसे कहूंगा, फैलाव वाली विधि में डूबना, नेति–नेति वाली में नहीं। फैलना विराट होना, सारे जगत के साथ एक हो जाना, शुरूआत हमेशा स्वयं से करना।

इस विधि को माँ प्रिया के साथ करते हैं, चलें। धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आज का ध्यान है, नृत्य से शुरूआत है इसकी, अपनी देह को, अपने तन के आकार को महसूस करें। इस क्षण में देह को, रूप को समाविष्ट हो जाने दें। देह के प्रति, रूप के प्रति जागें और सेलिब्रेट करें...।

इस क्षण में मन व ज्ञान को समाविष्ट हो जाने दें। विचार के प्रति होश, ये कौन है जो विचार के प्रति जागरूक है, उसका भी होश। बैठ जायें। धीरे से आँखें बन्द किये–किये तेज गति से तीव्र और गहरी श्वांस, और तेज और तेज... ऊर्जा ही ऊर्जा का तूफान आ गया है। महसूस करें ऊर्जा को। पूरी शक्ति लगा दें, पूरे प्राणों को लगा दें। गहरी, तेज। महसूस करें... प्राण ऊर्जा की अनुभूति हो रही है। प्राण ऊर्जा की अनुभूति हो रही है। ठहर जायें। महसूस करें अपनी जीवन ऊर्जा को। प्राण ऊर्जा की अनुभूति, ऊर्जा ही ऊर्जा है। शिथिलता में प्रवेश करें, लेट जायें, शिथिल हो जायें। इस पल में, इस क्षण में सब कुछ है। जो भी है बस यही एक पल है। इसके साथ ही आज का ध्यान पूरा होता है।

ओम नमः शिवाय।

विधि-90

ब्रह्मांड व्याप्त है भीतर

आंख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हल्कापन हृदय में खुलता है और वहां ब्रह्मांड व्याप्त जाता है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरूद्दीन एक दिन ईसाइयों के चर्च में गया। पादरी का लम्बा-चौड़ा उबाऊ प्रवचन सुनकर पूरी तरह बोर हो गया। जब प्रवचन समाप्त हुआ, पादरी ने घोषणा की कि प्रवचन के तुरन्त पश्चात् बोर्ड की मीटिंग बुलाई जा रही है। मुल्ला नसरूद्दीन पहुंच गया वहां। पादरी थोड़ा हैरान हुआ आदमी देखने में शक्ल सूरत से, कपड़ों से मुस्लिम प्रतीत हो रहा है। चर्च की बोर्ड की मीटिंग में क्यों आया? उससे पूछा कि क्या आपको कोई गलतफहमी हो गई? नसरूद्दीन ने कहा बिल्कुल नहीं, इज देअर एनी वन मोअर बोअर्ड दैन मी, आय वुड लाईक टू मीट हिम, मुझसे ज्यादा कोई और बोर भी यहाँ है। मैं तो बुरी तरह बोर हो चुका हूँ। जरा आईने में अपनी शक्ल देखना, यही हालत करीब-करीब सभी की है। उबे हुये, बोर,

तनावग्रस्त, किसी प्रकार लोग जिन्दगी जी रहे हैं। किसी कवि ने लिखा है–

जिन्दगी को बोझ जैसा ढो रहा हूँ,
जागता दिखता हूँ लेकिन सो रहा हूँ।
इन खुली पलकों से तुम धोखा न खाना,
दिवास्वप्नों के चक्रव्यूहों में खो गया हूँ।

और क्यों हम स्वप्न में खोये हैं। क्योंकि दुखी, उदास, ऊबा हुआ आदमी, केवल भविष्य की आशा के ही सपने देख सकता है वरना् आत्महत्या करने का मन होगा। बहुत लोग जो आत्महत्या कर लेते हैं, जिन्दगी से ऊब की वजह से। जिन्दगी में कोई आनन्द नहीं, कोई प्रफुल्लता नहीं, कोई हँसी–खुशी नहीं। और जो लोग जिये चले जा रहे हैं ऊब के बावजूद, वे जरा आशा से भरे हुये हैं। लोग कहते हैं न, आशा से आकाश थमा है। मैंने सुना है, एक दिन एक निराशावादी को लोगों ने अचानक मुस्कुराते देखा, हैरान हुये पूछा तुम मुस्कुरा रहे हो, तुम तो निराशावादी हो? उसने कहा कि मुस्कुरा लो प्यारे, आज हँस लो, क्योंकि हो सकता है कल और भी बद्तर हो। यह निराशा की पराकाष्ठा है। क्यों इतनी निराशा? क्यों ये बोझिल आँखें? क्यों ये स्वप्नों के बोझ तले दबी आँखें? कैसे इनसे मुक्ति हो? तंत्र उसी की विधि बता रहा है। आज की विधि बड़ी प्यारी और बड़ी सरल है। आँखों से संबंधित, ये दिवास्वप्नों को, विचारों को रोकने से संबंधित।

भगवान शिव कहते हैं आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन हृदय में खुलता है। सारी बोझिलता समाप्त हो जाती है, तुम हल्के–फुल्के हो जाते हो, आकाश में उड़ने जैसे। कहते हैं भगवान शिव कि वहाँ हृदय में ब्रह्माण्ड व्याप्त हो जाता है। सारे जगत के साथ तुम एकात्म हो जाते हो। आँख की पुतलियों का पंख जैसा स्पर्श। इस विधि को समझाते हुये परमगुरु ओशो ने कहा– दोनों हथेलियों का उपयोग करो, उन्हें अपनी आँखों पर रखो और हथेलियों से पुतलियों को स्पर्श करो। जैसे पंख से उन्हें छू रहे हो। जरा भी दबाब न डालो। दबाब डालने से विधि गर्त हो जाती है, बिल्कुल दबाब नहीं, बस पंख की भांति छुओ। धीरे–धीरे पंख स्पर्श की कला तुम सीखोगे। आरंभ में आदतवश तुम दबाब डालोगे। धीरे–धीरे दबाब को कम करते जाना। इतना कम कि मालूम ही न चले कि तुम्हारी हथेलियाँ छू रही हैं। मात्र स्पर्श, जरा भी दवाब नहीं। जरा भी दवाब रह गया तो विधि

काम न करेगी। इसलिए इसे पंख स्पर्श विधि कहा गया है। क्यों? क्योंकि जहाँ सुई से काम चल जाये वहाँ तलवार चलाने से काम नहीं चलेगा।

कुछ काम हैं जिन्हें केवल सुई कर सकती है, तलवार नहीं कर सकती। इन दोनों आँखों के मध्य में तीसरी आँख है, प्रज्ञा चक्षु या शिव नेत्र उसे कहो। जब इन दोनों आँखों से ऊर्जा पलट के जाती है भीतर, तो उस तीसरी आँख पर चोट करती है, उसके कारण ही अचानक तुम हल्कापन महसूस करते हो। जमीन से ऊपर उठते हुये मालूम पड़ते हो, मानो गुरुत्वाकर्षण समाप्त हो गया। और यही ऊर्जा तीसरी आँख से चलकर हृदय पर बरसती है। यह एक शारीरिक प्रक्रिया है। बूँद–बूँद नीचे ऊर्जा गिरती है, हृदय पर बरसती है और तुम्हारे हृदय में बड़ा हल्कापन, बड़ा ही लाईट फीलिंग का एहसास होगा, हृदय की धड़कन धीमी हो जायेगी, श्वांस की गति मंद हो जायेगी और तुम्हारा शरीर, पूरा शरीर विश्राम अनुभव करेगा। जब तुम बिना दवाब के छूते हो आँखों को तो तुम्हारे विचार तत्क्षण बंद हो जाते हैं। शांत मन में विचार नहीं चल सकते, वे ठहर जाते हैं। विचारों को गति करने के लिये पागलपन जरूरी है, तनाव जरूरी है, विचार तनाव के सहारे जीते हैं। जब तुम्हारी आँखें मौन, शिथिल और शांत हैं और ऊर्जा पीछे की ओर गति कर रही है, तो निर्विचार अवस्था घटती है। तुम्हें एक सूक्ष्म सुख का अनुभव होगा जो रोज रोज प्रगाढ़ होता जायेगा।

दिन में कई बार यह प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रयोग को दो भांति से कर सकते हो, एक तो साधना के रूप में जब करो, तो कम से कम चालीस मिनट करो। इसे ध्यान की एक विधि बना लो। कभी बिना साधना के हिसाब से यूँ ही अपने बोझ को ऊब को दूर करने के लिये हल्के और ताजे महसूस करने के लिये कर सकते हो। विशेषकर टी.वी. देखने के बाद, पढ़ने–लिखने के काम के बाद, जहाँ तुम्हारी आँखों पर तनाव पड़ा है, आधा मिनट के लिये एक मिनट के लिये, हथेलियों से बन्द आँखों को स्पर्श करो। और अचानक तुम पाओगे बड़ा ही हल्का महसूस होने लगा जैसे कोई बोझ उतर गया हो। आँखों के संबंध में थोड़ी से बातें समझना। पुतलियों की गति और श्वांस की गति मन के साथ जुड़ी हुई हैं। जितने तीव्र विचार मन में चल रहे हों, जितना तनाव हो, उतनी ही ज्यादा पुतलियाँ गति करती हैं और श्वांस ऊबड़–खाबड़ गति से चलने लगती है। यदि हम श्वांस को लय बद्ध कर लें तो भीतर मन शांत हो जाता है। अथवा अगर हम पुतलियों की गति को रोक दें तो भी भीतर मन शांत हो जाता है।

तो त्राटक के प्रयोग भी मन को शांत करने में बड़े सहयोगी हैं और उनसे भी

ज्यादा असरदार प्रभावकारी और सरल विधि जिसमें किसी गुरु की जरूरत नहीं है, यह विधि नम्बर 90 जिसमें भगवान शिव कह रहे हैं पंख स्पर्श करो। यह विधि बड़ी ही सरल, बड़ी ही प्यारी है। इसे करके देखना और चार–छः दिन में धीरे–धीरे तुम्हें समझ में आयेगा कि पंख स्पर्श का क्या अर्थ हुआ। सामान्यतः हमारे जीवन की अस्सी प्रतिशत ऊर्जा आँखों से बर्हिगमन करती है, एक्स्ट्रोवर्ट होती है। अगर यह ऊर्जा वापस हम पर लौट आये तो चमत्कार हो सकता है। जब हम बाहर किसी को देखते हैं, खासकर अगर तुम घूर कर किसी को देखो, तीन सेकेण्ड से ज्यादा, तो इसे असभ्यता माना जाता है। दूसरा व्यक्ति अच्छा महसूस नहीं करता। इसलिए घूर कर देखने वाले को हम कहते हैं लुच्चा। लुच्चा उसी शब्द से बना है जिससे आलोचक बना है। आलोचक यानि घूर–घूर कर देखने वाला। लोचन यानि आँख, तो आलोचक भी एक प्रकार का लुच्चा ही है। किसी को भी देखो, उसे ऐसा लगता है जैसे तुम उस पर हमला कर रहे हो। इसलिए मंच पर जब कोई कवि, कलाकार, नेता, अभिनेता आते हैं, जहाँ हजारों लोग बैठे हैं देखने के लिये, मंच पर आकर वो नर्वस महसूस करने लगते हैं, भीतर पैर कंपने लगते हैं। क्या हुआ? हजारों आक्रमक आँखें उनको देख रहीं हैं। उन पर हमला कर रहीं हैं। इसलिए नर्वसनेस पैदा हो जाती है।

आँख जब बन्द होती है तो यह हमारी ऊर्जा भीतर गति करती है। आक्रमण की जगह यह प्रतिक्रमण बनती है। स्वयं पर वापिस लौटती है। हमारे हृदय में समा जाती है। इसलिए रात को हम विश्राम महसूस करते हैं और सुबह उठकर ताजगी का अनुभव होता है। आधुनिक शहरों में रहने वाला सभ्य शिक्षित व्यक्ति ज्यादा तनावग्रस्त आँखों को लेकर जी रहा है। कहीं छोटे गाँव में, पहाड़ी इलाकों में आदिवासी क्षेत्रों में जाना, वहाँ के लोगों की आँखें ज्यादा सुन्दर, निर्मल, पशुवत्, निर्दोष मिलेंगी, छोटे बच्चों के समान मिलेंगी, क्योंकि वे आँखों से वह काम नहीं ले रहे पढ़ने लिखने का, टेलीविजन देखने का। अमेरिका में औसत व्यक्ति छः घण्टे प्रतिदिन टी.वी. देखता है। हमारी आँखों से बहुत ऊर्जा व्यर्थ बाहर जा रही है अनावश्यक रूप से बाहर जा रही है। जितनी जरूरत है उतनी ही आँख खोलना। इसलिए तो ध्यानियों ने आँख बन्द कर ली ताकि ऊर्जा भीतर वापिस लौटे। ये हाथ से छूने वाली विधि अद्भुत रूप से कारगर है। 10–15 सेकेण्ड्स को भी कभी कर लिया, तुरन्त इसका परिणाम तुम जान सकोगे। ताजगी और स्फूर्ति से भर जाओगे।

अगली बात आँख के संबंध में। आँख जिनकी नहीं है, अन्धे हैं, उन्हें भारत में प्रज्ञा चक्षु कहा जाता है। अकारण नहीं। अन्धे को एक प्रकार का सम्मान दिया है इस

देश ने। सूरदास कह कर पुकारा है। इसके पीछे एक कारण है। यदि आँख बन्द हो, ऊर्जा बाहर न जा सके तो भीतर लौटेगी और काफी संभावना है भीतर वह शिव नेत्र को, प्रज्ञा चक्षु को खोलने में सफल हो जाये। अंधापन दुर्भाग्य की जगह सौभाग्य भी बन सकता है। भीतर परमात्मा के प्रकाश के दर्शन में वही ऊर्जा काम आयेगी। कई बार बहरे लोग ओंकार की ध्वनि को बड़ी आसानी से सुन लेते हैं जो कान वाले नहीं सुन पाते। सौभाग्य को दुर्भाग्य बनाया जा सकता है। सुनो यह प्यारा गीत।

फूल की जो पंखुड़ियाँ टूटीं
चमन से काँच की चूड़ियाँ टूटीं
दिल के मरमरी सर्द फर्श पर
झन से श्वांस की बेड़ियाँ टूटीं।
यादें बिखरी बिखरे दानें या सावन की झड़ियाँ टूटीं
फिसल पड़ा आँखों से काजल
नजरों की जो कड़ियाँ टूटीं।
किसको देखूं कहाँ पर देखूँ इस दुनिया में कौन है मेरा
नैन बन्द कर भीतर खुद के।
देखा तो फुलझड़ियाँ फूटीं।

फिर से सुनना इस लाईन को–

किसको देखूँ कहाँ पर देखूँ इस दुनिया में कौन है मेरा
नैन बन्द कर भीतर खुद के।
देखा तो फुलझड़ियाँ फूटीं।

कभी हमने भीतर देखा नहीं, खुद के भीतर खुदा विराजमान है। लेकिन उस तरह नजर हो, दृष्टि हो। ध्यान की ये सारी विधियाँ अन्तर्मुखी करने की विधियाँ हैं। भीतर जब ऊर्जा स्वयं पर लौटती है तब आत्मज्ञान फलित होता है। अगर हमारे आँख, कान निरंतर बाहर ही उत्सुकता बनाये रखें तब हमें बाहर के जगत का ज्ञान होता है और स्वयं का विस्मरण हो जाता है। यदि हम अपनी सारी इन्द्रियों को बन्द

कर लें, तब हमारी ऊर्जा कहाँ जायेगी। वह जानने की शक्ति जो बाहर व्यस्त हो जाती थी, वह स्वयं को जानने में काम आयेगी। तब आत्मज्ञान फलित होता है। और इसलिये आत्मज्ञानी कहने लगते हैं कि संसार माया है, क्योंकि जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं उसकी सत्यता उद्घाटित हो जाती है और शेष चीजें स्वप्नवत् प्रतीत होने लगती हैं। साधारण आदमी दिवास्वप्नों के चक्र व्यूह में खोया है, बहिर्मुखी ऊर्जा के कारण। काश भीतर लौटने की कला आ जाये। स्वयं का होना सत्य हो जाता है और बाहर का जगत स्वप्नवत् मायावत् हो जाता है। यह विधि बड़ी उपयोगी विधि है। आओ इस ध्यान विधि को करते हैं।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आँखें बन्द कर लें और बन्द आँखों को दोनों हथेलियों से छुएं। पंख जैसा स्पर्श करें। पुतलियाँ... पंखों के स्पर्श को महसूस कर रही हैं ...। बिना दवाब के... हल्का–हल्का स्पर्श... दोनों पुतलियाँ थिर हो गई हैं। फील करें, दोनों पुतलियाँ थम गयी हैं। कोई गति नहीं है। पुतलियाँ थम गईं, विचार बंद हो गये। पुतलियों के मूवमेंट से विचार मूव करते हैं। सारे तनाव विचारों के कारण हैं। विचार खो गये, तनाव बह गये। शांति... ही शांति... मौन ही मौन की अनुभूति... गहन सन्नाटे की... अनुभूति... । सारी ऊर्जा तीसरी आँख से उतर गई है और हृदय केन्द्र पर आ गयी है। हृदय कमल जैसे खिलने लगा है, महसूस करें देखें श्वांस कितनी धीमी हो गई। धड़कन मानों थम ही गई है। 'मेरी जिन्दगी के मालिक, मेरे दिल पर हाथ रख दें। तेरे आने की खुशी में, मेरा दम निकल न जाये।' इस सन्नाटे को, इस प्रेम व शांति को महसूस करते–करते लेट जायें। फूल की पंखुड़ियों की तरह हल्का–फुल्का प्यारा सा शरीर जिसमें कोई वजन नहीं है, जिसमें विश्राम ही विश्राम है। शिव कहते हैं, वहाँ हृदय में ब्रह्माण्ड व्याप्त है। अहम् विदा हुआ..., ब्रह्म अवतरित हुआ। मैं ब्रह्म हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप, मेरा ब्रह्म स्वरूप, मेरा शिव स्वरूप...। इस अपने ब्रह्म स्वरूप में विश्राम करें... विश्राम करें। जब तक भाव हो डूबे रहें...।

आज का ध्यान पूरा हुआ।

ओम नमः शिवाय।

विधि-91

आकाशीय उपस्थिति

हे दयामयी, अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे, आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।

एडमेण्ड हिलेरी ने जब एवरेस्ट की यात्रा की तब सारी दुनिया में कहा गया कि मनुष्य ने हिमालय को जीत लिया है, एवरेस्ट पर चढ़ाई हो गई। प्रकृति पर विजय प्राप्त की। केवल जापान के एक झेन मंदिर में सूचना लिखी गई कि मनुष्य अब एवरेस्ट से भी मित्रता साध चुका है। बड़ा प्यारा शब्द उन्होंने प्रयोग किया मित्रता। सारी दुनिया सोचती है जीत की भाषा में, प्रकृति को हराना है, हिमालय पर चढ़ाई करनी है, विजय पताका फहरानी है। केवल जापान के बौद्ध मठ में इसको मित्रता की घोषणा के रूप में कहा गया। इस फर्क को याद रखना, विज्ञान की उत्सुकता संघर्ष में और जीत में है, धर्म की उत्सुकता जगत के साथ मैत्री भाव साधने में है, प्रेम में डूबने में है, भक्ति में है, अस्तित्व के साथ स्वयं को एक महसूस करने में है। जिसे हम जीतेंगे उसके साथ हम एक कभी नहीं हो सकते, इसलिये धर्म और विज्ञान के इस विरोधी आयामों का स्मरण

रखना। भारत के संतों ने जो विधियाँ खोजी हैं वे पश्चिम के मनोविज्ञान से बिल्कुल भिन्न हैं। कई लोग सोचते हैं धीरे–धीरे मनोविज्ञान, सॉइक्लोजी, धर्म का रिप्लेसमेंट कर देगी, कभी भी ऐसा नहीं हो सकेगा, क्योंकि दोनों की दिशायें बिल्कुल भिन्न–भिन्न हैं।

विज्ञान और मनोविज्ञान कोशिश करते हैं परिस्थितियों को बदलने की, अध्यात्म कोशिश करता है अपनी मनस्थिति को बदलने की। इसको ऐसे समझना अगर भीतर कमरे में ठण्ड लग रही है, जनवरी का ठण्ड का मौसम है, एक उपाय यह है कि हम कमरे को भीतर गर्म करने में लग जायें और दूसरा उपाय यह है कि हम कमरे से बाहर चले जायें बगीचे में, कुनकुनी धूप है, उसका आनन्द लें। हवाई जहाज जब आकाश में उठता है ऊपर, बादलों के पार निकल जाता है तब बादलों से अस्पर्शित और अप्रभावित हो जाता है। बादल अभी भी गरज बरस रहे होंगे, बिजलियाँ चमक रही होंगी, लेकिन हवाई जहाज उनसे दस किलोमीटर ऊपर है, अब उस पर बिजली नहीं गिरती, उस पर ओले नहीं गिरते, अब उस पर पानी नहीं गिरता। पृथ्वी पर अभी भी बादलों का प्रभाव पड़ रहा होगा, लेकिन जो व्यक्ति आकाश में ऊपर उठ गया, वह बादलों के प्रभाव से मुक्त हो गया। ठीक ऐसे ही धर्म की सारी विधियाँ मन से और तन से मुक्त होने की विधियाँ हैं। थोड़ी देर के लिये ही हम अपने स्थूल शरीर से और विचारों के जाल से मुक्त हो जायें तो हम आकाश में ऊपर उठ गये।

आज की विधि भगवान शिव कहते हैं पार्वती से, हे दयामयी! अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो। एक आकाश तो बाहर है, अन्तरिक्ष जिसे हम कहते हैं, एक आकाश और हमारे भीतर है। हमारे शरीर की कई परतें हैं, योगियों ने सात हिस्सों में बांटा है। वे कहते हैं हमारे सात शरीर हैं, पहला स्थूल शरीर फिजिकल बॉडी उससे तो हम सब परिचित हैं। इसके बाद अगला शरीर है आकाश शरीर, बड़ा सूक्ष्म, वह विद्युत ऊर्जा से निर्मित है, वह स्थूल पदार्थ से नहीं बना है और इसलिये उसमें कोई वजन नहीं होता, इसलिए जब स्थूल शरीर को छोड़कर हम आकाशीय शरीर में प्रवेश करते हैं बड़ी निर्भारता का एहसास होता है, वजन शून्यता की स्थिति बन जाती है, सब बड़ा हल्का–फुल्का हो जाता है। रूस में एक बड़ा प्रसिद्ध नर्तक हुआ निजिंस्की। कभी–कभी नाचते–नाचते अचानक वो ऊँची छलांग लगाता था, जो कि मानवीय रूप से संभव नहीं, एक चमत्कार जैसा लगता था और उससे भी विचित्र बात जब वो ऊपर से नीचे उतरता तो यूँ लहराता हुआ जैसे हवा में सूखा पत्ता गिर रहा हो। फिजिक्स के हिसाब से तो यह संभव नहीं होना चाहिए, निजिंस्की का

वजन कम हो जाता था। कभी–कभी योगियों का वजन कम हो गया और वो जमीन से ऊपर उठ गये हैं। याद रखना यहाँ में आपको उड़ने की कला नहीं सिखा रहा हूँ लेकिन निर्भारता का अहसास अगर आपको हो गया तब यह आकाशीय उपस्थिति का अहसास बड़ी आसानी से हो सकेगा, वह उसकी पूर्व भूमिका बन जायेगी, तो वेटलेसनेस का अनुभव बड़ा ही कीमती अनुभव है, ध्यान में जब आपको लगे कि आपका वजन कम हो गया है, यही समय है अपने आकाशीय शरीर में प्रवेश करने का।

किसी कवि ने लिखा है–

कितना हल्का–फुल्का–सा तन हो गया,
जैसे शीशे का सारा बदन हो गया।
अब कोई भी न कांटा चुभेगा मुझे,
जिंदगानी भी देगी न ताना मुझे।
कोई जादू हुआ मेरा मन खो गया,
जिस्म सारा मेरा एक सेहन हो गया।
कितना हल्का–फुल्का–सा तन हो गया,
जैसे शीशे का सारा बदन हो गया।

रुई जैसे हो जाओगे, कपास की भाँति हल्के–फुल्के, पक्षी के पंख की भांति निर्भार। आकाशीय उपस्थिति हमारे शरीर के भीतर भी है और शरीर के बाहर चारों तरफ वस्त्रों की भाँति फैली हुई है। इसलिए जब आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश होता है तो ऐसा लगता है कि विस्तार हो गया, हम फैल गये। सच पूछो तो जब–जब हम प्रसन्न होते हैं, प्रेमपूर्ण होते हैं, प्रफुल्लित होते हैं, हमारा आकाश शरीर फैल जाता है। जब हम उदास होते हैं, चिंतित होते हैं, परेशान और दुखी होते हैं तब हमारा आकाशीय शरीर सिकुड़ जाता है, अब तो इसके चित्र भी लिये जा सकते हैं, किरिलियान फोटोग्राफी के द्वारा आभामण्डल के चित्र लिये गये हैं, वे आकाश शरीर के चित्र हैं। यह ओशोधारा में निरति समाधि का जो कार्यक्रम होता है और रैकी प्रज्ञा का जो कार्यक्रम होता है उसमें आभा मण्डल देखना सिखाया जाता है। बिना किसी मशीन के भी इसे देखा जा सकता है लेकिन मशीन के द्वारा इसका और भी सूक्ष्मता से अवलोकन किया जा

सकता है, डिजिटल फोटोग्राफी के द्वारा भी आभा मण्डल के चित्र लिये जा सकते हैं, उसके साफ्टवेयर डेवलप हो गये हैं। सभी महानगरों में आजकल आभामण्डल के चित्र लेने के केन्द्र हैं। आप कभी अपना चित्र निकलवाकर देखियेगा, फिर इस विधि में जाना और भी आसान हो जायेगा। भगवान शिव के समय तो कोई मशीन न थी, अपने आन्तरिक अनुभव से ही उन्होंने जाना था। कह रहे हैं पार्वती से, इस आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।

विधि नम्बर 90 में उन्होंने निर्भारता की बात की और विधि नम्बर 91 में आकाशीय उपस्थिति की, इन दोनों का एक तालमेल है। निर्भारता के बाद, वेटलेसनैस को जानने के बाद इस नीले आभामण्डल में प्रवेश बहुत आसान है, इसका रंग आकाश के समान ही होता है। इसलिए खुले आकाश के नीचे बैठकर बहुत अच्छा लगता है, उसका कारण हमारा आकाश शरीर भी उसी रंग का है। समुद्र के किनारे जो बैठकर अच्छा लगता है बीच पर आराम करते हुये उसका कारण सागर का नीला रंग, आकाश का नीला रंग है। नीला रंग बड़ा ही शांतिदायी रंग है। यदि आप अपने कमरे के भीतर हल्का नीला आसमानी रंग करवा लें तब आप ज्यादा आसानी से ध्यान में डूब पायेंगे। रंगों का हमारे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। तो प्रसन्न हों, शांत हों, प्रफुल्लित हों, ऊर्जा से भरे हुये हों, तब इस आकाश शरीर में प्रवेश बहुत आसान होता है, फिर कल्पना की जरूरत न पड़ेगी, निर्भारता का अहसास कर लो, फिर आकाशीय शरीर में प्रवेश बहुत आसान है।

मैंने सुना है, एक यूनिवर्सिटी में कुछ विज्ञान के छात्र आपस में ग्रुप डिस्कशन कर रहे थे। प्रोफेसर महोदय भी वहाँ खड़े थे। प्रोफेसर ने कहा कि देखो आज के पढ़े-लिखे आधुनिक व्यक्ति को देखकर कल्पना करना मुश्किल है कि हम लोग बंदरों के वंशज हैं, वानरों की संतान हैं। एक छात्र ने कहा कि सर इसमें कल्पना करने की जरूरत क्या? साक्षात् दर्शन तो हो रहे हैं। ठीक इसी प्रकार एक बार निर्भारता का साक्षात् दर्शन हो जायें फिर आभामण्डल का दर्शन बहुत आसान है। इस विधि को बोलते हुये परमगुरु ओशो ने कहा, आरंभ में यह प्रयोग आंखों को बंद करके करो और जब यह प्रकाश फैलता जाये और तुम्हें आकार के चारों ओर नीला मण्डल महसूस होने लगे तब कभी यह प्रयोग रात में, अंधेरे कमरे में करते समय अचानक आँख खोल लो और अपने शरीर के चारों ओर एक नीला प्रकाश आभामण्डल को देखो। अगर तुम इसे बन्द आँखों से नहीं, खुली आँखों से देखना चाहते हो, इसे सचमुच देखना चाहते हो तो यह प्रयोग बिल्कुल पूर्ण अंधेरे में करो, जहाँ जरा भी कोई रोशनी न हो। यह नीला

प्रकाश, यह नीला आभामण्डल तुम्हारे आकाश शरीर की उपस्थिति है।

तुम्हारे कई शरीर हैं। यह विधि आकाश शरीर से संबंधित है और तुम आकाश शरीर के द्वारा ऊचीं से ऊंची समाधि में प्रवेश कर सकते हो। सात शरीर हैं और भगवत्ता में प्रवेश के लिये प्रत्येक शरीर का उपयोग हो सकता है, प्रत्येक शरीर एक द्वार बन सकता है समाधि में जाने का। यह विधि आकाश शरीर का उपयोग करती है और आकाश शरीर को प्राप्त करना सर्वाधिक सुगम है। शरीर के तल पर जितनी ज्यादा गहराई होगी, उतनी ही उसकी उपलब्धि कठिन होगी। शरीर के साथ तादात्म्य को तोड़ो तो आकाश शरीर के साथ तादात्म्य जुड़ जायेगा। स्थूल शरीर के बहुत निकट है आकाश शरीर। यह दूसरा शरीर है जो तुम्हें चारों तरफ से घेरे हुए है, तुम्हारे स्थूल शरीर के चारों ओर कपड़ों की भाँति, यह तुम्हारे शरीर के भीतर भी है और शरीर के चारों ओर एक धुंधली आभा की तरह, नीले प्रकाश की तरह, ढीले परिधान की तरह तुम्हें घेरे हुये है। शिव कहते हैं, हे दयामयी! अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो, बहुत ऊपर और बहुत नीचे। तुम्हारे चारों ओर सर्वत्र वह नीला प्रकाश है और जब तुम इसे देखोगे विचार तुरन्त ठहर जायेंगे, निर्विचार अवस्था बन जायेगी, इसलिए नीला प्रकाश इतना शांतिदायी होता है।

कभी आपने सोचा नहीं होगा आकाश को देखकर या समुद्र के पास बैठकर इतना अच्छा क्यों लगता है? उसका कारण यही है। आओ आज हम इस विधि में डूबते हैं। विधि में डूबने के पहले निर्भारता का प्रयोग करेंगे, फिर इस नीले आकाश को देखेंगे। और यहाँ तो सिर्फ प्रैक्टिस के लिये आपसे करवा रहे हैं, ठीक–ठीक अनुभव करने के लिये अपने घर जाकर इसे कम से कम तीन महीने तक रोज करना, बिल्कुल अंधेरे कमरे में, रात को। धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आज के ध्यान की शुरूआत खड़े होने से होगी, खड़े हो जायें और तीव्र गति से प्राणायाम करना है, जोर–जोर से श्वांस बाहर फेंके, तीव्र गति से, फेंकने पर जोर हो। शुरू करें...। ठहर जायें....। लम्बी गहरी श्वांस लें और उसे भीतर रोकें। पाँच सेकेण्ड तक रोके रहें, बारम्बार... लम्बी गहरी श्वांस... और उसे भीतर रोकें... जब तक आसानी से रोक सकें, रोकें। अर्न्तकुम्भक भीतर श्वांस रोकें। अब बैठ जायें... आँखें

बन्द रखें और महसूस करें शरीर में कोई वजन नहीं है, निर्भार हो गये हो... जैसे गुरूत्वाकर्षण से मुक्ति ही मिल गयी.... हल्का–फुल्का शरीर... मानो उड़ने लगे हों, उड़ने का आनन्द लें... निर्भारता का आनन्द लें...। अब धीरे से शवासन में लेटें, पूरा शरीर शिथिल छोड़ दें, अपने रूप के ऊपर और नीचे... आकाशीय उपस्थिति में... प्रवेश करें। देह के चारों ओर... नीले आभामण्डल को... महसूस करें...। सब तरफ से एक नीले प्रकाश में घिरा हुआ है। नीली आभा के घेरे में हो तुम... चारों ओर से....। यह नीली आभा... के स्पर्श का एहसास हो रहा है, जैसे कोई मछली चारों ओर सागर के जल से घिरी है ऐसे...। पूरी देह चारों ओर से नीली आभा से घिरी हुई है, इसकी शांति और शीतलता में डूबें... और गहरे... और गहरे...। जब तक भाव हो डूबे रहें...। आज का ध्यान पूरा होता है।

विधि-92

चित्त की सूक्ष्मता

चित्त की ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।

किसी कवि ने मनुष्य की वेदना को इन शब्दों में व्यक्त किया है–

वक्त अपनी दुकान सजाए, मेरे सामने क्यों बैठा है यहां,
जिन्हें मैं खरीदना चाहता हूं, वे चीजें हैं कहां?
नकली मुस्कुराहटें, औपचारिकताएं,
झूठे सम्मान की मालाएं,
चाबी से नाचने वाले खिलौने
कुछ हंसने-हंसाने वाले बौने।
शोहरत के कागजी फूल
दौलत की रक्त-रंजित धूल,

प्लास्टिक की औरत, बारूदी मर्द
और किताबों पर चढ़ी हजारों साल की गर्द।
नहीं, मुझे नहीं चाहिए यह सब सामान!
बन्द करो ये अपनी दुकान।
प्यार का एक खूबसूरत ख्वाब चाहिए
जो मेरी सुलगती आंखों में ठंडक भर दे,
मुहब्बत का छोटा ही सही पर सच्चा लम्हा
जो मेरी बेचैन तड़पती रूह को शांत कर दे।
बस यही एक–दो सामान चाहिए थे मुझे
मगर वक्त की दुकान इनसे खाली निकली।
जो भी चीज वहां थी, सब जाली निकली।

पूरे संसार की कहानी बस यही है, हम जो चीजें चाह रहे हैं, वे उस दुकान में नहीं हैं और हमें कभी ख्याल भी नहीं आता कि हम गलत जगह चीजों को खोज रहे हैं। जो चीज हमारे भीतर है उसे हम बाहर खोज रहे और इस भ्रम में पड़ जाने का कारण संसार एक दर्पण के समान है। हमारे स्वयं के हृदय में मौजूद है प्रेम, परमात्मा, अहोभाव, चैतन्यता, प्रफुल्लता, शान्ति, लेकिन वह दिखाई पड़ती हमें बाहर दर्पण में और हम दर्पण के प्रतिबिम्ब को खोजने चलते हैं। स्वामी रामतीर्थ एक अद्भुत संत हुये, उन्होंने लिखा है कि एक बार वे छोटे गाँव से गुजरते थे, ठण्ड के दिन थे, एक छोटा बच्चा अपने आँगन में खेल रहा था। सुबह की धूप में उसकी लम्बी छाया बन रही थी, वह अपनी छाया का सिर पकड़ने की कोशिश कर रहा था और बड़ा परेशान। यहाँ भागता, वहाँ दौड़ता, लेकिन जब वह दौड़ता तो छाया भी दौड़ जाती, सिर उसकी पकड़ में न आ रहा था, वह रो रहा था। बच्चे की माँ उसको समझा रही थी लेकिन वह समझ नहीं रहा था, वह कह रहा था मुझे छाया का सिर पकड़ना है। रामतीर्थ वहाँ से गुजरे, वे मुस्कुराये, उन्होंने कहा कि मैं इसका तरकीब सिखाता हूँ। उस बच्चे का हाथ पकड़ के स्वामी रामतीर्थ ने उसके खुद के अपने सिर पर रख दिया और वहाँ छाया में भी हाथ सिर में पहुँच गया, बच्चा बहुत खुश हुआ उसने कहा ये हुआ, यही तो मैं चाह रहा था सिर को पकड़ना। उस बच्चे की माँ कहने लगी, ये तरकीब आपने कहाँ से सीखी? आप तो संन्यासी हैं, आपके तो बच्चे नहीं, ये तो मुझे भी नहीं पता

था। रामतीर्थ हँसने लगे उन्होंने कहा कि जन्म जन्मों तक मैं भी बड़ा बचकाना था, मैं भी अपनी छाया का सिर पकड़ने की कोशिश कर रहा था और पकड़ में आता न था और जब स्वयं को पकड़ा तो सब कुछ पकड़ में आ गया। स्वयं के अतिरिक्त जो भी खोजा वह मिला नहीं। स्वयं को खोजो, धन्य हैं वे जो स्वयं को खोजते, स्वयं को पाते और स्वयं हो जाते।

दुनिया में दो दिशायें हैं, एक विज्ञान की दिशा है वह बाहर खोजता है पदार्थ को और पहुँच जाता है खोजते–खोजते सूक्ष्म परमाणु पर। दूसरी दिशा है धर्म की, वह खोजता है स्वयं के भीतर और विराट से अन्त में विराटतम परमात्मा को पा लेता है। विज्ञान देखता है जिन्दगी को एक समस्या की भांति, धर्म देखता जीवन को एक रहस्य की भांति। रहस्य और पहेली का फर्क समझना। पहेली का हल हो सकता है, उत्तर निकल सकता है, रहस्य का कोई उत्तर नहीं होता। विज्ञान खोजता है समाधान, धर्म खोजता है समाधि। विज्ञान उत्पन्न होता है पुरुषोचित बुद्धि से, वह आक्रमण करने की भावदशा में, विजय की भाषा में सोचता है, धर्म पैदा होता है स्त्रैण हृदय से, ग्रहणशीलता से, रिसेप्टिविटी से। विज्ञान विश्लेषक है, धर्म संश्लेषक है। और यही कारण है विज्ञान अंततः विश्व युद्ध तक पहुँच जाता है और धर्म अंततः जीवन के उत्सव पर पहुँच जाता है। दोनों एक दूसरे से विपरीत दिशाओं में जाते हैं। जरा सोचना तुम्हें किस दिशा में जाना है। अगर तुम वक्त की दुकान टटोलने गये तो कुछ भी न मिलेगा, सब सामान वहाँ जाली है। अपने भीतर चलो।

भगवान शिव आज की विधि में कहते हैं, देवी पार्वती से कि हे देवी! चित्त की अव्याख्य सूक्ष्मता को अपने हृदय के नीचे, ऊपर और भीतर रखो। जब वो हृदय शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो स्मरण रखना, हृदय से तात्पर्य है सम्पूर्णता का। मन हमारा एक छोटा सा अंश है, हृदय हमारी संपूर्णता है, हमारी समग्रता है। टू बी इन टोटलिटी, हृदय को एक अंग मत समझना, वह जो सीने के भीतर, छोटा सा हृदय पम्प का काम कर रहा है, उस हृदय की बात नहीं कर रहे हैं, नॉट द एनाटोमिकल हार्ट, हृदय से तात्पर्य सम्पूर्ण चेतना से है। आश्चर्य भाव में जीना शुरू करो। खोपड़ी से जरा नीचे उतरो, छोटे बच्चे की भांति सरल, सहज, आश्चर्य विमुग्ध होकर जिओ। याद करो, बचपन में तुम कितने आश्चर्य विमुग्ध हुआ करते थे, तब तुम हृदय से जी रहे थे, फिर धीरे–धीरे तुमने भाषा, विचार बुद्धि सीखी, स्कूल कालेज की डिग्रियाँ हासिल कीं और तब से तुम बुद्धि में जीने लगे। हर चीज का विश्लेषण करने लगे और

जब तुम विश्लेषण करते हो, किसी चीज का पोस्टमार्टम करते हो तो जो महत्त्वपूर्ण तत्त्व है वह गायब हो जाता है।

पोस्टमार्टम करके कभी भी जीवन हाथ में न आयेगा। तुम लैला और मजनूँ का पोस्टमार्टम करके, उनके हृदय में प्रेम को न पा सकोगे। खून मिल जायेगा, मांस–मज्जा मिल जायेगी, हड्डियाँ मिल जायेंगी, प्रेम न मिलेगा। किसी बड़े वैज्ञानिक के मन का विश्लेषण करके तुम प्रतिभा को न पा सकोगे। प्रतिभा है सूक्ष्म, प्रेम है सूक्ष्म। किसी ऋषि के भीतर विश्लेषण करके परमात्मा को न पा सकोगे। काट–छांट में जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा विदा हो जाता है, इसलिए विज्ञान की दृष्टि से नहीं चलना, मन के द्वारा न चलना, हृदय से जीना। आज की विधि हृदय में जीने की विधि है। जब एक फूल को देखो, उसकी टोटेलिटी में उसे देखो, तल्लीन हो जाओ। नाम मत दो कि यह गुलाब का फूल है कि चम्पा का फूल है, क्या करना नाम से? फूल बस फूल है। सामने फूल है, यहाँ तुम हो, क्या दोनों के भीतर एक ऊर्जा का प्रवाह हो सकता है? हो सकता है। यहाँ आप लोग बैठे हैं, आपको देखने के मेरे दो ढंग हो सकते हैं, एक कि मैं एक–एक व्यक्ति को अलग–अलग देखूँ और दूसरा मैं एक जीवन ऊर्जा का सागर यहाँ देखूँ, जिसकी आप सब लहरें हैं, मैं भी उस सागर की एक लहर हूँ। एक बांटने का ढंग है और एक जोड़ने का ढंग है, धर्म जोड़ने वाला तत्त्व है, विज्ञान बांटने वाला, तोड़ने वाला तत्त्व है।

शिव का प्यारा वचन है, चित्त की अव्याख्य सूक्ष्मता को क्यों अव्याख्य कह रहे हैं? विज्ञान हर चीज की व्याख्या करता है, विश्लेषण करता है, परिभाषा करता है, चीजों को नाम देता है, धर्म चीजों के नाम हटाता है, लेबिल हटाता है। चीन के महान संत लाओत्से ने अपनी किताब ताओ–तेह–किंग में पहला ही वचन कहा कि उसका कोई नाम नहीं है। नाम लेने से रहस्य समाप्त होता है। नाम हटाओ, बिना नाम के चीजों को देखना शुरू करो और तुम चकित होओगे सब कुछ कितना रहस्यमय, कितना विमुग्ध करने वाला है, आश्चर्य से भर जाओगे। विश्लेषण करना छोड़ो, हृदयपूर्वक जीना शुरू करो। जब फूल तुम्हारे सामने हैं तो बस वहाँ फूल का होना, यहाँ तुम्हारा होना और बीच में कुछ धड़कने लगेगा जीवन, तब तुम उसके रहस्य को जान सकोगे। अपने हृदय के ऊपर, नीचे सर्वत्र उसी को व्याप्त होने दो।

मैंने सुना है, एक कुख्यात डाकू जब चुनाव लड़कर सुप्रसिद्ध मंत्री बन गया, तब पत्रकारों ने उसका इंटरव्यू लिया और पूछा कि महोदय, पहले और अब में कुछ

अंतर महसूस करते हैं क्या आप? उन भूतपूर्व डाकू ने कहा, कुछ खास अंतर तो नहीं लगता, पहले भी बड़ी भागदौड़ का जीवन था, अभी भी बड़ी भागदौड़ का जीवन है। फर्क सिर्फ इतना पड़ा कि पहले पुलिस हमारे पीछे–पीछे दौड़ती थी, आजकल आगे–आगे दौड़ती है। आगे–पीछे का क्या भेद करना, अपनी चैतन्यता को, अपनी संवेदनशीलता को, हृदय के आगे, पीछे, भीतर, ऊपर, नीचे सर्वत्र उसी को व्याप्त होने दो। मन अर्थात बादल, चित्त अर्थात वह आकाश जिसमें बादल तैरते हैं, चित्त अर्थात चेतना। पश्चिमी दार्शनिक कहते हैं कि जो चीज जानी जा सकती है वह जनायी भी जा सकती है, बतायी भी जा सकती है। भारत के मनीषी कहते हैं कि मन के द्वारा जो जाना जाता है वह दूसरों को बताया जा सकता है किन्तु हृदय के द्वारा जो जाना जाता है उसका एक बहुत छोटा सा अंश ही प्रकट किया जा सकता है और चैतन्य के द्वारा जा जाना जाता है अन्तर्तम में उसका एक अंश भी प्रगट नहीं किया जा सकता। वह अज्ञेय है, वह अकथनीय है, वह अव्याख्य है।

जगत और परमात्मा दो अलग–अलग घटनायें नहीं, देखने के हमारे दो गेस्टाल्ट, दो दृष्टिकोण हैं। जब तुम अव्याख्य तरीके से, बिना बांटे देखते हो तो परमात्मा नजर आता है और जब तुम मन के द्वारा चीजों को खण्डित करके देखते हो तब संसार नजर आता है। इस विधि को समझाते हुये परमगुरु ओशो ने कहा– यह बात सोचने जैसी है कि सभी धर्म क्यों कहते हैं कि जब तुम सत्य का साक्षात् करोगे तो तुम्हारा अहंकार मिट जायेगा। सभी धर्म इस बात पर जोर देते हैं, इसका अर्थ हुआ कि यह अहंकार जरूर मिथ्या होगा, वरना मिट कैसे सकता है? पदार्थ का एक छोटा सा कण भी नहीं मिट सकता, जो है वह कभी नहीं मिट सकता, केवल वही मिट सकता है जो सचमुच में है ही नहीं, केवल आभास मात्र है। मस्तिष्क के कारण एक झूठी इकाई का आभास होता है स्वयं के होने का। यदि तुम हृदय में उतर जाओ तो वह झूठी इकाई खो जाती है। वह बुद्धि की रचना थी, हृदय में तो बस ब्रह्माण्ड रह जाता है व्यक्ति नहीं, सम्पूर्ण रह जाता है अंश नहीं।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्। नमस्कार।

आज हमने विधि नम्बर 92 समझी, आओ अब उसका व्यवहारिक प्रयोग करते हैं। पहले चरण में आँख बन्द करके, तीव्र और गहरी श्वास लेंगे। छोड़ने पर जोर, लेने

पर नहीं। आरम्भ करें।

दूसरा चरण, अपने दोनों हाथ हृदय पर रख लें, अब हृदयपूर्वक श्वांस लें। धीमी गहरी श्वास, सीने का फैलना, कन्धे और हाथ का थोड़ा सा ऊपर उठना, श्वास के छूटने के साथ रिलेक्स, फिर धीमी गहरी श्वास लें... आहिस्ता से छोड़ें, चलने दें इस प्रक्रिया को। अपने आपको बिना सिर का महसूस करें...। जीवन ऊर्जा खोपड़ी से उतरकर हृदय में आ जाये।

तीसरा चरण, आराम से बैठ जायें, रीढ़ गर्दन सीधी, विश्राम पूर्वक.... दोनों हाथ या तो घुटने पर रख लें या एक के ऊपर एक... महसूस करें आप बिना सिर के हैं...। हृदय की धड़कन को महसूस करें...। सीने में आती–जाती श्वास को महसूस करें...। हृदय पूर्वक श्वास लें...। भगवान शिव कहते हैं पार्वती से, हे देवी! चित्त की इस अव्याख्य सूक्ष्मता को, यह अव्याख्य है, इस सूक्ष्म भावुकता को, इस चैतन्यता को अपने हृदय के ऊपर नीचे और भीतर रखो....। इसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती...। संत इसे अकथनीय कहते हैं....। इस चैतन्यता को हृदय में महसूस करो...। सारी समस्यायें बुद्धि से और विचारों से उत्पन्न हुई हैं। काश हम थोड़ी देर के लिए बुद्धि से छुट्टी पा लें और हृदय से जीना शुरू करें....। यह प्रयोग केवल यहीं करने के लिये नहीं है, दिन में बारम्बार इसका स्मरण करना, जब याद आ जाये एक धीमी गहरी श्वास लेना... हृदय केन्द्रित हो जाना... तुम्हारी जिन्दगी के सारे तनाव विदा हो जायेंगे... चिन्ताएं मिट जायेंगी... अद्भुत विश्राम और शांति उपलब्ध होगी। इसी मंगल कामना के साथ आपके प्रयोग को हम पूरा करते हैं कि सारी पृथ्वी एक कुटुम्ब बन सके, सब लोग हृदयपूर्वक, भावपूर्वक जीना सीख सकें।

बहुत बहुत धन्यवाद। ओम नमो शिवाय।

विधि-93

असीम विस्तार

अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।

किसी शायर ने कहा है–

इक आस उम्मीद बंधी थी जो वह आस उम्मीद भी टूट गई,
जिस देह में बंधकर जीना था वह सांस की डोरी टूट गई।
सोचा था वह सावन पाया जिसमें पुरवइयां चलती हैं
लेकिन ऐसी बरसात आई कि आंसू भी मेरे लूट गई।
सीने से लगाकर वादों को सखियों की तरह से प्यार किया,
हर चोट सही हर दर्द सहा, जीवन भर का इकरार किया।
पर बात तुम्हारी झूठ गई, जिन्दगी मुझसे रूठ गई,
जिस देह में बंधकर जीना था वह सांस की डोरी टूट गई।

इस घोर अंधेरे में मुझको है कौन जो रस्ता दिखलाए
है कौन जो मेरा गम ले ले आंसू पोंछे और समझाए?
तकदीर ने मारा वह पत्थर मेरी कांच की दुनिया फूट गई,
जिस देह में बंधकर जीना था वह सांस की डोरी टूट गई।

देर–अबेर डोरी टूटेगी ही, क्षण–क्षण जरा–जीर्ण होती जा रही है, यह कांच का महल चकनाचूर होगा ही। सौभाग्यशाली हैं वे लोग जिन्हें मृत्यु के पहले मृत्यु बोध आ जाता है। क्योंकि अभी समय है कुछ किया जा सकता है, केवल यह क्षणभंगुर देह ही हमारा होना नहीं है। कुछ और भी है हमारा होना। उस तरफ ख्याल जा सकता है। विज्ञान भैरव तंत्र की यह सारी विधियाँ व्यापकता से संबंधित हैं। भगवान शिव कहते हैं आज की विधि में, अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानों। शरीर तो असीम नहीं हो सकता, शरीर की तो सीमा होगी, मन भी असीम नहीं हो सकता, मन की भी सीमा है। लेकिन तन और मन के भीतर चेतन है, उसकी कोई सीमा नहीं है। अगर हम कल्पना करें कि शरीर का कोई अंग बड़ा होता जा रहा है, फैलता जा रहा है, तो धीरे–धीरे शरीर से हमारा तादात्म्य टूटेगा और चेतना से जुड़ जायेगा।

ये विधियाँ बड़ी सरल हैं, खासकर कम से कम तैंतीस प्रतिशत लोगों के लिये बड़ी सरल हैं, जिनमें कल्पना शक्ति प्रगाढ़ है, जो भाव प्रवण हैं। आधुनिक कचरे–कूड़े से भरा हुआ शिक्षित मन इन विधियों को न कर पायेगा। सरल भोले लोग जो भाव से जीते हैं, हृदय से जीते हैं उनके लिये बहुत आसान होगा। बेहतर हो इस प्रयोग को करने के पहले एक छोटा सा प्रयोग भूमिका रूप में कर लें। अपने दोनों हाथों को इस प्रकार करें उंगलियाँ एक दूसरे में फंस जायें और पाँच मिनट अपने आपको सुझाव देते रहें कि मेरे दोनों हाथ आपस में फंस गये अब ये उंगलियाँ एक–दूसरे में जकड़ गईं और मैं मुट्ठी को न खोल पाऊंगा, हथेलियों को अलग न कर पाऊंगा, पाँच मिनट भीतर ही भीतर स्वयं को यह सुझाव देते रहें। यह आटोहिप्नोटिज़्म सजेशन करीब–करीब तैंतीस प्रतिशत लोगों के लिये सफल हो जायेगा। पाँच मिनट के बाद आप सोचें कि अब मैं हाथ को खोलूँ और आप पायेंगे आपके हाथ नहीं खुल रहे, जितनी ही ज्यादा ताकत आप लगायेंगे खोलने में, उतनी ही मुश्किल हो जायेगी, पसीना छूट जायेगा हाथ न खुल पायेंगे। जिस व्यक्ति को इसमें सफलता मिल गयी वह दूसरी कल्पना का प्रयोग भी कर सकता है। फिर तुम सोच सकते हो कि तुम्हारा सिर विराट हो रहा है, फैलता

जा रहा है, कल्पनाशील, सृजनशील, भावप्रवण, स्वप्नद्रष्टा लोगों के लिये यह विधि बड़ी कारगर है।

हमारा शिक्षित मन, संस्कारित मन, चीजों को विभाजित करता है सीमाओं में तोड़ता है, चीजों को क्लासिफाई करता है, वर्गीकृत करता है। मन सीमा के साथ बड़ा कुशल है असीम के साथ मन खोने लगता है। इसलिये असीम की कल्पना भी मन को मिटाने वाली है। कई बार लोग मुझसे पूछते हैं कि कल्पना की विधियाँ कैसे काम करेंगी? तुम्हें पता नहीं, जो समस्या है वह भी काल्पनिक है। एक कल्पना के कांटे को दूसरे कल्पना के कांटे से निकाला जा सकता है, निश्चित ही बाद में दोनों ही कांटे व्यर्थ हैं दोनों ही फेंक देने हैं। काल्पनिक बीमारी के लिये किसी वास्तविक औषधि की जरूरत नहीं है।

मुझे याद आता है, एक मरीज मेरे पास आया, कहने लगा कि उसके कान के अंदर मक्खी घुस गई है और उसके सिर में अन्दर भनभना रही है। वह कोई दो साल से परेशान था, पता नहीं कितने डाक्टरों का, अलग-अलग पैथियों में इलाज करा चुका था। वह कहता था मेरे सिर के अन्दर मक्खी घूम रही है, उसकी भनभनाहट सुनाई देती है, उसके मूवमेन्ट पता चल रहे, कान में से भीतर घुस गई। बड़ी मुश्किल थी, झूठी बीमारी। बहुत डाक्टरों ने भांति-भांति का इलाज करने की कोशिश की लेकिन उसकी बीमारी ठीक न हुई। मुझे उसके लिये एक झूठा उपाय करना पड़ा, मैंने अपने कम्पाउण्डर से कहा एक मक्खी कहीं से मार कर लाओ, छुपा के एक शीशी में रख के लाओ, उस आदमी से कहा कि तुम्हारा तो ऑपरेशन करना पड़ेगा। कान के पास एक झूठा कट लगाया, सिर्फ सुपरफिशियल स्किन काटी, टांके लगाये, उसको इंजेक्शन दिया, शून्य किया और बाद में उसको निकाल के दिखाया कि देखो शीशी में यह जो मक्खी रखी है ये मिली भीतर। वह बहुत प्रसन्न हुआ, उसने कहा आजतक दूसरे कोई डाक्टर मेरी बात मानते ही न थे, पता नहीं क्या दवाइयाँ देते थे और कहते थे तुमको डिप्रेशन हो गया है, मानसिक रोग हो गया है, मैं भला-चंगा आदमी हूँ अब सिर में मक्खी भनभना रही थी तो कैसे सहन करूँ। अच्छा किया कि आपने निकाल दी। उस दिन के बाद वह मक्खी से मुक्त हो गया। काल्पनिक मक्खी है झूठा इलाज काम करेगा, क्योंकि बीमारी स्वयं ही झूठी है। हमने मान लिया कि हम देह में सीमित हैं हमारी यह मान्यता झूठी है। अगर हम असीमता की भावना करें, तो बात बन जायेगी। बात बड़ी सरल और सुगम है, बस इतना ही ख्याल रखना इसके मैकेनिज्म क्या हैं? मन परिभाषाओं के साथ, सीमाओं के साथ, व्याख्याओं के साथ, सिद्धांतों के साथ बड़ा

कुशल है अगर हम अव्याख्य, अपरिभाषित, अनादि, असीम, अनन्त की कल्पना करें तो मन विलीन हो जायेगा। मन को विलीन करने का बड़ा सुगम उपाय भगवान शिव बता रहे हैं।

ओशो इस विधि को समझाते हुये कहते हैं– अच्छा होगा पहले तुम सिर से शुरू करके देखो क्योंकि वही सब बीमारियों की जड़ है। अपनी आँखें बन्द कर लो, जमीन पर लेट जाओ या किसी कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ और सिर के भीतर देखो। सिर की दीवालों को फैलता हुआ महसूस करो। यदि घबराहट मालूम हो तो धीरे–धीरे करना। पहले सोचो कि तुम्हारा सिर दो फिट का हो गया, अब पाँच फुट का हो गया, अब तुम्हारा सिर दीवालों को छू रहा है, पूरे कमरे में समा गया। जब तुम्हें ऐसा स्पष्ट अनुभव होने लगे कि दीवारों की शीतलता तुम्हें छू रही है, दबाब महसूस हो रहा है, तब और आगे बढ़ो, भाव करो कि तुम्हारा पूरा घर तुम्हारे सिर के भीतर समाया है। जब इसमें सफल हो जाओ फिर भाव करो कि पूरा शहर तुम्हारे भीतर समाया है, तीन चार महीने के भीतर धीरे धीरे तुम एक ऐसी स्थिति में पाओगे जहाँ तुम कह सकते हो कि सूरज तुम्हारे भीतर उगते और डूबते हैं, चाँद तुम्हारे भीतर चक्कर लगा रहा है, तुम्हारा सिर अनन्त हो गया। इससे तुम्हें इतनी स्वतंत्रता मिलेगी जितनी पहले तुमने कभी न जानी थी। और सब दुख जो इस संकीर्ण मन से संबंधित हैं, वे समाप्त हो जायेंगे, ऐसी स्थिति में ही उपनिषद् के ऋषियों ने कहा होगा अहम् ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ। ऐसे ही आनन्द के क्षण में मंसूर ने अनलहक की घोषणा की होगी।

मुसलमान बहुत नाराज हो गये मंसूर से कि ये अपने आपको परमात्मा कह रहा है, उन्होंने मंसूर को सजा दी, मृत्यु की। मंसूर हँसा, मरते हुये भी हँसा, उसने कहा कि तुम मुझे मार ही नहीं सकते, अगर दस साल पहले तुमने मुझे मारा होता, तो तुम मुझे कष्ट दे पाते, अब तुम मुझे कष्ट नहीं दे सकते क्योंकि मैं तो पूरा ब्रह्माण्ड हूं। तुम ब्रह्माण्ड के इस छोटे से हिस्से को इस शरीर को मार रहे हो उससे क्या होगा? वह तो खुद ही थोड़े दिन बाद मर जाने वाला था लेकिन मैं तो विराट अनन्त, चैतन्य हूँ, तुम मुझे छू भी नहीं सकते। सन्त गोरखनाथ कहते हैं, मरो हे जोगी मरो, मरो मरण है मीठा, तिस मरणी मरो, जिस मरणी मर गोरख दीठा। एक साधारण मौत तो सभी लोग मरते हैं। एक और मौत है– ध्यान की मृत्यु, समाधि की मृत्यु। काश वह हो जाये, तिस मरणी मरो, जिस मरणी मर गोरख दीठा। गोरखनाथ की तरह मरो, तब अहंकार मरता है, शरीर तो नहीं मरता। अहंकार मरता है, मन मरता है, सीमायें मरती हैं, तब अनादि और अनन्त तुम हो जाते हो और तब जीवन में

आनन्द ही आनन्द है।

आधुनिक युग में मादक द्रव्यों का जो प्रचलन बढ़ रहा है, उसका कारण भी यही है। मादक द्रव्य हिंसक रूप से, रासायनिक रूप से असीमता का अहसास कराते हैं। माना कि वह अनुभूति क्षणभंगुर ही है, थोड़ी देर टिकती है लेकिन फिर भी उन क्षणों में सारे दुख समाप्त हो जाते हैं और एक आकर्षण उत्पन्न होता है पुनः–पुनः उन मादक द्रव्यों को लेने का। आदमी उसमें डिपेन्डेंट हो जाता है, शरीर रूग्ण होने लगता है उन द्रव्यों की वजह से और हम उनके गुलाम हो जाते हैं। लेकिन वह जो अनुभूति होती है वही अनुभूति ध्यान में बिना किसी रासायनिक द्रव्य के हो सकती है, समाधि को एक्सट्सि कहा जाता है अंग्रेजी में, एक्सट्सि का अर्थ है बाहर खड़े होना। अपने शरीर के बाहर असीम के साथ एक हो जाना, तो मादक द्रव्यों से जो थोड़ी देर के लिये होता है, फिर वापस गुलामी में आ जाना पड़ता है, समाधि में वह सदा–सदा के लिये होता है, एक आत्मिक मस्ती आ जायेगी, जो फिर कभी नहीं जायेगी।

गुरु नानक देव जी ने कहा है– चढ़ी रहे दिन रात, ऐसी मस्ती छा जाती है जो फिर कभी नहीं जाती। जब तक तुम्हें विधि करनी पड़े उस मस्ती को लाने के लिये, तब तक जानना कि अभी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिली। एक दिन ऐसा आना चाहिये कि विधि की भी जरूरत न रह जाये, तभी तुम पूर्ण मुक्त हुये। ख्याल रहे विधि भी बंधन न बन जाये, इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम विधि ही न करो, विधि को नाव की भांति उपयोग करना, जब इस किनारे हो तो नाव में बैठना, पतवार चलाना, उस पार जाना, जब उस पार पहुँच जाओ तो नाव को छोड़कर उतर भी जाना। विधियाँ उपयोगी हैं, बैठना भी और उतरना भी।

आओ आज की इस विधि में बैठते हैं, माँ ओशो प्रिया के संग, धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन् नमस्कार!

संगीत की धुन पर पूरे शरीर को कंपित करें, कंपन पैरों से उठकर सिर तक जा रहे हैं ऐसा महसूस करें, रोंआ रोंआ कंपित हो जाने दें, शुरू करें। ...। ठहर जायें, ठहर जायें। आँखें बन्द कर लें, लम्बी गहरी श्वांस लें...। श्वांस लेते समय ऐसा महसूस करें कि हवा ऊपर की ओर जा रही है...। सिर की ओर जा रही है...। जैसे कोई बैलून में हम हवा भरें और वह बैलून फूलता है, ठीक ऐसे। श्वास लेते हुये भाव करें, हवा ऊपर की ओर जा रही है...। सिर की ओर जा रही है...। पाँच सेकण्ड रूक कर भीतर श्वास

रोककर इसकी अनुभूति और अच्छे से होगी...। अब धीरे से बैठ जायें, आँखे बन्द किये किये बैठे। महिलायें भाव करें कि उनका चेहरा फैलता जा रहा है... फैलता जा रहा है, हाथ आकाश की ओर उठा कर। पुरुष भाव करें उनका सिर फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है, हाथ ऊपर उठा लो। सिर विराट होता जा रहा है... विराट होता जा रहा है... विराट ..., चेहरा फैलता जा रहा है... फैलता जा रहा है... असीम होता जा रहा है...। धीरे से लेट जायें और अपने चेहरे की... असीमितता को महसूस करें, अपने सिर की विराटता को महसूस करें...। कितना विराट हो गया है यह सिर, कोई सीमा नहीं है इसकी..., दूर-दूर तक न आदि है इसका, न अन्त है... विस्तार ही विस्तार है... फैलाव ही फैलाव है... असीम विस्तार...। इस फैलाव का कोई अन्त नहीं है... कोई अन्त नहीं है...। इस फैलाव में इस असीम विराट भाव में लीन हो जाएं और जब तक भाव हो डूबे रहें...।

आज का ध्यान पूरा हुआ। ओम नमः शिवाय।

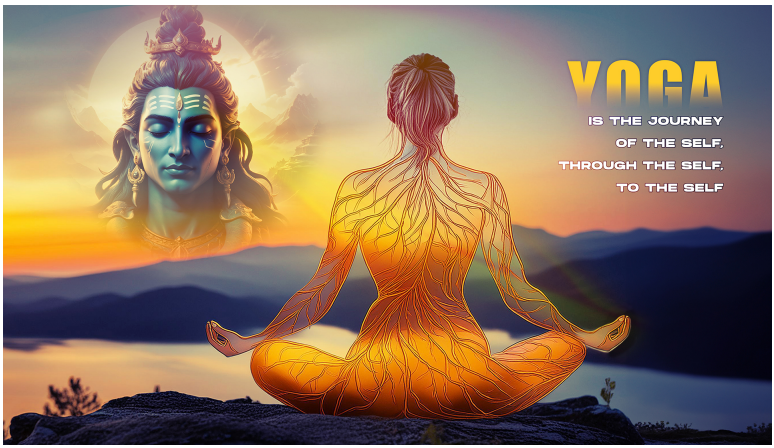

विधि-94

ब्रह्मांडीय सार से भरे

अपने शरीर, अस्थियों, मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।

आज विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नम्बर 94 में भगवान शिव पार्वती से कहते हैं कि हे देवी, अपने शरीर को, अस्थियों को, मांस और रक्त को ब्रह्माण्डी सार से भरा महसूस करो। कल्पना करो कि सारे ब्रह्माण्ड का सार तत्त्व तुममें समाया हुआ है। कई लोग मुझसे प्रश्न पूछते हैं कि तंत्र सूत्र में बहुत सी विधियाँ कल्पना पर आधारित हैं, कल्पना कैसे काम करेगी। कल्पना से सत्य में कैसे प्रवेश हो सकेगा। हो सकता है हमेशा से मनीषियों का विवाद हमारे देश में रहा है, देह और मन के बारे में, पदार्थ और चेतन के बारे में कि सत्य क्या है। चार्वाकवादी कहते हैं कि केवल पदार्थ सत्य है, चेतना उसका वाई प्रोडक्ट है।

आत्मवादी कहते हैं कि चेतना ही सत्य है, पदार्थ केवल उसका सघन रूप है। तंत्र की दृष्टि में दोनों बातें सही हैं और ओशो इस बात से राजी हैं। वे कहते हैं कि

दोनों ठीक हैं। बेहतर होगा कहना कि कोई एक तीसरा तत्त्व है एक्स, अनाम, वह दो–दो रूपों में प्रगट होता है। शरीर के रूप में भी और मन के रूप में भी। यह बात ज्यादा वैज्ञानिक, ज्यादा बौद्धिक रूप से स्वीकृत हो सकती है। एक अननोन तत्त्व, वह ब्रह्माण्डीय सार तत्त्व वही दो रूपों में प्रगट हो रहा है, मन बनकर और देह बनकर। इसलिये दो प्रकार की साधनायें संभव हैं। हठ योग शरीर से शुरू करता है अंतर्यात्रा, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, भोजन, आहार परिवर्तन और राजयोग शुरू करता है मन से। तंत्र की दृष्टि में हठ योग और राज योग, दोनों सही हैं। दोनों तरफ से यात्रा शुरू हो सकती है। कल्पना से भी, मन से भी, विचार से भी, भाव से भी यात्रा शुरू हो सकती है। इसलिये तंत्र में हम ऐसा नहीं पूछते कि भोजन को बदलने से क्या होगा, आसन को बदलने से क्या होगा।

वहाँ से भी शुरूआत हो सकती है। श्वास को बदलने से क्या होगा? स्वास तो शरीर का हिस्सा है, बदलना है चेतना को। यह प्रश्न तंत्र की दृष्टि में असंगत है। ठीक इसी प्रकार यह प्रश्न भी असंगत है कि कल्पना करने से क्या होगा? भाव करने से क्या होगा? तुम शरीर भी हो, तुम विचार भी हो, तुम भाव भी हो। कहीं से भी शुरू करो, जिसको जहाँ से रुचे वहाँ से शुरू कर दे, अंतर्यात्रा संभव है। आज की विधि लगेगी कल्पना से पूर्ण है कि ब्रह्माण्डीय सार तत्व से अपने आपको भरा हुआ महसूस करो। लेकिन बड़ी प्यारी विधि है। स्वप्न से भी सत्य में द्वार खुलता है। याद रखना, स्वप्न एक फूल की भांति है। जैसे गुलाब का फूल केवल गुलाब की झाड़ी पर ही पनप सकता है। फूल अनायास हर कहीं नहीं पैदा हो जाता। उसके लिये एक बेकग्राउण्ड, एक भूमिका चाहिये। गुलाब की जड़ें चाहिये।

तुम्हारे भीतर जो स्वप्न या विचार या कल्पनायें आते हैं, वे अनायास नहीं आते। उनके पीछे एक बेकग्राउण्ड, एक पृष्ठभूमि चाहिए। और इसलिये अगर तुम स्वप्न को बदलने की कोशिश करो, कल्पना को बदलने की कोशिश करो, तब तुम पूरे वृक्ष को रूपांतरित करने में सफल हो जाओगे। इसलिये कल्पना वाली विधि को सिर्फ कल्पना की विधि न समझना। तिब्बत में साधक सदा से प्रयोग करते रहे हैं, बर्फीली रात में जब भयानक ठण्ड पड़ रही है, बर्फ गिर रही है तब साधक नग्न खड़ा हो जाता है खुले आकाश के नीचे। और अपने शरीर से पसीना बहाता है। इसका बड़ा अभ्यास करते हैं वे, भीतरी ताप को बाहर लाने को। इसको वे ताप योग कहते हैं। इसका उल्टा भी किया महावीर ने इस देश में। गर्मी के दिनों में तेज धूप में, चिलचिलाती धूप में खड़े हो गये। जैन समझते हैं कि वे शरीर विरोधी थे, अपने

आपको को कष्ट दे रहे थे, नहीं कष्ट नहीं दे रहे थे, उन्होंने कल्पना की कि भीतर की शीतलता बाहर आ रही है और वैसा हुआ, शरीर पर उसके परिणाम हुये। महावीर किसी कष्ट में नहीं थे धूप में खड़े होकर। और तिब्बत का वह साधक बर्फ में खड़े होकर किसी प्रकार का दुख नहीं झेल रहा है। उन्होंने एक विधि अपनाई है, कल्पना के द्वारा अपनी आंतरिक शीतलता या ताप को बाहर लाने की।

अभी थोड़े सालों पहले पश्चिम में एक चिकित्सा पद्धति शुरू हुई है, उसका उन्होंने नाम दिया है– दिशा मान स्वप्न। अपने स्वप्न को दिशा देना शुरू करो। और तुम पाओगे कि स्वप्न से तुम्हारी वास्तविकता भी बदलने लगी। आज की विधि उन लोगों के लिये ज्यादा आसान हो जायेगी जिन्होंने तंत्र सूत्र की विधि नम्बर 37 से लेकर 47 तक की ग्यारह विधियों को साधा है और ब्रह्मनाद को जाना है। जिन्होंने एक बार ओंकार को सुन लिया, वे बड़ी आसानी से महसूस कर लेंगे कि भीतर ओंकार से लबालब हैं, ब्रह्माण्ड का सारतत्त्व, ओंकार की गूँज उनके भीतर निनादित हो रही है। सुनो यह नज़्म–

जवा बरसात की रात जल तरंग बजाती है
लहक लहक के नयी लय के संग गाती है
चमकती बूँदों की पाजेब झनझनाती है।
सजीले पेड़ की बाहों में सिमटी–सिमटी हवा
लजा–लजा के युँही चूड़ियाँ खनखनाती है
हवा से झूमके बेवजह खिलखिलाती है
सुहाने सांवले सावन की मुंतजर यह फजा
जमीं की सौंधी सी खुशबू में थरथराती है
पुराना खत पढ़के ज्यों बिरहन मुस्कुराती है
और ऐसे में कहीं दूर से आती मीठी धुन
सुन रात के सन्नाटे में कुछ सुनाती है।
जरा गौर से सुन कायनात गुनगुनाती है।

जरा गौर से सुनना सारा ब्रह्माण्ड गूँज रहा है। मौन भी निनादित हो रहा है। एक बार तुमने ओंकार को समझ लिया फिर यह विधि बड़ी आसान होगी। ओशो ने

इस विधि को समझाते हुये कहा कि तुम अपने आपको आनंद से, मौन से, संगीत से भरा हुआ महसूस न कर पाओगे क्योंकि तुम दुख के इतने आदी हो। अच्छा हो एक हफ्ते के लिये प्रयोग करो कि मैं दुख से, निराशा से, चिंता, तनाव, विषाद से भरा हुआ हूँ, यह तुम्हारे लिये ज्यादा आसान होगा। इसके तुम अभ्यस्त हो और एक हफ्ते में जब तुम बिल्कुल दुखी हो जाओ, खूब तनावग्रस्त हो जाओ, चिन्तित परेशान हो जाओ। तब दो घटनायें घटेंगी। एक बात तो यह समझ में आ जायेगी कि तुम्हारे भाव करने से वैसा ही हो जाता है और दूसरी बात हँसी भी आयेगी कि मैं भी कैसा मूढ़ हूँ, मैं अपने आपको दुख से भर रहा हूँ। तब तुम्हें समझ में आयेगा, आज तक तुमने जितने दुख झेले हैं वे सब भी तुम्हारे मन की ही कल्पनायें थीं और तब इसका विपरीत करना बहुत आसान होगा कि तुम आनन्द से, ब्रह्माण्डीय सारतत्त्व से, परमात्मा से भरे हुये हो।

एक बौद्ध ग्रंथ है, लंका अवतार सूत्र। उसमें भगवान गौतम बुद्ध महामती को उपदेश देते हैं, कहते हैं– हे महामती, सब कुछ मन ही है। स्वर्ग भी मन है, नरक भी मन है। संसार भी मन है और निर्वाण भी मन है। ध्यान भी मन है और गैर ध्यान की अवस्था भी मन है। महामती पूछता है, हे भगवन! स्वर्ग, नरक भी मन? बुद्ध कहते हैं, हाँ! यह शरीर भी मन है और परमात्मा भी मन है। सब मन का ही खेल है, तुम इसको करके देखना। दुख से भरने में जब सफल हो जाओगे, फिर सुख से भरना भी बहुत आसान हो जायेगा। दुख के प्रति ग्रहणशील होने पर सब तरफ से दुख की तरंगें तुममे प्रवेश करने लगती हैं, अपना गेस्टाल्ट बदलो, आनन्द के प्रति ग्रहणशील बनो, प्रेम के प्रति ग्रहणशील बनो। लेकिन हमारी मनोदशा बिल्कुल उल्टी है, हम नरक के प्रति तो अपने द्वार खोल के बैठे हैं, स्वर्ग से हमें परहेज है।

कई लोग मुझे आकर कहते हैं कि हमें कोई प्रेम नहीं करता, बड़ी मुश्किल है और मैं उन व्यक्तियों को देखता हूँ वे सब तरफ से दीवाल, दरवाजे बन्द करके बैठे हैं, खिड़की और रोशनदान उनके बंद हैं, उनमें प्रेम की हवा प्रवेश कर ही नहीं सकती। कोई उन्हें प्रेम करे तो भी वे रिसेप्टिव नहीं हैं, ग्रहणशील नहीं हैं। ग्रहणशील बनने की कला सीखो और भाव करो कि रंध्र–रंध्र में तुम्हारे ओंकार की धुन गूँज रही है फिर ब्रह्माण्डीय सारतत्त्व अपने आप में भरा हुआ महसूस कर पाओगे। इस विधि को समझाते हुये ओशो ने कहा, स्वयं को ब्रह्माण्डीय तत्व से भरा हुआ अनुभव करने की यह विधि बहुत अद्भुत है। सुबह से जब तुम्हें लगे कि जीवन जाग रहा है नींद समाप्त हो गयी तो पहला विचार तुम्हारे भीतर होना चाहिये कि तुम नहीं स्वयं

परमात्मा जाग रहा है, परमात्मा नींद से वापस आ रहा है। इसलिये तो हिन्दुओं ने, जो कि संसार में धर्म के आयाम में सर्वाधिक गहरी उतरने वाली जाति हैं उन्होंने सुबह अपने पहली सांस पर परमात्मा के नाम से जोड़ी। अब तो यह मात्र एक औपचारिकता रह गई और असली बात खो गई किन्तु इसका मूल भाव यही था कि सुबह जिस क्षण तुम जागो, स्वयं को नहीं प्रभु को स्मरण करो। परमात्मा तुम्हारा पहला ख्याल बने और वही तुम्हारा अंतिम स्मरण भी हो सोते समय।

परमात्मा का स्मरण बना रहे वही प्रथम, वही अन्तिम और यदि सच में ही सुबह जागने के बाद और रात सोने के पहले परमात्मा का स्मरण बना रहा तो दिन भर भी और रात भर भी प्रभु ही तुम्हारे संग होगा। रात सोते समय उसी से भरे हुये सोओ। तुम हैरान होंगे कि तुम्हारी नींद का गुण–धर्म बदल गया। वह समाधि जैसी हो गई। भाव करो कि तुम नहीं सो रहे। परमात्मा थक गया दिन भर में, अब सोने जा रहा है। जब बिस्तर बिछाओ तो प्रभु के लिये बिछाओ, अतिथि आ रहा है और जब बिस्तर में लेटो तो तुम मत लेटो, उसी को लेटने दो। अतिथि की तरह प्रभु का स्वीकार, सत्कार करो और नींद आते–आते यही अनुभव करो कि परमात्मा सो रहा है। हर श्वास उससे भरी हुई है वही हृदय में धड़क रहा है। अब वह पूरे दिन काम करके थक गया और अब सोना चाहता है। सुबह तुम अनुभव करोगे कि रात तुम अलग ढंग से सोये। नींद का पूरा गुण–धर्म ही बदल गया, ब्रह्माण्डीय हो गया क्योंकि उसके गहरे तल पर प्रभु से मिलन हो गया। बड़ी अद्भुत है यह विधि।

आओ माँ ओशो प्रिया के संग इस विधि में गहराई से डूबते हैं।

धन्यवाद...।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

आज के ध्यान की शुरूआत करते हैं। भ्रामरी प्राणायाम करना है। भंवरे जैसा गुंजार करें। बाहर जाती श्वांस और भंवरे के गुंजार जैसी आवाज।

शुरू करें– आंखें बन्द करें ...।

अब चुप हो जायें...। घंटी के मधुर स्वर को सुनें। स्वयं को गुंजार से भरा हुआ महसूस करें...। घण्टी भी बंद हो गयी फिर भी भीतर कुछ बज रहा है उस ब्रह्मनाद को सुनें...। अस्थियों में..., मांस–मज्जा में..., रक्त में यही ब्रह्माण्डीय सारतत्त्व भरा हुआ है...। लेट जायें शवासन में...। कितनी दिव्यता की अनुभूति हो

रही है। दिव्यता को अनुभव करने से... सारे भय ... चिन्ता... सब विलीन हो गये।

विश्राम ही विश्राम आ गया, विश्राम ही विश्राम..., सब कुछ शिथिल हो गया शांत हो गया..., विश्राम हो गया...। ब्रह्माण्डीय सार तत्व को... निरंतर... महसूस करते हुये इस तत्त्व से स्वयं को भरा जानते हुये.. देखें भीतर भी वही है, बाहर भी वही है, गूंजता हुआ ब्रह्मनाद ...। भीतर भरा हुआ... सारतत्त्व... ब्रह्माण्डीय सारतत्त्व...। जब तक भाव करे इस ब्रह्मनाद में डूबे रहें...।

इसकी गहराईयों में उतरते जायें। इसमें लीन हो जायें...।

आज का ध्यान पूरा हुआ। हरि ओम् तत्सत्।

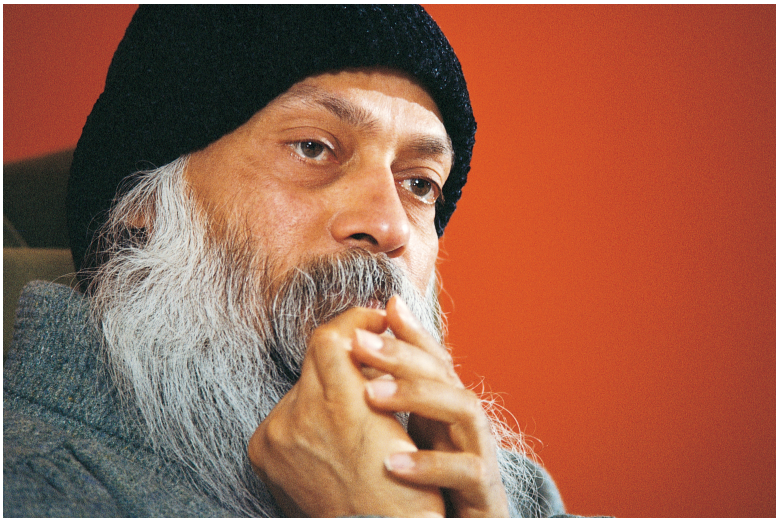

विधि-95

सृजनशीलता के गुण

अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हैं।

किसी शायर ने लिखा है–
मोहब्बत के रंग इन्द्रधनुष की तरह–
कायनात के इस किनारे से उस किनारे तक तने हुये हैं
और उसके दोनों सिरे दर्द के अथाह समुंदर में डूबे हुये हैं।
आदमी के जीवन की कहानी बस यही है।
इतना कह कर बीत गई हर ठण्डी भीगी रात,
सुख के लम्हे दुख के साथी थे मेरे खाली हाथ।

पूरी जिन्दगी की भागदौड़, आपा–धापी और अन्त में हम पाते हैं, हाथ खाली है,

देख ठीक से हाँ देख ठीक से, सृजन शून्य हैं तेरे खाली हाथ।
एक हमारा साया ही जो साथ था पहले अब भी है,
एक फकीरों सा अहसास जो पहले था सो अब भी है।
कैसे उजाले कैसे अंधेरे, कितनी राहें कितनी बाहें,
हर नुक्कड़ पर ढूंढ़ा जिनको मुट्ठी से वे फिसल पड़े
और हाथ हमारा खाली जो पहले था सो अब भी है।
हर लम्हे का जीना मरना क्या करना अब क्या डरना
भीख मिली सांसों के एवज, दिल को अपने मसल चले
लालच का यह भंवर जाल, जो पहले था सो अब भी है।
और हाथ हमरा खाली जो पहले था सो अब भी है।
दुख के लम्हे, दुख के साथी, तेरे खाली हाथ,
देख ठीक से हाँ देख ठीक से, सृजन शून्य हैं तेरे खाली हाथ।

जब तक व्यक्ति सृजनात्मक न बने, जीवन में आनन्द और उत्सव नहीं हो सकता। क्रियेटिविटी एक धार्मिक गुण है। इस बात को अपने भीतर बहुत गहराई से उतरने देना। लोग कहते हैं कि हम आनन्द की तलाश में हैं, लेकिन वे सृजन शून्य हैं, रचनात्मक उनका एटीट्यूड नहीं है। वे जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं कर रहे, निर्वाण जैसा आनन्द घटित नहीं होगा। आनन्द कमाना पड़ता है सृजनात्मक बन कर। इसलिए ओशो की धार्मिकता में क्रियेटिविटी या सृजनात्मकता एक अनिवार्य लक्षण है। हमारे तथाकथित साधु-संन्यासी, संसार से भाग जाने वाले जरा भी रचनात्मक न थे। उन्होंने कुछ सृजन नहीं किया। कोई आदमी बैठकर गुफा में आँख बंद करके तीसरे नेत्र पर ध्यान कर रहा है, इससे जीवन में कुछ सृजन नहीं होता।

बुद्ध और महावीर के करोड़ों-करोड़ों शिष्य भी भीख मांगते फिर रहे हैं, इन्होंने जिन्दगी की छोटी-मोटी रचनात्मकता भी छोड़ दी। इन्होंने किया क्या? हम जिन्हें महात्मा कहते हैं, जरा एक बार गौर से देखो तो सही, उन्होंने जगत के लिये क्या किया है? स्वयं के लिये क्या किया है? कुछ भी नहीं, सृजन शून्य हैं। अपने भीतर के सृजनात्मकता के गुण को बढ़ावा देना होगा। मनुष्य तक प्रकृति विकसित होती चली आई, विकास अर्थात् अचेतन रूप से हो रही ग्रोथ। मनुष्यता के बाद प्रकृति ने अपने हाथ खींच लिये हैं, उसने हमें बुद्धि और विवेक दे दिया। अब हमारी जिम्मेवारी है आगे

हम स्वयं विकसित हों। यही फर्क है विकास और क्रांति का। विकास प्रकृति के हाथ में होता है, क्रांति विवेक के हाथ में होती है। हमें स्वयं सृजनात्मक बनना होगा। सृजनात्मकता के भी दो अलग–अलग आयाम हैं, एक पुरूषों का आयाम, एक स्त्रियों का आयाम।

आज की विधि नम्बर 95 में याद रखना भगवान शिव अपनी अर्धांगिनी से, पार्वती देवी से कह रहे हैं कि हे देवी! अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हैं। विज्ञान भैरव तंत्र, दुनिया के सभी धर्म ग्रन्थ पुरूष गुरूओं द्वारा पुरूष शिष्यों के लिये कहे गये वचन हैं। केवल विज्ञान भैरव तंत्र एक मात्र ऐसा ग्रंथ है जिसमें एक स्त्री के लिये संबोधन करके सूत्र दिये गये हैं। इसलिये तंत्र की बहुत से विधियाँ ऐसी हैं जो स्त्रियों के लिये हैं। आज की यह विधि केवल स्त्रियों के लिये है। स्त्रियों की सृजनात्मकता उनके स्तनों में समाहित होती है और इसलिये आश्चर्य नहीं कि पुरूषों ने मूर्तियाँ गढ़ी, विज्ञान को पैदा किया, काव्य शास्त्र लिखे, नाटक लिखे, भांति–भांति से सृजनात्मकता को प्रगट किया, स्त्रियों ने इन सब चीजों में रस न लिया। कारण बच्चों को दुग्धपान कराकर ही उनकी सृजनात्मकता को तृप्ति मिल जाती है। पुरूष अतृप्त रहता है, बैचेन रहता है। उसकी बैचेनी ही उसको विविध दिशाओं में ले जाती है कि वह मूर्ति गढ़े या कविता लिखे। लेकिन याद रखना कोई मूर्ति एक शिशु से ज्यादा जीवंत नहीं हो सकती, कितनी ही सुन्दर मूर्ति हो, पत्थर की ही मूर्ति होगी। कोई पेंटिंग कितनी ही सुन्दर पेंटिंग हो और कोई कविता कितनी ही प्यारी हो, उसके प्राण नहीं धड़कते, वह मुर्दा शब्द ही हैं, ठीक बड़े प्यारे होंगे, सुन्दर होंगे, सजाये होंगे, जमाये होंगे, लेकिन शब्द तो वह शब्द ही हैं, उसके भीतर कोई आत्मा नहीं होती।

अपने भीतर की जीवन्तता को जगाने की बड़ी प्यारी विधि दे रहे हैं स्त्रियों के लिये। याद रखना सामान्य मनुष्य केवल जीवित है, बुद्ध जीवंत होते हैं। सचेतन विकास से, सृजनात्मकता से जीवन्तता का उदय होता है। इवोल्युशन और रिवोल्युशन का यही फर्क है। जब तुम धन, पद, यश और ज्ञान इकट्ठा करते हो तो याद रखना तुम्हारा सामान बढ़ता है तुम नहीं बढ़ते। मैं फिर से इस बात को दोहरा दूँ, जब तुम सामान बढ़ाते हो सुख–सुविधा के, तो सामान तो बढ़ा, तुम नहीं बढ़े। सृजनात्मकता ऐसी होनी चाहिये जिसमें तुम बढ़ो, तुम्हारी ग्रोथ हो। मनुष्य और पशु का एक भेद स्मरण रखना, मनुष्य अस्तित्व लेकर पैदा होता है, आत्मा उसे स्वयं पैदा करनी होती है। पशु अपनी आत्मा, अपनी नियति लेकर पैदा होते हैं। इसलिए पशु

निश्चित हैं और उनमें सृजनात्मकता नहीं होती। सृजनात्मकता पुरूषों का एक गुण है। पशुओं से मनुष्य भिन्न है इस मामले में। आत्म सृजन और चैतन्य का विकास परम तृप्ति और परितोष जीवन में लाता है।

बुद्ध ने, महावीर ने, स्त्रियों की तरह बच्चों को तो जन्म नहीं दिया लेकिन उन्होंने एक जनम और दिया स्वयं को, अपने आपको। वे आत्मसृजन में संलग्न हुये और इसलिए जो गहन तृप्ति और संतोष उन्हें मिलता है, याद रखना और इसी लिए बुद्ध और महावीर भी अहिंसा और करूणा से भरकर स्त्रैण हो जाते हैं। पश्चिम के एक दार्शनिक फ्रेडरिक नित्से ने बड़ी आलोचना की है जीसस की और बुद्ध की। ये लोग औरतों के समान हैं, उसने तो निन्दात्मक तरीके से कहा है लेकिन अगर गौर से देखना जीसस के भीतर जो प्रेम की भावना है, बुद्ध के भीतर जो करूणा की भावना है और महावीर के भीतर जो अहिंसा की भावना है, स्त्रियों के भी आगे निकल गये वे। तो पुरूषों की सृजनात्मकता का ढ़ंग अलग होगा। यह विधि केवल स्त्रियों के लिये है।

भगवान शिव अपनी जीवन संगिनी को, अपनी प्रेमिका को कह रहे स्तनों पर एकाग्र करने के लिये। क्योंकि स्तन स्त्रियों के शरीर के सर्वाधिक धनात्मक ध्रुव हैं। पुरूषों के लिये यह बात बिल्कुल उल्टी है, वे पुरूषों के नकारात्मक ध्रुव हैं और ध्यान हमेशा पॉजिटिव पोल पर, विधायक पर करना चाहिये। नकारात्मक पर अगर ध्यान किया तो मन बेचैन और खिन्न हो जायेगा, उदास हो जायेगा। विधायक ध्रुव पर ध्यान करने से जीवन में प्रफुल्लता और प्रेम का विकास होता है और विश्राम घटित होता है। पिता का होना एक सांयोगिक घटना है। पुरूष विवाह करते हैं ताकि पत्नी को पा सकें और स्त्रियों विवाह इसलिये करती हैं ताकि बच्चे को पा सकें, मातृत्व को चुनौती मिल सके। इसलिए विवाह के बाद स्त्री पुरूष के भीतर एक द्वन्द्व जो चलता रहता है उसका कारण समझना, विवाह का कारण दोनों का अलग–अलग है। पिता बनना एक सांयोगिक घटना है, पुरूष ने पिता बनना चाहा न था उसने तो सिर्फ पत्नी को चाहा था और स्त्री के लिये पत्नी बनना एक सांयोगिक घटना है, उसकी मुख्य चाहत बच्चे को जन्म देके अपने भीतर के मातृत्व को विकसित करने की थी। आश्चर्य नहीं है कि स्त्रियों ने न मूर्ति बनाई, न कविता रची, न विज्ञान में रस लिया, क्योंकि उन्हें एक बहुत गहन तृप्ति अपने भीतर बच्चे को दुग्धपान कराकर ही हो जाती है।

आजकल पश्चिम में जहाँ प्रचलन हो गया है कि बच्चों को दूध नहीं पिलाना है, वहाँ की स्त्रियाँ ज्यादा विध्वंसात्मक हो रही हैं, वे पुरूषों जैसी राजनीति में भाग लेने लगीं, वे पुरूषों की नकल में पड़ने लगी हैं, यह ठीक नहीं है। यह ऐसा तभी होना चाहिए

जब पति–पत्नी के बीच इतना प्रेम हो जाये, कि उस पत्नी को अपना पति भी बेटे जैसा लगने लगे। वेदों में ऋषि नव विवाहित वर वधू को आशिर्वाद देते हैं और कहते हैं कि जाओ तुम्हारे दस पुत्र हों और तुम्हारा पति तुम्हारा ग्यारहवाँ पुत्र हो जाये। एक दिन ऐसा आ सकता है। एक बार ऐसा हुआ महात्मा गाँधी और कस्तूरबा गाँधी कहीं मंच पर थे, नयी जगह थी, जो व्यक्ति परिचय देने जा रहा था उसको कुछ मालूम नहीं था। उसने कहा कि बड़ी खुशी की बात है कि महात्मा गाँधी जी तो आये हुये हैं और उनकी माँ भी उनके साथ आयी हुई हैं। जो अन्य लोग थे उन्होंने बाद में नाराजगी जाहिर की, कि तुम्हें पता नहीं वो उनकी पत्नी हैं, उनकी माँ नहीं हैं। लेकिन महात्मा गाँधी प्रसन्न हुये, उन्होंने कहा कि भूल से इस व्यक्ति ने मेरा सही परिचय दे दिया है। कस्तूरबा पहले मेरी पत्नी थीं, लेकिन पिछले कई सालों से वे मेरी माँ ही हो गई हैं। अगर ऐसा हो सके, तभी कोई स्त्री बिना बच्चों को जन्म दिये, बिना दुग्ध पान कराये ही उस गहन तृप्ति को पा सकती है।

तो आज की इस विधि को करते हुये स्मरण रखना केवल स्त्रियों के लिये यह विशेष विधि है और स्त्री की सृजनात्मकता अलग प्रकार की होगी इसका भी ख्याल रखना। जब एक स्त्री सृजनशील होगी, उसे विशेष प्रकार के स्वप्न आने लगेंगे। उसकी कल्पना शक्ति विजन देखने में सक्षम हो जायेगी। अगर स्त्री गर्भवती है तो वह अपने बच्चे का आकार और रूप भी देख सकती है। उसके गर्भ में बेटा है या बेटी इसका भी उसे पता चल सकता है। एक अज्ञात भीनी–भीनी सुगन्ध से वह भर जायेगी। जब उसके भीतर की क्रियेटिविटी जन्मेगी, संगीत के मधुर स्वर उसे सुनाई पड़ने लगेंगे। वे इन कानों से नहीं कहीं और से सुनाई पढ़ते हैं। एक अनूठा स्वाद और एक अद्भुत सुगन्ध उसके भीतर छा जायेगी। स्त्री की सृजनात्मकता पुरूषों जैसी नहीं होगी, अन्य आयाम होगा उसका और अन्ततः भीतर के सारे दिव्य अनुभव भी खो जायेंगे और परम शून्यता उद्घाटित होगी। अन्तिम लक्ष्य मिल जायेगा। जो बुद्ध ने, महावीर ने, शंकराचार्य ने जाना, जिस परम ऊँचाई को छुआ स्त्री उसे बड़ी आसानी से इस ध्यान विधि के माध्यम से पा सकती है। अंतिम बात ओशो ने इस संबंध में सावधान किया है, कि दोनों स्तनों पर एक साथ ध्यान साधा जाये वरना एक प्रकार का असंतुलन पैदा हो सकता है। इस सावधानी का विशेष ख्याल रखा जाये। तीन महीने इस प्रयोग को किया जाये। तो स्त्री का जीवन पूरी तरह रूपांतरित हो जायेगा। एक अद्भुत बुद्धत्व उसे फलित होगा। पुरूषों के बुद्धत्व से थोड़ा भिन्न और ज्यादा गहरा, माधुर्य और सौन्दर्य से भरा हुआ। तो आओ इस ध्यान विधि को करते हैं। धन्यवाद्...।

माँ ओशो प्रिया–

आँख बन्द करके रीढ़, कमर सीधी। लम्बी–लम्बी गहरी गहरी सांस लेंगे मेरे कहने के साथ, सामने झुकें पीछे..... सामने..... पीछे..... सामने..... पीछे..... सामने..... पीछे..... सामने..... पीछे..... अब स्थिर हो जायें। दोनों हाथ हृदय पर..... गहरी श्वास लें। हाथ जोड़ना नहीं है, हाथ सीने पर रख लें। भीतर श्वास लें कंधे ऊपर उठेंगे। श्वास छोड़ने में कन्धे नीचे। श्वास लें... छोड़ें... लें... छोड़ें... लें... छोड़ें... लें... छोड़ें... लें... छोड़ें... लें... छोड़ें... हाथ ऐसे ही रखें, श्वास शिथिल छोड़ दें आराम लेने दें। स्थिर, अब कोई मूवमेंट नहीं। आराम से...। रिलेक्स...। हाथ सीने पर रहेंगे, एक मिनट और...। अपने स्तनों पर ध्यान केन्द्रित करो। स्त्रियों के लिये विशेष...। दुनिया के किसी धर्म ग्रन्थ में स्त्रियों के लिये विधियाँ नहीं हैं, सिवाय विज्ञान भैरव तंत्र के। सूक्ष्म रूप से स्तनों के माध्यम से भीतर प्रवेश कर रहे हैं। अब आराम से लेट जायें। हाथ रिलेक्स छोड़ दें। दो मिनट के लिये विश्राम...। अब कोई हलन–चलन नहीं...। अपने दोनों हाथ जोड़ लें। धन्यवाद के भाव से भरें...।

विधि-96

व्यापकता की विधि

किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो, वृक्षों, पहाड़ियों, प्राणियों से रहित हो। जब मन के भारों का अंत हो जाता है।

ये कैसा अपरिचय है अपनों से, परायों से,
हम कितने अजनबी हैं खुद अपने ही सायों से।
चाँद तन्हा है आसमाँ तन्हा, दिल मिला है कहाँ कहाँ तन्हा,
बुझ गयी आस छुप गया तारा, थरथराता रहा धुँआ तन्हा।
जिन्दगी क्या इसी को कहते हैं जिस्म तन्हा है और जाँ तन्हा
हमसफर कोई गर मिले भी कहीं, संग चलते रहे दोनों तन्हा।
जलती बुझती रोशनी के परे सिमटा सिमटा सा इक मकाँ तन्हा,
राह देखा करेगा सदियों तक, छोड़ जब जायेंगे जहान तन्हा।

सारी जिन्दगी की कहानी तन्हाई की कहानी है। जन्म अकेले है, मौत अकेले है, बीच में सिर्फ धोखा है कि हम संग-साथ है कि कोई हमसफर है। हमसफर कोई गर मिले भी कहीं, संग चलते रहे दोनों तन्हा। प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। अकेला होना हमारा यथार्थ है। समाज सिर्फ एक धोखा है। हम प्रवंचना में पड़ जाते हैं कि कोई हमारे साथ है। वास्तव में कोई साथ

न है, न हो सकता है। अपने एकांत में जीना सीखना होगा, जिसे धर्म की खोज में जाना है।

आज विधि नम्बर 96 में, भगवान शिव कहते हैं कि हे देवी! किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो। वृक्षों, पहाड़ियों और प्राणियों से रहित हो, तब मन के भारों का अंत हो जाता है। एकान्त में जाने से क्यों मन के भारों का अन्त हो जायेगा इस बात को थोड़ा समझो। हमारे चार प्रकार के संबंध हैं। एक संबंध वस्तुओं से, वह विचार के तल पर होता है। वैज्ञानिक विचार के तल से खोजबीन करते हैं वस्तुओं की, पदार्थ की। दूसरे प्रकार का संबंध व्यक्तियों से है, समाज से है, चारों तरफ के लोगों से है। वह संबंध अहंकार के तल पर है। हर व्यक्ति के साथ हमें अलग प्रकार के अहंकार का मुखौटा, औपचारिकताओं का मुखौटा ओढ़ना पड़ता है। इसलिए वह भी बड़ा भारी पड़ता है। झूठ और नकली हमें होना पड़ता है। हर व्यक्ति के संग अलग–अलग, पत्नी के साथ आप कुछ और हैं प्रेमिका के सामने कुछ और हैं, अपने बोस के सामने कुछ और हैं अपने सब–आर्डिनेट के सामने कुछ और हैं। मालिक के सामने कुछ और, पिता के सामने कुछ और बेटे के सामने बिल्कुल भिन्न। आपके कई चेहरे हैं। इन नकाबों का बोझ सिर पर लदता चला जाता है। फिर तीसरे प्रकार का संबंध प्रकृति से है। वहाँ न तो विचार काम के, न अहंकार की कोई जरूरत, वृक्ष के पास बैठे हुये या नदी के किनारे उसकी कल–कल ध्वनि को सुनते हुये, कि रात चाँद आकाश में देखते हुये न विचारों की जरूरत है न अहंकार की कोई जरूरत है, न किसी औपचारिकता या सामाजिकता का कोई सवाल है, वहाँ हम भाव से जुड़ सकते हैं।

तो पहला संबंध हुआ विचार का, वस्तुओं के साथ। दूसरा संबंध अहंकार का, समाज के साथ और तीसरा संबंध है भाव का, प्रकृति के साथ। चौथा संबंध है सम्पूर्ण अस्तित्व से, वह और भी गहरा, जहाँ भाव की कोई तरंगे नहीं उठतीं। भावातीत अवस्था उपलब्ध होती है, तब मन के सारे बोझों का अन्त हो जाता है, क्योंकि वहाँ उसकी कोई जरूरत ही नहीं। अस्तित्व के साथ हम एकात्म हो जाते हैं, एक ही हो जाते हैं। इसलिए एकान्त की साधना पर इतना जोर दिया जाता है। महावीर बारह साल तक जंगल में एकान्त रहे। निर्वस्त्र हो गये। यह वस्त्रों का गिर जाना भी प्रतीकात्मक समझो कि समाज ने जो शिक्षा, संस्कार, औपचारिकतायें, एटीकेट्स, मैनर्स सिखाये थे, वे सब उन्होंने त्याग दिये। बारह साल चुपचाप जंगल में क्या करते रहे होंगे? प्रकृति के साथ पहले तो भाव से जुड़े होंगे, धीरे–धीरे विचार छूटते गये होंगे, जब भाषा का कोई काम ही नहीं है, किसी से कोई बातचीत ही नहीं करनी है तो भीतर रिहर्सल भी क्या करनी?

हमारी खोपड़ी में जो दिनरात विचार चलते रहते हैं, वे इसलिये कि हम तैयारी करते हैं कि फलाँ व्यक्ति से मिलेंगे, अगर उसने ऐसा कहा तो फिर मैं उससे वैसा कहूँगा, भीतर एक रिहर्सल चल रही है एक नाटक की इस लीला की, लगातार विचार चलते रहते हैं। बारह साल लम्बा समय है, थोड़े बहुत मूवमेंट्स के कारण हो सकता है। साल दो साल विचार चले हों महावीर के मन में। धीरे–धीरे विचार विदा होने लगे होंगे, भाव के साथ प्रकृति से जुड़ना हुआ होगा और आश्चर्य नहीं महावीर ने प्रकृति के साथ जुड़कर प्रकृति के अद्भुत रहस्यों को ढ़ाई

हजार साल पहले जान लिया, जिनको विज्ञान आज जान पाया है। ढ़ाई हजार साल पहले महावीर ने बताया कि पानी में जीवाणु हैं और हवा में भी जीवाणु हैं। वैक्टीरिया वाइरस की खोज तो अभी बीसवीं सदी की शुरूआत में हुई, माइक्रोस्काप बनने के बाद। महावीर ढ़ाई हजार साल पहले बता गये कि पेड़–पौधों में जीवन है।

पच्चीस सौ साल लगे जगदीश चन्द्र बसु को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित करने में कि पौधों में जीवन है। महावीर की अद्भुत क्षमता रही होगी भाव से जुड़ने की। लेकिन याद रखना इसके भी पार एक जगत और है। वह है सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ एकात्म हो जाना। बुद्ध भी जंगल में गये, छः साल रहे, शास्त्रों में उल्लेख नहीं आता लेकिन आना चाहिए, मानवीय रूप से बिल्कुल यही हुआ होगा, कभी याद आई होगी अपने पिता की, कभी स्मरण आया होगा अपनी पत्नी का, कभी याद आया होगा अपना बेटा जिसके जन्मते ही उसे छोड़कर आ गये थे, एक दिन का था राहुल। कई बार सपनों में डोला होगा, धीरे–धीरे विचार विदा हुए होंगे, समाज विदा हुआ होगा, तब छः साल बाद जाकर परम ज्ञान की घटना घटी, आत्मज्ञान फलित हुआ। जीसस के जीवन में, मोहम्मद के जीवन में भी इस प्रकार के प्रकरण आते हैं कि कभी–कभी वे जंगल चले जाते, पहाड़ियों में खो जाते, अपने शिष्यों से भी न मिलते। ओशो सुझाव देते हैं कि हर साधक को साल में एक बार या दो बार एकांत में चले जाना चाहिए, पन्द्रह दिन, तीन हफ्ते, एक महीना, जितना संभव हो सके एकात में रहकर आओ, तुम पूर्ण जीवित हो जाओगे।

मन के भारों का अन्त हो जायेगा। इस विधि को समझाते हुये ओशो ने कहा– जापान के झेन मठों में वे पत्थरों के उद्यान बनाते हैं, राक गार्डन्स। विशेषकर इसलिये पत्थरों के बगीचे बनाते हैं, कि उनमें कोई वृक्ष नहीं होते, रेत, बस रेत होती है और पत्थर होते हैं। एक अकेली चट्टान पड़ी है वहाँ, और गुरू शिष्य से कहता है कि जाओ उस चट्टान की तरह हो जाओ, तुम भी पत्थरवत् हो जाओ, संसार की परवाह न करो। संसार में चाहे जो हो, वह पत्थर भी बस यूँ ही पड़ा रहता है, उसे कोई चिन्ता नहीं है। वह सदा–सदा से ध्यानमग्न है, तुम भी वैसे ही हो जाओ। जब तक तुम सच में ही अनुपयोगी होने को तैयार न हो जाओ, तुम एकान्त का सुख न ले सकोगे। एक बार तुम इसकी गहराई को जान लो, तो तुम वापस समाज में लौट सकते हो। लौट ही आना चाहिये, क्योंकि एकाकीपन जीवन का ढंग नहीं है, वह केवल एक प्रशिक्षण है। यह जीवन जीने की शैली नहीं बल्कि परिप्रेक्ष्य बदलने की, गेस्टाल्ट बदलने की एक विधि है। एक गहन विश्राम से गुजरकर वापस फिर समाज में लौटो, तुम एक दूसरे ही प्रकार के व्यक्ति होकर लौटोगे। और तुम देख सकोगे कि वास्तव में तुम कौन हो। ऐसा मत सोचो कि यह जीवनशैली बना लें, कि इसको जीने का ढंग बना लें। पुराने संन्यासियों ने वह गलती की थी।

उन्होंने औषधि को भोजन बना लिया था। नहीं, औषधि की छोटी सी खुराक पर्याप्त है। थोड़ी समय के लिये दूर हट जाओ समाज से, ताकि एक दूरी के साथ तुम देख सकोगे समाज तुम्हारे साथ क्या कर रहा है। समाज से बाहर होकर तुम आसानी से देख सकोगे,

द्रष्टा हो सकोगे, स्वयं के साक्षी हो सकोगे। समाज से बिना जुड़े, बिना समाज में शामिल हुये, पर्वत शिखर पर एकान्त में बैठे हुये आसानी से साक्षीभाव में डूब सकोगे। पक्षपात रहित होकर बिना विचलित हुये तुम स्वयं का अवलोकन कर सकोगे। तो याद रखना यह तुम्हारे जीने का ढंग न बने। मैं नहीं तुमसे कहता कि संसार छोड़ दो और हिमालय में कहीं बैठकर साधु बन जाओ। नहीं, लेकिन कभी–कभी वहाँ जाओ, विश्राम करो, पत्थर की तरह निष्प्रयोजन अकेले हो जाओ, संसार से स्वतंत्र और मुक्त होकर प्रकृति के हिस्से बन जाओ। तुम्हारा कायाकल्प हो जायेगा। तुम पुनर्जीवित हो जाओगे। फिर समाज में लौटने पर एक अलग ही प्रकार का सौंदर्य तुम्हारे साथ होगा। ये प्रयोग करने जैसे हैं, सिर्फ समझने के लिये नहीं हैं। यहाँ विज्ञान भैरव तंत्र की हम जो चर्चा कर रहे हैं इसलिए नहीं कि आप ज्ञानी बन जायें, कि तंत्र के सिद्धांत को समझ लें, बल्कि इसलिए कि आपको एक चुनौती मिले, एक पुकार मिले और आप इनको अपने जीवन में प्रयोग में ढालना शुरू करें। तो आज का प्रयोग एकान्त में करने के लिये है।

माँ ओशो प्रिया–

आँख बन्द करके भाव करो.. कि तुम एकान्त वन में हो...। अकेले हो...। कोई भी नहीं है...। किसी एक स्थान पर वास कर रहे हो जो अन्तहीन रूप से विस्तीर्ण है। न वहाँ कोई पेड़ पौधे हैं न कोई पशु पक्षी हैं कोई भी नहीं...। चारों ओर केवल क्षितिज ही क्षितिज दिखाई देता है...। कुछ देखने को भी नहीं...। तुम्हारी देखने की शक्ति वापस तुम पर लौटने लगेगी। कुछ विचार करने को नहीं। किसी से कुछ कहना नहीं है, किसी से कुछ सुनना नहीं है...। कोई है ही नहीं, बस तुम्हीं हो। धीरे–धीरे विचार हटने लगे...। मन शान्त होने लगा...। मन शान्त होने लगा...। विचारों की कोई जरूरत नहीं...। जो सुना था, पढ़ा था, लिखा था, उसे भूल जाओ यहाँ उसका कोई काम नहीं, कोई उपयोग नहीं। ज्ञान का उपयोग बाजार में है...। एकान्त में ज्ञान बिल्कुल व्यर्थ है...। मस्तिष्क से हटकर तुम्हारी जीवन ऊर्जा हृदय पर आ गई. ..। अब और गहरे चलो...। डूबते चलो...।

हृदय से भी गहराई में है तुम्हारा नाभिकेन्द्र...। वहीं अस्तित्व का केन्द्र है...। जब माँ के गर्भ में थे तब नाभि के द्वारा ही माँ से जुड़े थे...। जन्म के पश्चात् माँ से वह संबंध तो टूट गया. .., लेकिन अस्तित्व से अभी भी नाभि के माध्यम से एक सूक्ष्म संबंध बना हुआ है। वह संबंध न तो विचार का है, न भाव का, एक एक्जिस्टेंशियल कनेक्शन, मन के विचार गये, हृदय के भाव गये, विचारातीत मनातीत अवस्था, भावातीत, हृदयातीत अवस्था, बस तुम हो और यह अस्तित्व है। विश्राम...। विश्राम...। विश्राम...। मन का कोई काम नहीं...। बिल्कुल शिथिल हो जायें...। आत्मरमण... स्वयं में लवलीन... संसार मिट गया आपके लिये... उसके साथ ही मन का भार भी हट गया...। केवल होने की इस अवस्था को ही कैवल्य कहा गया है, निर्वाण कहा है, शिवत्व कहा है...।

ओम नमः शिवाय।

विधि-97

अंतरिक्ष है आनंद शरीर

अंतरिक्ष को अपना ही आनंद शरीर मानो।

कल ही मैं एक गजल की किताब पढ़ रहा था। उसका शीर्षक था– दर्द भरी दर्दीली गजलें। गजल तो वैसे ही दर्द भरी होती हैं। अब उसमें दो–दो विशेषण, दर्दीली गजलें। इससे भी तसल्ली नहीं हुई, दर्द भरी दर्दीली गजलें। तो ऐसे ही हुआ, शुद्ध विषैला जहर। शायर ने अपनी वेदना व्यक्त की है इन शब्दों में–

न चाहत है जीने की न जरूरत है, ये जिंदगी कितनी बदसूरत है,
मौत की गोद मिल रही हो अगर, जागे रहने की क्या जरूरत है।
जिंदगी गढ़ के देख ली हमने, बस मिट्टी–गारे की एक मूरत है,
बोलो और कितनी सांसें लेते रहें, क्या आ रहा कोई शुभ महूरत है?

जिंदगी अगर दुख से भरी हो तो मृत्यु शुभ मुहूर्त जैसी लगेगी और जिंदगी अगर आनंद से भरी हो, सच्चिदानंद से भरी हो तब जीवन एक धन्यता हो जाता है। ये दो ढंग हैं जीने के। धर्म परमानंद की खोज है और जो लोग धर्म की दिशा में नहीं बढ़ रहे हैं वे जाने–अंजाने दुख की दिशा में जा रहे हैं। मैंने तो मजाक सुना है, भविष्य में जब मेडिकल साइंस और डेवलप हो जाएगी और लोगों की उम्र बहुत लंबी हो जाएंगी, तीन–तीन सौ, चार–चार सौ साल लोग जिएंगे, तब अपराधियों को फांसी की सजा वगैरह नहीं दी जाएगी। तब उन्हें सजा सुनाई जाएगी कि इनको अस्पताल में भर्ती करो और लंबे समय तक जिंदा रखो। और कठिन सजा देना हो तो ऐसी जगह भर्ती करो जहां कवि और शायर मौजूद हों, वे अपनी गज़लें इनको सुनाते रहें और डाक्टरों की ड्यूटी उनको करने मत देना। अभी लोग जीना चाहते हैं तो हम मरने की उनको सजा देते हैं। अगर जीना दुखपूर्ण हो जाए तो जिंदगी एक सजा हो जाएगी। दुनिया में 6 अरब लोग हैं, अधिकांश लोगों के लिए जिंदगी एक सजा ही है। किसी न किसी तरह काटे जा रहे हैं कि कभी न कभी शुभ मुहूरत आ जाएगा, परमात्मा पर भरोसा है। बस जिंदगी को बोझ जैसी ढो रहे हैं।

आज की विधि नंबर 97वें में भगवान शिव कहते हैं पार्वती से हे देवी! अंतरिक्ष को अपना ही आनंद शरीर मानो। संतों ने विभिन्न शरीरों की बात की है, हम केवल स्थूल शरीर से परिचित हैं। इसके भीतर और सूक्ष्म शरीर है, उसके और भीतर आनंद शरीर है, उसके और भीतर कारण शरीर है, उसके और भीतर विज्ञान शरीर है। आनंदशरीर भाव से फैलता है, जब हम प्रेमपूर्ण होते हैं, प्रफुल्लित होते हैं, आनंद शरीर विस्तीर्ण हो जाता है। जब हम उदास होते हैं, दुख में सिमट जाते हैं, डिप्रेशन और निराशा से भरते हैं, हताशा की स्थिति में वह सिकुड़ जाता है, सिमट जाता है और इसीलिए दुख की अंतिम पराकाष्ठा मृत्यु है। हम सारे जगत से टूट जाना चाहते हैं, हम समाप्त हो जाना चाहते हैं। प्रेम में हम फैलना चाहते हैं, विस्तीर्ण हो जाते हैं। आपने ख्याल किया, जब भी आप कभी प्रफुल्लित हैं, आप लोगों से मिलना चाहते हैं। जब कभी आप उदास हैं, आप चाहते हैं खिड़की–दरवाजे बंद कर लें, कोई मिलने न आए, किसी का टेलीफोन न आए, कहीं जाना न पड़े। दुख सिकोड़ने वाला तत्व है, आनंद, प्रेम फैलाने वाला तत्व है। भगवान शिव कह रहे हैं– सारे अंतरिक्ष को अपना आनंद शरीर मानो। सारा अंतरिक्ष, इतना विराट तुम्हारा आनंद हो जाए। जीने का यह सलीका, यही धर्म है। तुम भीख मांगते संन्यासियों को देखकर, उन उदास रुग्णचित्त त्यागियों को देखकर धर्म की धारणा न बनाना। शिव को देखना, महावीर, बुद्ध को

देखना, ओशो को देखना, उनको देखकर धर्म की धारणा बनाना। परमानंद से ओत–प्रोत है उनका जीवन।

यह विधि भी पिछली विधि, 96वें वाली विधि से संबंधित है, फर्क सिर्फ इतना है इसमें एकांतवास के साथ–साथ प्रकृति का सान्निध्य भी है। अच्छा है पेड़–पौधों के बीच में रहो, अच्छा है नदी और झरनों के बीच में रहो, शहर के शोरगुल से दूर किसी पर्वत शिखर पर। प्रकृति की आवाजें तुम्हारे मौन में विघ्न नहीं पहुंचाएंगी। ओशो ने एक बात और कही है इस विधि को समझाते हुए कि शुरूआत आनंद से न करना क्योंकि आनंद को फिलहाल तुम जानते नहीं। शुरूआत किसी ऐसी चीज से करना जिसे तुम जानते हो। उदाहरण के लिए मौन को, सन्नाटे को तुम जानते हो, शांति की छोटी–मोटी झलक तुम्हें मिली है इससे शुरू करो। भाव करो कि पूरा अंतरिक्ष, पूरा आकाश शांति से व्याप्त है, पूरे आकाश में मौन गूंज रहा है, नादब्रह्म, ओंकार की गुंजार हो रही है। यहां से शुरू करना आसान होगा, जब तुम इसमें प्रवीण हो जाओ तब भाव करना कि वह शांति प्रफुल्लता से भरी हुई है। चार तल हैं हमारे, इनको थोड़ा सा समझना। एक तो शरीर का तल है वहां सुख–दुख दो रूपों में आता है। एक तो सुख–सुविधा, पॉजिटिव और दूसरा कष्ट, निगेटिव, अंग्रेजी में इसे हम कह सकते हैं, प्लेजर एण्ड पेन। जब शरीर में भूख लगी है, पेट में तकलीफ हो रही है, जलन हो रही है ये कष्ट है। खाना खा लिया, पेट भर गया, तृप्ति हो गई, सैटिसफैक्शन हो गया ये प्लेजर है। शारीरिक सुख–दुख तो जानवरों को भी मिलते हैं, पक्षियों को भी मिलते हैं, मछलियों को भी मिलते हैं, पेड़–पौधों को भी मिलते हैं। एक वृक्ष को पानी न मिले सूखने लगे तो कष्ट में हो गया, वर्षा ने जल वर्षा दिया उसके ऊपर, बादल बरस गए पेड़ सूखी हो गया।

तो शरीर के तल पर सुख–दुख का एक तल है, एक द्वंद है। फिर इससे और गहरा है मन का तल। मन के तल पर प्रसन्नता और अप्रसन्नता, हैपीनेस और अनहैपीनेस घटित होती हैं। उदाहरण के लिए तुमने एक सुंदर कविता पढ़ी, उसको पढ़ के तुम्हारा मन प्रसन्न हो गया। किसी जानवर को प्रसन्नता नहीं होती, जानवर केवल शरीर के तल पर जी रहा है। मनुष्य की शुरूआत मन के तल से होती है। मन से ही मनुष्य शब्द बना है, मन से ही अंग्रेजी का ह्यूमन वर्ड बना है। मन प्रसन्न होता है, अप्रसन्न भी होता है। तुम कोई फिल्म देखने गए और तुम्हें वह पसंद न आई तुम्हारा मन खिन्न हो जाएगा, अप्रसन्न हो जाएगा। तो मन के तल पर भी सुख–दुख के दो रूप हैं– प्रसन्नता और अप्रसन्नता। फिर इससे गहरा एक और तल है, भाव का तल, हृदय का तल। वहां पर हम कह सकते हैं– आह्लाद और विषाद, ज्वाय और फ्रस्टेशन। कोई तुम्हारा

बचपन का बिछड़ा हुआ मित्र अचानक मिल गया। उसे देखकर जो हुआ, न तो वह कोई शारीरिक सुख है न ही वह कोई मानसिक प्रसन्नता है, वह और गहरी बात है, तुम्हारा हृदय आह्लादित हो गया, खुशी से भर गया। तुम उछल पड़े, नाचने लगे। इसका उल्टा है विषाद, फ्रस्टेशन, जब तुम्हारा हृदय सिकुड़ जाता है, सिमट जाता है। किसी दुश्मन से मिलने पर, किसी प्रतिकूल परिस्थिति में।

तो ये तीन तल तो हम सब को पता हैं, शरीर, मन और हृदय के। इसके बाद चौथा तल है आत्मा का तल। आत्मा के तल पर शांति और अशांति घटित होती हैं। अशांति तो हम सब जानते हैं, एक प्रकार की बेचैनी, रेस्टलेसनेस। इसका ठीक विपरीत है शांति, वह निर्विचार जागरूकता में, ध्यान की अवस्था में घटित होती है। अब इससे एक और गहरा तल है, आत्मा का केन्द्र है परमात्मा। वहां पर आनंद घटित होता है। आनंद अर्थात नाचती–गुनगुनाती शांति। शांति में भी थोड़ा सा उदासी का लक्षण था। इसलिए कभी–कभी कन्फ्यूजन हो जाता है कि कोई व्यक्ति शांत है कि उदास है। लेकिन शांति जब गीत गुनगुनाने लगे, झूमने लगे, शांति के पैरों में घुंघरू बंध जाएं उसका नाम है आनंद। आनंद का कोई विपरीत तत्व नहीं होता। तो इन चार तलों पर तो विपरीतताएं हैं। देह, मन, हृदय और आत्मा के तल पर किन्तु भीतर, बिल्कुल केन्द्र में कोई विपरीतता नहीं है, सिर्फ आनंद ही है। या तो हम आनंद को जानते हैं या नहीं जानते। लेकिन उसका विपरीत तत्व घटित नहीं होता, वहां कोई द्वंद नहीं है। अभी फिलहाल हम आनंद को नहीं जानते इसलिए ओशो का सुझाव है, बेहत्तर हो हम शांति से शुरू करें। सारे आकाश को शांति से भरा हुआ महसूस करें। इसको किसी निर्जन स्थल पर करना, किसी प्राकृतिक रमणीक वातावरण में करना, जहां तुम आसानी से प्रफुल्लित हो सको। फिर शांति के बाद आनंद का भाव करना।

मैंने सुना है, एक वैज्ञानिक ने परीक्षण किया है। कुछ लोगों को उसने खून–खराबे वाली जासूसी, हिंसक फिल्म दिखाई और उनके रक्त का परीक्षण किया और पाया गया कि उनके रक्त में विषाक्त द्रव्य, ऐसे हार्मोन्स जो उत्तेजना पैदा करते हैं, परेशानी और चिंता पैदा करते हैं ऐसे न्यूरोट्रान्समीटर की मात्रा बढ़ गई। फिर उसी ग्रुप को पंद्रह दिन बाद एक दूसरी फिल्म दिखाई गई शांति वाली, प्रफुल्लता वाली, हंसी–मजाक वाली, नानसीरियस कामेडी फिल्म और फिर उनके रक्त परीक्षण किए गए और पाया गया कि अगले 15 दिन तक उनके रक्त में दूसरे प्रकार के केमिकल्स और न्यूरोट्रांसमीटर बढ़ गए, बिल्कुल भिन्न प्रकार के। और इनका प्रभाव लगभग 15 से 20 दिन तक रहा। अगर कोई व्यक्ति तीन माह तक लगातार इस प्रयोग को करे कि मैं

प्रकाश से भरा हूं, मैं शान्ति से भरा हूं, मैं आनंद से भरा हूं। तीन महीने के भीतर–भीतर उसके अंदर रासायनिक परिवर्तन हो जाएंगे और स्थायी परिवर्तन हो जाएंगे। फिर वह सदा–सदा इसी भाव में जीने लगेगा।

याद रखना, दृश्य भी द्रष्टा को बदलते हैं। सामान्यतः हम इस बात पर गौर नहीं करते। दृश्य भी द्रष्टा को बदलते हैं। लोग बैठ के षड्यंत्रकारी टीवी सीरियल देखते रहते हैं। साजिश चल रही है, बदमाशपूर्ण योजनाएं बन रही हैं, लोग एक–दूसरे को सता रहे हैं, ईर्ष्या से भरे हैं, हिंसा से भरे। यह सिर्फ दृश्य ही नहीं हैं, यह तुम्हें बदल रहा है। तुम हत्या की फिल्में देख रहे हो, संभावना बढ़ती जा रही है, शायद तुम भी किसी दिन किसी की हत्या कर दो। यह षड्यंत्रकारी टीवी सीरियल देखते–देखते संभावना है तुम्हारा मन भी साजिश और शैतानी की बातें सोचने लगे। पुराने जमाने में लोग धन्य थे, सुबह उठकर गीता का पाठ करते थे कि उपनिषद के सूत्र दोहराते थे। दृश्य द्रष्टा को बदलता है। इसलिए दृश्य का भी चुनाव करना, गलत दृश्य मत चुनना। इसलिए साधु–संगत पर इतना जोर दिया जाता है। तुम किनके बीच उठते हो, किनके बीच बैठते हो उससे तुम्हारा जीवन परिवर्तित होता है।

इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा– अंतरिक्ष को अपना ही आनंद शरीर मानो, सारा आकाश तुम्हारा आनंद शरीर बन जाएगा। तुम इसे अलग से भी कर सकते हो या पिछली 96वें वाली विधि से जोड़ के भी कर सकते हो। परिस्थिति वही चाहिए, अनंत विस्तार, मौन, आसपास किसी मनुष्य का न होना। आसपास किसी मनुष्य के न होने पर इतना जोर क्यों है? क्योंकि जैसे ही तुम किसी आदमी को देखते हो, तुम पुराने ढंग से प्रतिक्रिया करने लगते हो, तुम अपने पुराने ढर्रे में आ जाते हो। मनुष्यों को देखते ही तत्क्षण तुम्हारे भीतर कुछ बदल जाता है, तुम अपने पुराने ढर्रे पर आ जाते हो। यदि आसपास कोई मनुष्य न हो तो तुम भूल जाते हो कि तुम भी एक मनुष्य हो और वह भूल जाना बहुत अच्छा होगा। कि तुम एक मनुष्य हो कि तुम समाज के अंग हो कि राष्ट्र के अंग हो। केवल इतना स्मरण रहे कि तुम बस हो। चाहे यह भी न पता हो कि तुम क्या हो और कौन हो। तुम किसी व्यक्ति से, किसी समाज से, किसी राजनीतिक दल से, किसी धार्मिक संगठन से जुड़े हुए नहीं हो। यह न जुड़ना बड़ा उपयोगी होगा। तो अच्छा होगा कि तुम अकेले कहीं चले जाओ और इस विधि को थोड़े दिन वहीं करो। अकेले इस विधि को करना सहयोगी होगा, लेकिन किसी ऐसी चीज से शुरू करना जिसका थोड़ा–बहुत अनुभव तुमको है।

मैंने ऐसी विधियां करते हुए लोगो को देखा है जिनका अनुभव उन्हें जरा भी

नहीं, जिनकी एक झलक भी उन्हें न मिली। वैसी बातें केवल काल्पनिक हो के रह जाती हैं, झूठी हो जाती हैं। कोई कल्पना कर रहा है कि सारा जगत परमात्मा से भरा है, यह उसकी कल्पना ही होगी, परमात्मा के बारे में उसे ए, बी, सी नहीं पता। इसलिए ओशो का सुझाव बड़ा प्यारा है। हमेशा उससे शुरू करो जिसे तुम थोड़ा जानते हो, शांति कि थोड़ी न थोड़ी झलक तुम्हें है। चलो इस प्रयोग के लिए हम भूमिका तैयार करते हैं। निर्जन, शांत, एकांत में, मनुष्य रहित जगह में अपने आपको बैठा हुआ जानो। आंख बंद कर लो डूबो अपने भीतर, भूल जाओ कि दुनिया में कोई और भी है। शहर के शोरगुल से दूर, प्राकृतिक वातावरण में लंबी, गहरी श्वांस लो, भीतर पांच सेकेण्ड श्वांस को रोको, भाव करो फैलते हुए सीने और पेट के साथ तुम्हारा आनंद शरीर फैल रहा है, भाव करो ब्रह्म का नाद ओंकार का स्वर पूरे अंतरिक्ष में गूंज रहा है। अब अंतिम छलांग, भाव करो शांति और ओंकार का संगीत आनंद में रूपांतरित हो गए। आनंद यानि गुनगुनाती हुई शांति, आनंद ही आनंद। तुम बचे ही नहीं, बस आनंद ही बचा।

धन्यवाद।

विधि-98

वक्षस्थल में शांति

किसी सरल मुद्रा में दोनों काखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।

सागर की सतह पर तो झंझावात रहेंगे ही। जिसने सागर की गहराइयों का स्मरण कर लिया उसके लिए आंधी-तूफानों का भी मजा हो जाएगा। वृक्ष के पत्ते तो हवाओं में डोलेंगे, खड़खड़ाएंगे ही लेकिन जिस वृक्ष को अपने जड़ों की याद आ गई उसके लिए हवाओं का चलना भी आनंददायी हो जाएगा। ठीक वैसे ही हमारे जीवन के परिधि पर तो कुछ न कुछ उपद्रव तो चलता ही रहेगा। अगर हम परिधि से दूर खिसककर स्वयं के अंतर्तम में विश्रांति पाने की कला सीख गए तो बस फिर जीवन में आनंद ही आनंद हो जाता है। 24 घंटे में से अगर हम एक घंटे अपने भीतर डूब जाएं, उसी का नाम ध्यान है। विज्ञान भैरव तंत्र की ये सारी विधियां उसी तरफ इशारा कर रही हैं। अपने भीतर विश्रांति में डूबो। फिर जीवन की आपाधापी, भागदौड़ वह सब भी विश्रांति के कंट्रास्ट में बड़ी मजेदार हो जाएगी, संसार भी फिर सुखदायी हो जाएगा।

लेकिन हम परिधि पर, सतह पर चिपकते हैं और वही हमारे दुख का कारण है।

मैने सुनी है एक सूफ़ी कहानी। एक आदमी रात के अंधेरे में जंगल के रास्ते से गुजर रहा था। अंधेरे में उसका पैर फिसल गया और वह एक खाई में गिरने लगा। गिरते–गिरते एक वृक्ष की जड़ें उसके हाथ में आईं। वो जड़ें पकड़ के लटका रह गया। अब वह इंतजार कर रहा है कि सुबह हो, कोई वहां से निकले, आवाज दे, कोई उसे बचाए क्योंकि नीचे अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा कितनी गहराई है। पता नहीं अतल खाई हो, गिरेगा तो हड्डियां–पसलियां चकनाचूर हो जाएंगी। घबराया हुआ, बेचैन, परेशान लटका है। ठण्डी रात है, हाथ उसके जमने लगे फिर एक समय ऐसा आया कि हाथ से वृक्ष की वे जड़ें छूट गईं और वो गिर ही पड़ा नीचे। बड़ा घबराया, डरा हुआ लेकिन यह क्या? अगले ही सेकेण्ड उसके पैर जमीन पर थे। अंधेरे में जहां उसे लग रहा था अतल खाई है वहां सिर्फ एक फुट नीचे ही जमीन थी, छोटा सा ही गढ्ढा था वह। वह बहुत हंसा और उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि जीवन में भी हम परिधि को जबरदस्ती पकड़े हुए हैं। काश, हम थोड़ा सा अपनी गहराई में जा के देखें नीचे ही जमीन है। और एक बार वहां पैर लग गए तो फिर जीवन के सारे दुख–संताप विदा हो जाते हैं।

हमारे सारे कष्ट और परेशानियां परिधि पर चिपके रहने की वजह से हैं। परिधि का भी अपना सौंदर्य है अगर केन्द्र में हमें स्थित होने की कला आ जाए। ये सूफ़ी कहानी बड़ी प्रतीकात्मक है। हमारा करने से तादात्म्य है, कर्ताभाव से, इसलिए हम निरंतर परेशान रहते हैं। थोड़ी देर के लिए विश्राम, कुछ न करें अपने आप में डूब जाएं बस उसी का नाम ध्यान है। कभी किसी बिल्ली को, कुत्ते को या छोटे बच्चे को सोते हुए देखो, कैसे विश्राम में सोता है। वयस्क होने के बाद तो इंसान रात को भी चैन से नहीं सोता। ध्यान गहरी–से–गहरी नींद है जिसमें हमारा कर्ताभाव मिट जाता है। कहें, कर्ताभाव सो जाता है। फिर हम वापस जब लौटते हैं तो अद्भुत रूप से ऊर्जा से भरे हुए, ताजगी से भरे हुए। फिर हमारा सारा जीवन बदल जाता है। ध्यानी व्यक्ति परिस्थितियां नहीं बदलता, उसके केन्द्रस्थ होने से उसकी मनःस्थिति बदल जाती है और तब सारी परिस्थितियां उसे भिन्न ही नजर आती हैं। परिधि पर हमने एक झूठा घर बना रखा है, हमारा असली निवास स्थान हमारे हृदय में है। मस्तिष्क हमारी परिधि है, हृदय हमारा केन्द्र है। इस भूमिका को स्मरण रखते हुए भगवान शिव की आज की विधि समझना– वे कहते हैं किसी सरल मुद्रा में दोनों काखों के मध्य वक्षस्थल में धीरे–धीरे शांति व्याप्त होने दो, हृदय केन्द्र को शांति से भरने दो। जरा मस्तिष्क से नीचे उतरो। किसी कवि ने लिखा है–

आदर्श इंसान किताबों की मोटी जिल्द में बंद रहता है,
वह बाहर की दुनिया में कदम भी नहीं रख सकता है।
बस पंक्तियों के झरोखों से हमें देखता है, हंसता है,
कुछ अजीब से इशारे करके लुभाता है, छुप जाता है
और हमें दुख झेलने के लिए तड़फता छोड़ जाता है।
आदर्श इंसान हमें फिर-फिर अशांत कर जाता है।

हमारे दिमाग ने, हमारे मस्तिष्क ने जो भी आदर्श बनाए हैं वे हमें और अधिक अशांत कर जाते हैं, हमें महत्वाकांक्षा से भर जाते हैं। शांति का केन्द्र हृदय में है। लोग आ के मुझसे पूछते हैं कि मन कैसे शांत हो? मुझे हंसी आती है उनका सवाल सुनके। ये ऐसे है जैसे कोई पूछे कि तूफान कैसे शांत हो। शांत तूफान जैसी कोई चीज नहीं होती और शांत मन जैसी भी कोई चीज नहीं होती। शांति तो हृदय में होती है, मन कभी शांत नहीं हो सकेगा, मन तो हमेशा उपद्रव का ही केन्द्र रहेगा। विचारों के झंझावात वहां चलते ही रहेंगे। लेकिन हमें वहां रहने की जरूरत नहीं, याद करो उस सूफी कहानी को, हम छोड़ सकते हैं उन जड़ों को। विचारों की, धारणाओं की, विश्वासों की और हृदय की जमीन पर हम कदम रख सकते हैं। इस विधि को करने के लिए किसी विशेष मुद्रा या आसन की भी जरूरत नहीं है, किसी गुरू से सीखने की जरूरत नहीं है। याद रखना, योग में, तंत्र में बहुत सी विधियां ऐसी हैं जो गुरू के मार्गनिर्देशन में की जाती हैं, कुछ विधियां ऐसी हैं उदाहरण के लिए आज की विधि, इसमें किसी मार्गदर्शक की जरूरत नहीं है, कोई भी साधक कहीं भी, कभी भी कर सकता है। रात सोने से पहले जब बिस्तर पर पड़े हों या सुबह जागने के पश्चात् 10 मिनट रुको, एकदम से मत उठ जाओ और तुम पाओगे उस शांति को व्याप्त होता हुआ अपने भीतर।

इस विधि को समझाते हुए परमगुरू ओशो ने कहा- जब तुम्हें लगे कि शरीर किसी सुखद मुद्रा में पहुंच गया है, इस बात को फिर अधिक मत तूल दो कि कौन सी मुद्रा है, जब महसूस करो कि शरीर विश्रांत है तो शरीर को भूल जाओ। क्योंकि असल में शरीर को स्मरण रखना ही एक प्रकार का तनाव है इसलिए मैं कहता हूं कि इस विषय में ज्यादा झंझट मत करो कि कौन सा आसन, कौन सी मुद्रा, किसी भी शांत मुद्रा में बस शरीर को भूल जाओ, भूल जाना ही विश्राम है। और जब तुम बहुत याद रखते हो तो वह स्मरण ही शरीर को तनाव से भर देता है। वक्षस्थल में धीरे-धीरे शांति को व्याप्त होता हुआ महसूस करो, अपनी आंखें बंद कर लो और

दोनों काखों के बीच के स्थान का अनुभव करो, फेंको इस छुद्र को। पहले केवल दोनों काखों के बीच अपना पूरा होश लाओ, शेष शरीर को भूल जाओ और हृदय का स्मरण रखो। फिर धीरे–धीरे अपार शांति उतरती हुई महसूस होगी। जिस क्षण तुम्हारा शरीर विश्रांत होता है, तुम्हारे हृदय में स्वतः ही शांति उतर आती है। हृदय मौन, विश्रांत और लयबद्ध हो जाता है और जब तुम अपने सारे शरीर को भूल जाते हो और ध्यान को पूरे हृदय पर लाते हो फिर उस शांति से भरा हुआ महसूस करते हो तो तत्क्षण अद्भुत शांति घटित होती है।

बड़ी ही आसान विधि है, कोई भी इसे कर सकता है। करके देखना, अधिकतर लोग तो पहले ही प्रयोग में सफलता हासिल कर लेंगे। हृदय हमारा शांति विकीर्णित करने वाला केन्द्र है। एक और परिणाम होगा, जब तुम शांत हो जाओगे, तुम्हारे आसपास की परिस्थितियां भी तुमसे प्रभावित होने लगेंगी। हमारा हृदय एक प्रकार का रेडिएटर है। शांति की किरणें वहां से विकीर्णित होती हैं, हमारे मस्तिष्क से अशांति की किरणें विकीर्णित होती हैं। तुम ज्यादा प्रेमल होने लगोगे और दूसरे लोग भी तुम्हारे प्रति ज्यादा प्रेमल होने लगेंगे। आज तक हमने प्रेम से उत्पन्न शांति को जाना है। जब कभी तुम प्रेम में होते हो हृदय शांत हो जाता है, छोटी सी झलक मिलती है। जरा उल्टा प्रयोग करके देखो, पहले शांत हो जाओ, उस शांति की छाया के रूप में प्रेम उत्पन्न होगा, वह एक नए ही प्रकार का प्रेम होगा। साधारण प्रेम में हम दूसरे के गुलाम हो जाते हैं क्योंकि शांति और सुख की तरंगें उसकी उपस्थिति में हमें उपलब्ध होती हैं और छोटी–छोटी झलकें मिलती हैं और दो झलकों के बीच में बड़ी नफरत और घृणा, वैमनस्य और मालकियत की भावना होती है, ईर्ष्या और जलन होती है। होगी ही, अगर पहले तुम शांत हो जाओ और शांति के कारण फिर प्रेम उत्पन्न हो, यह प्रेम दूसरे प्रकार का होगा। इसमें तुम्हारा स्वामित्व होगा, तुम्हारी मालकियत होगी। फिर इसमें ईर्ष्या, जलन और मालकियत की भावनाएं नहीं आएंगी। अब तुम वास्तव में प्रेम के स्वामी हुए। यह शांति का बाईप्रोडक्ट होगा। फिलहाल हमारी शांति प्रेम का बाईप्रोडक्ट होती है। सारी परिस्थिति पलट जाएगी। अभी जिसे हम प्रेम कहते हैं वह प्रेम कम, प्रेम के नाम पर चलने वाला नाटक ही है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी को बता रहा था कि मैंने एक ऐसे आदमी के बारे में सुना है जो पिछले बीस साल से हर शाम, हर रात अपने ही घर पे गुजारता है। उसकी पत्नी बोली देखा, इसको कहते हैं सच्चा प्रेम, ये है सच्चा प्यार। नसरुद्दीन ने कहा कि लेकिन डाक्टर तो कहते हैं कि उसे लकवा की बीमारी है। हमारा प्रेम एक बीमारी से ज्यादा नहीं है।

मैंने सुना है कि प्रेमिका कह रही थी चंदूलाल से कि डार्लिंग मुझसे पहले कितनी लड़कियां तुम्हारे जीवन में आ चुकी हैं? चंदूलाल ने जेब से सिगरेट निकाली, सुलगाई पीने लगा और चिंतामग्न होके कुछ सोचने लगा। उसकी प्रेमिका ने कहा, कुछ तो बोलो, कितनी लड़कियां तुम्हारे जीवन में आई हैं? चंदूलाल ने कहा मुझे समय तो दो, उन्हीं की तो गिनती कर रहा हूं। इस प्रकार का प्रेम खण्ड–खण्ड करने वाला होगा, हृदय को छत–विछत कर जाएगा। पहले से भी ज्यादा अशांत कर जाएगा। जितने ज्यादा तुम्हारे प्रेमपात्र होंगे उतनी ही अशांति और बेचैनी होगी। काश, पहले तुम अपने भीतर जड़ें जमाना सीख जाओ। अपने भीतर शांत केन्द्र में डूब जाओ फिर तुम्हारे अंदर से एक नए प्रकार का ही प्रेम जन्मेगा। इसलिए तो बुद्ध के प्रेम को हम करुणा कहते हैं, महावीर के प्रेम को अहिंसा कहते हैं। हमारे प्रेम से उनका प्रेम काफी भिन्न है। और ऐसे प्रेम में डूबने के पश्चात व्यक्ति बाहर की परिस्थितियों से अप्रभावित हो जाता है। इसलिए शंकर संसार को माया कहने लगते हैं। जो अपने हृदय के केन्द्र से जीने लगा, बाहर क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है, कोई सम्मान करता है कि अपमान करता है, इन सारी चीजों से वह मुक्त हो जाता है। ऐसा प्रेम मुक्तिदायी है।

हम जिसे प्रेम कहते हैं वह तो बंधन निर्मित करता है और मनुष्य की गहनतम खोज स्वतंत्रता और प्रेम इकट्ठा पाने की है। और संसार की पूरी पहेली यही है कि यहां प्रेम मिलता है तो उसकी स्वतंत्रता खो जाती है, स्वतंत्रता पाओ तो प्रेम खो जाता है और हम दोनों को ही इकट्ठा पाना चाहते हैं। अगर इस विधि को करोगे तो वह असंभव कार्य संभव हो जाएगा। तुम शांत हो जाओ, शांति से फिर प्रेम जन्मेगा, ऐसा प्रेम स्वतंत्रता देने वाला होगा, ऐसा प्रेम एक घनी छाया के रूप में होगा। वह सारी धूप और गर्मी जीवन की समाप्त होगी, सारे संताप, ताप विदा होंगे, अद्भुत शीतलता से तुम भर जाओगे। इस विधि को करने का ओशो ने एक उपाय और कहा है– अगर सीधे शांत न हो सको तो पहले पूरे शरीर को तनावग्रस्त कर लो, मासंपेशियों को खींचो एक–दो मिनट के लिए और फिर अचानक शांत छोड़ दो। एक अति से दूसरे अति पर जाना सुगम होता है। आओ माँ ओशो प्रिया के साथ इस विधि को करते हैं। धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार,

खड़े–खड़े तनाव से भर जाएं, खासकर के चेहरे की मांसपेशियों को खींचें, मुट्ठी भींचें, क्रोध, क्रोध, क्रोध, क्रोधी हो जाएं, पूरे संतापग्रस्त हो जाएं, क्रोध ही क्रोध, क्रोध

हीं क्रोध, क्रूर हो जाएं, पूरी क्रूरता बाहर आने दें, चीखें, चिल्लाएं, क्रोधित हो जाएं।

शांत हो जाएं। बैठ जाएं, आंखें बंद कर लें, भाव करें सब शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, शांति हीं शांति, शिथिलता। धीरे से शवासन में लेटें, भीतर का अवलोकन करें। पैरों से शुरू करें, दोनों पैरों को फील करें, क्या कहीं कोई तनाव है, अगर है तो उसे ढीला छोड़ दें। बिल्कुल ढीला छोड़ दें, विश्राम घटित हो गया है, विश्राम घटित हो गया है, पूरा चेहरा शांत हो गया है। पूरा चेहरा शांत हो गया है। दोनों काखों के मध्य में वक्षस्थल पर धीरे–धीरे शांति व्याप्त हो रही है। धीरे–धीरे शांति व्याप्त हो रही है। कितनी शांति, ओम शांतिः शांतिः शांतिः। डूबते जाएं, शांति के सागर की अतल गहराइयों में उतरते चले अथाह शांति का सागर जिसका जब तक भाव हो लेटे–लेटे शांति के सागर में डुबकी लगाएं, गहराइयों में जाएं। आज का ध्यान पूरा हुआ,

ओम नमः शिवाय।

विधि-११

सभी दिशाओं में फैलो

स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो– सुदूर, समीप।

थका थका सा बदन, रूह बोझिल बोझिल
न रास्ते की खबर है, न पता मंजिल जिंदगी सीमित,
हां, जेल में बंदी की तरह जीवित!
शहर वीरान, झरोके खामोश, मुंडेरें चुप
क्यों अचानक हो गया अंधेरा घुप्प
हाय रफ्तार की नब्जें रुकीं दिल डूब गया
क्यूं मैं आखिर इस जिंदगी से ऊब गया?
कहां शुरु हुआ था सिलसिला, कहां टूटा फसाना
न इस सिरे का पता है न उस सिरे का ठिकाना
थका थका सा बदन, रूह बोझिल बोझिल

न रास्ते की खबर है, न पता मंजिल जिंदगी सीमित,
हां, जेल में बंदी की तरह जीवित!

जेल में भी कोई जीवन है। हमारे जीवन की सारी समस्याओं की जड़ यही है संकीर्णता और सीमा का एहसास, बंधन की प्रतीति। जैसे ही हम अपने आप को बंधा हुआ महसूस करते हैं, दुख शुरू हो जाता है, आनंद तो केवल स्वंतत्रता और असीमता में ही हो सकता है। आनंद तो केवल विराट के साथ संभव है, कैद में कैसे आनंद होगा। क्यों फिर हमने कैद चुनी? जरूर कोई गहरा कारण होगा क्योंकि विराट के साथ हम असुरक्षित महसूस करते हैं, विराट के साथ हम भयभीत हो जाते हैं। हमारी स्थिति उस पक्षी जैसी है जो आकाश में उड़ना चाहे, स्वतंत्रता का मजा लेना चाहे और अपने घोंसले से चिपका रहना भी चाहे। अगर स्वतंत्रता चाहिए तो घोंसले की सुरक्षा छोड़नी होगी, स्वतंत्रता और सुरक्षा एक साथ नहीं मिल सकते।

20वीं सदी की शुरूआत में फ्रांस में क्रांति हुई और क्रांतिकारी जैसे कि होते हैं बड़े जिद्दी किस्म के। वे हर चीज को बदल देना चाहते हैं। तो फ्रांस में जो सब से बड़ा कारागृह था, जिसमें उम्र कैदियों को ही केवल रखा जाता था, कोई 40 साल से वहां बंद था, कोई 50 साल से। मरने के बाद उनकी लाशें ही बाहर निकलती थीं। क्रांतिकारियों ने सोचा कि उन कैदियों को मुक्त कर दें, वे बड़े प्रसन्न होंगे। वे गए और उनकी जंजीरें तोड़ दी, कारागृह के द्वार खोल दिए, दरबानों को हटा दिया कहा कि जाओ तुम स्वतंत्र हो आज से। आश्चर्य की घटना घटी! रात होते-होते सारे कैदी वापस लौट आए और उन्होंने कहा क्षमा करें! हम 40-50-60 साल से यहां रह रहे हैं, हम यहीं के आदी हो गए हैं, अब बाहर जगत में हम कहां जाएं। न हमारी कोई जान-पहचान है, न किसी घर परिवार का पता है, न कोई ठिकाना है। कहां से रोजी-रोटी जुटाएंगे, कहां से आजीविका कमाएंगे, इस कारागृह में बड़ी सुरक्षा थी, नियम से, समय पर भोजन मिल जाता था, बीमार होते थे चिकित्सक आ के इलाज कर जाता था। माना कि हाथ-पैर में बेड़ियां पड़ी थी पर सुरक्षा बड़ी भारी थी। हमें हमारी बेड़ियां लौटा दो, 40 साल से उन्हीं बेड़ियों को हम तकिया बना के सो रहे थे, बाहर तो हमें नींद भी न आएगी। खुली हवा में हमारा दम घुटता है। क्रांतिकारी तो बहुत हैरान हुए, उन्होंने तो सोचा था ये प्रसन्न होंगे। वे सब वापस लौट आए और उन्होंने कहा कि हमें अपनी कैद में वापस जाने दो, वह कैद ही हमारा घर है। ठीक इसी कारण से हम सबने अपनी-अपनी मानसिक कारागृह तैयार कर लिए हैं और उनमें हम बंद हैं।

अपनी धारणाएं, अपनी फिलॉस्फी, अपने सिद्धांत, अपने धर्म, अपने संप्रदाय उसके बाहर हम निकलने को जरा भी तैयार नहीं। कई-कई प्रकार की परतंत्रताएं हमने स्वीकार कर लिए हैं। हमने खुद जंजीरें गढ़ी हैं, बिना जंजीरों के हम रहना नहीं चाहते। आज भगवान शिव जो विधि कहने जा रहे हैं वह केवल साहसियों के लिए है। वे जो असुरक्षित होने को तैयार हैं। संन्यासी घर-गृहस्थी का त्याग कर देता था इसलिए नहीं कि घर-गृहस्थी में कोई बुराई है बल्कि इसलिए कि सुरक्षित रहने में आदमी मोटा हो जाता है। जितनी ज्यादा असुरक्षा उतनी ही ज्यादा जीवंतता, कारागृह तो ऊब बन ही जाएगी, सबकुछ बोझिल-बोझिल हो ही जाएगा।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की प्रेमिका ने उससे पूछा कि क्या तुम मुझसे शादी करोगे? नसरुद्दीन ने कहा कि बड़ा मुश्किल मामला है। मेरे दादाजी ने दादीजी से, पिताजी ने माताजी से, नानाजी ने नानीजी से, मामाजी ने मामीजी से शादी की थी, हमारे खानदान में नजदीकी रिश्तेदारों से ही शादी करने की प्रथा है। सर्व से भांवरे पड़ जाने का नाम धर्म है। अपनी कारा से बाहर निकलो इसलिए असुरक्षित होने को जो तैयार है केवल उसी के लिए यह विधि काम की होगी। भगवान शिव कहते हैं हे पार्वती! स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो, सुदूर और समीप। निकट भी और दूर भी, सर्वत्र तुम ही तुम हो। छलांग लगाओ अपने घेरे से, बाहर आओ। नीत्से ने कहा है लिव डेंजरसली, खतरनाक ढंग से जियो। सच पूछो तो जीने का और कोई तरीका होता ही नहीं। जिंदगी की मशाल को दोनों सिरों से जलाकर जियो, बुझे-बुझे, बोझिल-बोझिल, दबे-दबे न जियो।

जीवन की उसकी प्रगाढ़ता में जियो, तभी धर्म के गहन अनुभव हो पाते हैं। लेकिन हमने तो सब तरफ सुरक्षा का इंतजाम कर दिया। प्रेम की जगह हमने विवाह का इंतजाम कर दिया, विवाह यानि सुरक्षा, प्रेम यानि असुरक्षा। आज जिस स्त्री या पुरुष से तुम प्रेम कर रहे हो, कोई जरूरी नहीं कि कल वह तुम्हें प्रेम करे, कल तुम्हें छोड़ के वह जा सकता है, किसी और के प्रेम में पड़ सकता है, कल उसकी मृत्यु हो सकती है, हजार खतरे हैं। विवाह की जंजीर डाल दो, कानूनी शिकंजे में जकड़ दो। लेकिन याद रखना, फिर प्रेम भी मर जाएगा, कानूनी शिकंजे में प्रेम जीवित नहीं रह सकता। असुरक्षा के साथ ही जीवन है। आपने पुराण की वह कथा सुनी होगी जिसमें उर्वशी स्वर्ग में रहते-रहते ऊब गई और एक दिन उसने विनती की कि मैं धरती पे जाना चाहती हूं और इन मिट्टी के मनुष्यों से प्रेम करना चाहती हूं। स्वर्ग में देवता थे, उनकी स्वर्ण काया थी। वे कभी बूढ़े नहीं होते, वे कभी बीमार नहीं पड़ते, उनके पसीने से गंध

नहीं आती। उर्वशी बोर हो गई, ऊब गई। स्वर्ग में कौन नहीं ऊब जाएगा। सबकुछ यथावत है, कुछ बदलता ही नहीं, वहां मृत्यु भी नहीं होती। और जीवन का प्रगाढ़ अनुभव, प्रेम का प्रगाढ़ अनुभव केवल मृत्यु के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकता है।

उर्वशी तरस गई धरती पर आने के लिए। चालाक इन्द्र ने एक शर्त रखी कि ठीक है, धरती पर जाओ, आदमी को प्रेम करो लेकिन एक बात ख्याल रखना, अपना रहस्य उसे मत बताना। यह मत बताना कि तुम कौन हो वरना तुम्हें तुरंत वापस स्वर्ग में आना पड़ेगा। इन्द्र चालाक था वह तो जानता था कि प्रेमी हर बात पूछना चाहते हैं, उघाड़ना चाहते हैं दूसरे को। तो निश्चितरूप से जिस पुरुष से यह प्रेम करेगी वह इससे पूछेगा कि तुम कौन हो और बस इसको तुरंत वापस स्वर्ग में आना होगा। इस शर्त के साथ उसने भेजा। पुरवा नाम के एक इंसान से उर्वशी को प्रेम हो गया। उससे पहले ही बता दिया कि मुझसे यह मत पूछना कि मैं कौन हूं, वरना मैं उसी दिन गायब हो जाऊंगी। पुरवा उसके साथ रहने तो लगा, बहुत प्रेम करता था, उर्वशी ने पहली बार प्रेम का स्वाद जाना। स्वर्ग में जो स्वर्ण की कायाएं हैं और जो अमर देवता हैं वे काम भोग तो कर सकते हैं, प्यार नहीं कर सकते। प्रेम तो केवल वहीं संभव है जहां मृत्यु होती है, जीवंतता केवल वहीं संभव है जहां मौत होती है, कंट्रास्ट चाहिए। उर्वशी को अद्भुत प्रेम मिला लेकिन पुरवा दबा-दबा रहता था कि कहीं यह छोड़ के चली न जाए, कहीं मैं इससे पूछ न लूं, खुद डरता था अपने आप से। रात को उसकी साड़ी का पल्लू पकड़कर सोता था कि कहीं रात को उड़ न जाए। और फिर एक दिन ऐसा हुआ वह न रोक सका और उसने पूछ लिया कि तुम कौन हो? कहानी कहती है, उर्वशी तुरंत गायब हो गई। पुरवा के हाथ में उसके साड़ी का एक टुकड़ा बस रह गया बस। यह कहानी बड़ी प्यारी, सुंदर कहानी है।

मृत्यु के कंट्रास्ट में ही जीवंतता का अनुभव होता है, प्रेम का अनुभव होता है, परमात्मा का, धर्म का, समाधि का अनुभव होता है। इसलिए मृत्यु को दुश्मन की तरह मत देखना। यह समझ ही तुम्हारे भीतर साहस को पैदा करेगी। यह समझ की मृत्यु है, बचने का कोई उपाय नहीं, इसलिए बचने की कोई कोशिश भी बेकार है। पूर्णता से जीना शुरू करो। हां, जीवेष्णा को गिर जाने दो, वह जो जीने की आकांक्षा है कि मैं सदा रहूं उसे ड्राप करो, उसे छोड़ो। जरा सोचो अगर तुम सदा-सदा जीवित रहोगे, तुम भी स्वर्ग के देवी-देवताओं की तरह मुर्दा हो जाओगे। स्वर्ग के देवी-देवताओं को जिंदा नहीं कहा जा सकता। जहां मृत्यु नहीं है, वहां जीवंतता भी नहीं होगी। तो जीवन को स्वीकारो तभी असीम के साथ एक हो सकते हो, तब शिव की यह विधि कर सकते

हो कि अपने आप को परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो। जीवंतता को प्रगाढ़ करना होगा, संवेदनशीलता को जगाना होगा। रात तकिया पर सोते हुए, तकिया पे सिर रखकर तकिए के स्पर्श को एहसास करो। नीचे तुम्हारे गद्दा बिछा है उसके प्रति संवेदनशील होओ, हवा की गर्मी या ठण्डक को महसूस करो। सुबह जब नींद खुले तो एकदम से मत उठ जाओ, चारों तरफ से कुछ आवाजें आ रही हैं, पक्षियों का स्वर है, सड़क पे ट्रैफिक की आवाज है सुनो, संवेदनशील बनो, घड़ी की टिक-टिक सुनो, धीरे-धीरे संवेदनशीलता को जगाओ तब तुम विराट होने लगोगे, फैलने लगोगे।

सुनो यह बहुत मजेदार चुटकुला –

सेठ चंदूलाल और उनके दार्शनिक मित्र विचित्तर सिंह दोनों पिकनिक मनाने के लिए जंगल गए। एक टेंट लेकर गए, जंगल में जा के उन्होंने टेंट लगाया, रात को सोए। रात दो बजे चंदूलाल की नींद खुली। उसने अपने मित्र विचित्तर सिंह से कहा कि उठो भाई, दार्शनिक महोदय जरा देखो क्या दिखाई पड़ता है? विचित्तर सिंह ने कहा, अहा! कितना सुंदर आकाश, प्रकृति की बड़ी कृपा। चंदूलाल ने पूछा और क्या दिखाई पड़ता है? विचित्तर सिंह ने कहा कि चांद दिखाई पड़ता है, तारे दिखाई पड़ते हैं। चंदूलाल ने पूछा और क्या दिखाई पड़ता है? उसने कहा सप्तऋषि भी दिख रहा है, ध्रुव तारा भी नजर आ रहा है। चंदूलाल ने कहा तुम्हें यह नहीं दिखता कि हमारा टेंट चोरी चला गया है। मारवाड़ी को अपनी चिंता। काश, यह मन का टेंट हमारा चोरी चला जाए। ये धारणाओं की कारागृह, विचारों के संग्रह से मुक्ति मिल जाए तो हम भी खुले आकाश के नीचे आ जाएं, चांद-तारों से गुफ्तगू होने लगे। सुरक्षा के टेंट को छोड़ो फिर जिंदगी बोझिल-बोझिल नहीं रहेगी, फिर ऊब और उदासी नहीं रहेगी। फिर तुम पूरी तरह जिंदा होओगे, ये मुर्दानगी मिटेगी। उसी आदमी को मैं संन्यासी कहता हूं जो असुरक्षित होने को तैयार है। इस विधि को करने के लिए तैयार हो जाएं, धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

सभी मित्रों को नमस्कार।

आज सुबह हमने विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नंबर 99वें समझीं, आओ अब उसका प्रयोग करते हैं। सभी मित्र खड़े हो जाएं, आंख बंद कर लें और अपने शरीर को जोर से सिकोड़ें, तनावग्रस्त बनाएं। पूरा चेहरा, हाथ, कमर, गर्दन, पीठ, पेट खींचें। श्वांस बाहर रोक-रोककर, समेटें अपने आप को, बिल्कुल सिमट जाएं, संकीर्ण हो जाएं, आधा मिनट और। इस तनाव के कंट्रास्ट में फिर शिथिल होना

बहुत आसान होगा। पूरे संकीर्ण, सिमटे हुए, आखिरी मूवमेंट एक, दो, तीन। अचानक छोड़ दें, रिलैक्स। बिल्कुल सीधे खड़े, बिजली के खंभे की भांति लेकिन विश्रामपूर्ण। धीमी, गहरी श्वांस लें, भीतर श्वास को रोकें पांच सेकेण्ड एक, दो, तीन, चार, पांच। आहिस्ता से छोड़ें फिर दोबारा लें, इस प्रकार चलने दीजिए। भाव करें न केवल तन, मन भी शिथिल हो गया, शांत हो गया और भीतर जाती श्वास के साथ आप फैल रहे हैं, विस्तीर्ण हो रहे हैं। स्वयं को फैलता हुआ महसूस करें, अब आराम से बैठ जाएं। श्वास को इसी प्रकार दो मिनट और चलने दें। धीमी, गहरी श्वास, सीने का फैलना, पेट का फूलना, पांच सेकेण्ड का अंतर्कुंभक। आपका चैतन्य विस्तीर्ण होता जा रहा है, हर अंतर्कुंभक के साथ आपकी सीमा फैलती जा रही, फैलती जा रही। अब आराम से लेट जाएं, श्वांस की विधि छोड़ दें, भगवान शिव का वचन स्मरण करें, स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करें, फिल यू आर एवरीवेअर, यू हैव बिकम ओम्नीप्रेजेंट, सर्वव्यापी। तिब्बती साधक पूछते हैं स्वयं से, मैं कहां हूं? कोई उत्तर नहीं मिलता क्योंकि मैं सर्वत्र हूं। भगवान शिव वही कह रहे हैं– सब दिशाओं में स्वयं को व्याप्त होता हुआ अनुभव करो। जब तक आपकी मौज हो इस ध्यान अवस्था में डूबे रहें।

धन्यवाद।

विधि-100

आत्मवान होने की विधि

वस्तुओं व विषयों का गुणधर्म ज्ञानी व अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में बना रहता है, वस्तुओं में नहीं खोता।

एक शायर की जुबानी सुनो, इंसान की जिंदगी की कहानी सुनो–
पूछते हो तो सुनो कैसे बसर होती है
रात खैरात की सदमे की सहर होती है।
सांस लेने को तो जीना नहीं कहते यारब
दिल ही दुखता है न अब आस्तीं तर होती है।
जैसे जागी हुई आंखों में चुभें कांच के ख्वाब
रात इस तरह दीवानों की बसर होती है।
गम ही दुश्मन है मेरा गम को ही दिल ढूंढ़ता है

देखना कितनी विचित्र बात है–
एक लम्हे की जुदाई भी अगर होती है।
अपने अनमोल नगीने को छुपाएं तो कहां
पत्थरों की बारिस यहां आठ पहर होती है।
आह! हर कदम पे मेरी राह भी अब रोती है
मंजिल मिलती ही नहीं कितनी सफर होती है।

बस सफर ही सफर है आदमी की जिंदगी की कहानी में, मंजिल पर पहुंचना तो कभी होता ही नहीं, आठ पहर पत्थरों की बारिश। लेकिन जीने का एक तरीका और भी है। भगवान शिव उसी तरफ इशारा कर रहे हैं। वे कहते हैं– ज्ञानी और अज्ञानी के लिए तो संसार एक ही है किन्तु ज्ञानी आत्मगत भाव में जीते हैं। अगर हम आत्मगत भाव में जीना शुरू कर दें तो पत्थरों की बारिश फूलों की वर्षा बन सकती है। ये गम हमने स्वयं ढूंढे हैं। अगर हम इनको ढूंढना बंद कर दें तो बहुत कुछ और भी है इस जहां में। लेकिन वो अपने भीतर ढूंढना होगा, बाहर नहीं। बाहर तो केवल गम ही गम मिलेंगे। आनंद का खजाना, सच्चिदानंद हमारे भीतर है। बाहर चलने से मंजिल न मिलेगी, रुकने से मंजिल मिलती है। हमारा कभी ख्याल ही नहीं जाता, हम सोचते हैं कि मंजिल इसलिए नहीं मिल रही कि शायद मैं कमजोर हूं, तेजी से दौड़ नहीं पा रहा हूं दूसरे लोग आगे निकल गए प्रगियोगिता में। कारण बिल्कुल उल्टा है, जो रुक जाता है उसे परमात्मा मिल जाता है, जो रुक जाता है उसे परमात्मा मिल जाता है।

जब तक बुद्ध भागते रहे 6 साल तक, परमात्मा न मिला, जब तक महावीर तपस्या करते रहे 12 वर्ष तक, भीतर के दर्शन न हुए, जिस दिन ठहर गए, रुक गए, उस दिन परमज्ञान घटा। भीतर की मंजिल रुकने से मिलती है, क्योंकि वह मंजिल तुम स्वयं ही हो। जैसा मनुष्य है, ऊब गया है स्वयं के होने से। रूपांतरण की सोचता है किन्तु साहस नहीं जुटा पाता। हम नए होना चाहते हैं, कुछ परिवर्तन चाहते हैं लेकिन पुराने ढर्रे को हम छोड़ना भी नहीं चाहते। बहुत लोग साधना में रस दिखाते हैं। कहते हैं कि हम प्यासे हैं किन्तु विरलों के जीवन में ही रूपांतरण घटित हो पाता है। और कारण, ये बड़ी भीड़ कभी परिवर्तित नहीं हो पाती क्योंकि रूपांतरण मौत जैसा लगता है। जो पुराना ढर्रा और ढांचा है जीने का, दुखों और गमों में जीने का उसे छोड़ना होगा और उसी को हमने स्वयं का होना समझ लिया है। हमारा वास्तविक होना तो आनंदस्वरूप है। तो साधना के नाम पर आत्मप्रवंचना न करना, स्पष्ट हो जाना। क्या

तुम वास्तव में खोज रहे हो, आधे–अधूरे मन से कोई विधियां काम न करेंगी। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि ध्यान की इतनी सारी विधियां फिर भी लोगों के जीवन में परिवर्तन क्यों नहीं होता? लोग आधे–अधूरे मन से करते हैं।

मैने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पोस्ट आफिस पहुंचा और उसने कहा कि साहब रिपोर्ट लिखिए, मेरी पत्नी पिछले पांच दिन से गायब है, कहीं गुम गई। पोस्ट मास्टर ने कहा कि भाई ये पोस्ट आफिस है, पुलिस थाना सामने है वहां जा के लिखाओ। नसरुद्दीन ने कहा नहीं, वहां नहीं जाऊंगा। पहले एक बार और ऐसा ही हुआ था, मैं वहां गया था वो लोग दो दिन में उसे पकड़ कर ले आए थे। पोस्ट मास्टर ने कहा कि जब तुम्हें उसको ढूंढना ही नहीं है तो फिर यहां भी क्यों आए हो रिपोर्ट लिखाने? नसीरुद्दीने ने कहा कि दिल को संतोष रहेगा कि कुछ तो हमने किया। नहीं तो अपराधबोध, गिल्टफीलिंग आती की पत्नी गुम गई और रिपोर्ट भी न लिखाई, आप तो रिपोर्ट लिख लो बस, कुछ करना–वरना नहीं है। अधिकांश लोग परमात्मा को भी बस ऐसा ही खोजते हैं, कुछ पाना–वाना नहीं है। एक और कहानी सुनी है मैंने नसरुद्दीन की। स्कूल में टीचर का काम करता था। एक दिन स्कूल की बिल्डिंग में आग लग गई। वो बाहर पेड़ के नीचे आंख बंद करके बैठा। अड़ोस–पड़ोस के लोग आए, उन्होंने कहा कि मुल्ला कुछ करोगे नहीं स्कूल की बिल्डिंग जल रही है, सब कुछ जला जा रहा है? नसरुद्दीन ने कहा कर तो रहा हूं। घंटा भर से बैठ के आंख बंद करके अल्लाह से प्रार्थना कर रहा हूं कि बारिश करवा।

जब तक हमें जीवन की आपातकालीन स्थिति का स्पष्ट एहसास न हो, हम आधे–अधूरे मन से विधियां करेंगे और तब वो विधियां काम नहीं कर पाएंगी। इसमें विधि का दोष नहीं है, हमारी तथाकथित प्रार्थनाएं साधनाओं से पलायन के उपाय हैं। बारिश की प्रार्थना न करो अगर तुम्हें लगता है कि आग लगी है तो बुझाने के लिए कुछ करो। भगवान शिव की विधियां उनके लिए हैं जो बदलाहट चाहते हैं, मनोरंजन नहीं। अक्सर धार्मिक सभाओं में लोग प्रवचन सुनने चले आते हैं जिनको अनिद्रा की बीमारी है। रात उन्हें ठीक से नींद नहीं आती, प्रवचन में ऊबकर सो जाते हैं। धर्म ऐसे लोगों के लिए नहीं है, धर्म तो परमजागरण की विधि है। सघन प्रयास, प्रयत्न और अभीप्सा चाहिए, वह तीव्र आकांक्षा, तीव्र प्यास तुम्हारे भीतर क्रस्टलाइजेशन पैदा करेगी, तुम्हें अखण्ड करेगी, वह अखण्डता काम आती है।

भगवान शिव की आज की विधि समझो– वो कहते हैं– वस्तुओं व विषयों का गुणधर्म ज्ञानी और अज्ञानी के लिए समान ही होता है किन्तु ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में जीता है, वस्तुओं में खोता नहीं।

सड़क से गुजरते हो एक कार निकलती है और तुम्हारे मन में वासना उत्पन्न हो जाती है। काश, ऐसी कार मेरे पास भी हो, तुम कार से प्रभावित हो गए। तुम आत्मगत न हो पाए, तुम वस्तुगत हो गए। एक सुंदर चेहरा दिखा और कामना उत्पन्न हो गई, ये हजार रुपए का नोट पड़ा हुआ दिखा और लोभ उत्पन्न हो गया और तुम विचलित हो गए। ज्ञानी भी इसी संसार में जीता है, उसके सामने से भी कार निकलती है, सुंदर स्त्री गुजरती है, रुपयों के नोट पड़े रहते हैं किन्तु वह आत्मगत भाव में जीता है, सब्जेक्टिव अवेयरनेस उसकी बनी रहती है और तब वह अप्रभावित और अस्पर्शित रहता है। कीचड़ में कमलवत, कीचड़ कमल को छूती भी नहीं। याद रखना, वे सन्यासी जो संसार को छोड़कर भाग गए उनको मैं नहीं कहूंगा कि ठीक साधक हैं। शिव की परिभाषा में वे सही नहीं उतरेंगे। वे तो ऐसे कमल के फूल हैं जो कीचड़ से ही भाग गए, अब अगर कीचड़ नहीं छूती तो उसमें तुम्हारी क्या खूबी, कीचड़ से तो तुम दूर आ गए। असली मजा तो तब था जब कीचड़ में रहते और तुम्हें कीचड़ न छूती, तब वह साधना की कसौटी होती।

तीन प्रकार के लोग हैं– एक संसारी, दूसरे साधक, तीसरे सिद्ध। संसारी का अर्थ है कि परिस्थितियों के पीछे वह खिसकता है, हर चीज उसे प्रभावित करती है, साधक वह है जिसने खिसकना बंद कर दिया, कोशिश में है कि परिस्थितियां उसे घसीट न पाएं, कभी–कभी घिसट जाता है, बार–बार आत्मगत भाव में वे फिर जड़ें जमाता है और सिद्ध वह है जो अब सहज रूप से आत्मगत भाव में जम गया, अब कोई परिस्थिति उसे नहीं घसीट पाती। और विधि बड़ी सरल है, बहिर्मुखी चेतना को अपने भीतर लौट के आने दो।

मैंने सुना है एक चुटकुला– सेठ आशाराम की एकलौती बेटी चेतना योग्य वर की तलाश करते–करते चालीस साल की उम्र पार कर गई किन्तु योग्य वर न मिला। एक दिन चेतना का गरीब प्रेमी, सत्यम उसका नाम था, हिम्मत जुटाकर आया और उसने सेठ जी से कहा कि सेठ जी– मेरा नाम सत्यम है, मैं आपकी कन्या चेतना का हाथ मांगना चाहता हूं। सेठ जी उसकी गरीबी देखकर भड़ककर बोले, मैं नहीं चाहता कि मेरी बेटी किसी गधे के साथ जिंदगी गुजारे। सत्यम ने कहा कि मैं आपकी बात से बिल्कुल सहमत हूं, इसीलिए तो उसका हाथ मांगने आया हूं। चेतना को सत्यम से जुड़ने दो, सत्य हमारे भीतर है। हमारी चेतना बहिर्मुखी हो गई, बाहर है माया का जगत। वह माया के साथ, असत्य के साथ जुड़ गई। आशाराम, आशा राम से हटा के अब सत्य राम से जोड़ो। आशाएं यानि झूठ, आशाएं यानि सपने, आशाएं यानि माया। चेतना को अंतसमुखी करो और अचानक तुम पाओगे यथार्थ से मिलन हो गया। शिव

जिसकी तरफ इशारा कर रहे हैं वह बात बन जाएगी। संसार को छोड़ के नहीं भागना है, अपनी चेतना को अंतसमुखी करना है, तभी तुम निर्लिप्त हुए, अस्पर्शित हुए, त्यागी हुए। त्यागी का अर्थ छोड़ के भाग जाना नहीं, यहीं रहते–रहते कोई चीज तुम्हें छू न पाए यह हुआ असली त्याग।

अधार्मिक आदमी परिस्थितियों को बदलता है और इसलिए वो जो पुराना तथाकथित सन्यासी था उसको भी मैं धार्मिक नहीं गिनता। धार्मिक व्यक्ति वह है जो अपनी मनःस्थिति को बदलता है। तुमने कभी ख्याल किया, जितनी गहन निद्रा में तुम होते हो उतना ही तुम स्वप्न से प्रभावित हो जाते हो। इसका ठीक उल्टा, जितना ही तुम ज्यादा जाग्रत हो जाओगे उतना ही यथार्थ भी तुम्हें प्रभावित न कर पाएगा, तब तुम असली निर्लिप्त और असली ज्ञानी हुए। एक और अद्भुत घटना घटती है फिर, परिस्थितियां तुमसे प्रभावित होने लगती हैं, जब तुम आत्मगत भाव में जीते हो तो परिस्थितियों को तुम बदलने लगते हो। ऐसा नहीं कि वे सिर्फ परिस्थितियों को बदलना चाहते हो, उनके भीतर कोई कामना नहीं है किन्तु ऐसा होता है। वे एक कैटालिटिक एजेंट की भांति हो जाते हैं, उनके भीतर की उत्प्रेरक क्षमता बहुत सघन हो जाती है। एक बुद्ध जब शांत होता है तो उसके आस–पास शांति की तरंगें फैलने लगती हैं। बुद्ध चाहते नहीं कि ऐसा हो किन्तु ऐसा होता है। एक फूल जब खिलता है सुगंध फैलती है, सूरज जब उगता है रोशनी फैलती है, ठीक वैसे ही संसारी से साधक बनो, साधक से सिद्ध और उस दिन की प्रतीक्षा करो जिस दिन तुम्हारे सूरज से बिखरी हुई रोशनी दूसरों का भी अंधेरा मिटाने लगे। परिस्थितियों से अप्रभावित होना शुरू करो। ओशो ने इस विधि को समझाते हुए कहा कि बेहतर होगा वास्तविक जीवन में शुरू न करके नाटक से, साइकोड्रामा से शुरू करना। अभिनय करो, अभिनय में साक्षी होना बहुत आसान है और एक बार तुम्हें कला आ गई साक्षी होने की फिर तुम वास्तविक जीवन में भी साक्षी हो पाओगे। तो आज की इस विधि को हम मनोनाटक द्वारा, साइकोड्रामा के द्वारा करेंगे। धन्यवाद।

प्यारे मित्रो नमस्कार, आज सुबह हमने भगवान शिव की 100वीं विधि समझी जिसमें वे कहते हैं कि संसार ज्ञानी और अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में जीता है, वह स्वयं का विस्मरण नहीं करता। इसका प्रयोग करने के लिए एक नाटकीय स्थिति, साइकोड्रामा ज्यादा अच्छा होगा। तो मैं निवेदन करूंगा कि तीन–तीन मित्र आपस में मिल के साइकोड्रामा शुरू करेंगे। सभी मित्र खड़े हो जाएं, तीन–तीन मित्र आपस मे जोड़ बना लें और एक–दूसरे से कुछ बात–चीत। स्वयं का स्मरण न छूटे, ठहर जाएं, अचानक रुक जाएं, स्टाप। आंख बंद

करके आत्मस्मरण में बाहर की स्थिति से अप्रभावित, जल में कमलवत। अपने–अपने स्थान पर जाकर लेट जाएं। शरीर को शिथिल छोड़ दें, मन को भी। बाहर की परिस्थिति से पूर्णतः अप्रभावित, कीचड़ में कमल के समान। बाहर चाहे क्रोध हो, चाहे प्रेम, घृणा हो कि करुणा, दोस्ती हो कि दुश्मनी, अनुकूल परिस्थिति हो कि प्रतिकूल, भीतर की चेतना अस्पर्शित रहती है। भगवान शिव कहते हैं, संसार ज्ञानी और अज्ञानी के लिए एक जैसा है किन्तु ज्ञानी आत्मगत भाव में जीते हैं, सब्जेक्टिव कांशसनेस में और अज्ञानी वस्तुओं में, व्यक्तियों में, परिस्थितियों में खो जाते हैं। लौट आएं स्वयं पर, लौट आएं, रिटर्निंग टू द सोर्स। महर्षि पतंजलि ने इसी को प्रत्याहार कहा है, भगवान महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है, भगवान शिव कह रहे हैं आत्मगत भाव में जीना। जब तक आपकी मौज हो ध्यान की इस सुंदर अवस्था में डूबे रहें।

धन्यवाद।

विधि-101

सर्वज्ञ व सर्वव्यापक

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में। एक नए शहर में पहुंचा रात देर हो गई थी। होटल में गया, एक ही होटल था, उस छोटे से शहर में। मैनेजर ने कहा, कमरा तो कोई खाली नहीं है सिंगल रूम, ऐसा करें एक डबल रूम में एक व्यक्ति है, आप चाहें तो उस कमरे में ठहर सकते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, रात भर तो मुझे सोना है, सुबह निकल ही जाना है, कोई हर्ज नहीं। जब उस कमरे में पहुंचे तो दूसरा व्यक्ति सो चुका था, वो खर्राटे भर रहा था। नसरुद्दीन ने दूसरा बिस्तर ले लिया। फिर नसरुद्दीन के मन में एक संदेह उत्पन्न हुआ एक कमरे में दो लोग हैं, सुबह जब मैं उठूंगा तो पता चलेगा कैसे कि आखिर मैं कौन हूं। कोई पहचान कर ली जाय। उसने देखा कमरे में एक रबड़ का गुब्बारा पड़ा हुआ था। शायद नसरुद्दीन के आने के पहले छोटे बच्चे उस कमरे में ठहरे होंगे, वे रबड़ का गुब्बारा वहां भूल गए। नसरुद्दीन ने अपने पैर के अंगूठे में उस

रबड़ के गुब्बारे को बांध लिया पहचान के लिए कि जिसके पैर में गुब्बारा बंधा है वह मैं हूं। आधी रात उस दूसरे आदमी की नींद खुली, उसने देखा ये विचित्र स्थिति। यह आदमी पैर में गुब्बारा बांध के सोया है, उसे मजाक सूझी उसने धीरे से वह धागा खोल लिया, उसको अपने पैर के अंगूठे में बांध के वह अपने बिस्तर पर सो गया। सुबह पांच बजे नसरुद्दीन उठा, उसने अपना पैर देखा गुब्बारा नहीं, चकित हुआ, दूसरी तरफ देखा दूसरे आदमी के पैर में गुब्बारा, गया उस आदमी के पास। उसको उठाया कहा कि महोदय! आप तो मुल्ला नसरुद्दीन हैं, पहचान पक्की है आपकी, अब कृपया यह बताइए कि मैं कौन हूं और मुझे जाना कहां है। नसरुद्दीन की बात पर हमें हंसी आएगी, लेकिन हमारी स्वयं से पहचान इससे ज्यादा भिन्न नहीं है। वह रबड़ का गुब्बारा है, हमारा यह चमड़ी का गुब्बारा है।

शरीर और क्या है? उसमें हवा भरी थी, इसमें हड्डी, मांस, मज्जा, खून भरा है, है गुब्बारा ही। इसकी शकल–सूरत से ही हम अपने आप को पहचानते हैं। जरा कल्पना करो, आपको रात को एनेस्थिसिया दे के बेहोश कर दिया जाए और प्लास्टिक सर्जरी करके आपकी चमड़ी हटा के किसी अफ्रिकन की चमड़ी लगा दी जाए, सुबह जब आप आइने के सामने पहुंचेंगे तो चीख मार के कहेंगे कि यह कौन है? हमारी स्थिति नसरुद्दीन से भिन्न नहीं है। हमने तन और मन से अपना तादात्म्य कर लिया, हम उसी को स्वयं का होना समझने लगे और क्षुद्रता के साथ तादात्म्य करके हम क्षुद्र हो गए। वास्तव में तो नहीं हो गए किन्तु मानने लगे। आज की विधि बड़ी अद्भुत है। 100वीं विधि के समान ही आज की विधि नंबर 101 में भगवान शिव कहते हैं कि हे शक्ति स्वयं को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी जानो। हमने अपने आप को सीमित मान लिया है, हमने अपने आप को शरीर में समेट लिया है, हम रूप और आकृति से हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं, हमने मन के ज्ञान को अपना ज्ञान मान लिया है।

शिव कह रहे हैं तुम सर्वज्ञ हो, तुम सर्वशक्तिमान हो, तुम सर्वव्यापी हो, इस शरीर के गुब्बारे के अंदर कैद नहीं हो। यह सर्वज्ञ शब्द भी थोड़ा समझना। जीसस के अनुयायी जीसस को, महावीर के अनुयायी महावीर को सर्वज्ञ मानते हैं, दूसरे लोग उन पर हंसते हैं कि सर्वज्ञ कैसे हो सकते हैं, सब कुछ कैसे उन्होंने जान लिया। सर्वज्ञ का वह अर्थ नहीं होता। आपने एक शब्द सुना होगा विशेषज्ञ। विशेषज्ञ का अर्थ होता है जो किसी चीज के बारे में बहुत ज्यादा जानता है। पुराने जमाने में सिर्फ एक डाक्टर हुआ करता था, फिर धीरे–धीरे दो ब्रांच हो गई मेडिसिन और सर्जरी, दोनों के स्पेशलिस्ट अलग–अलग हो गए, फिर मेडिकल साइंस में पच्चीसों ब्रांच हो गईं।

सर्जिकल साइड में बहुत ब्रांच हो गईं। आंख के डाक्टर अलग, इएनटी के डाक्टर अलग, पेट का डाक्टर अलग, फेफड़े का डाक्टर अलग और अब वो मजाक करते हैं कि बायीं आंख का अलग और दायीं आंख का अलग होगा। धीरे–धीरे ऊपर की पलक का डाक्टर अलग, नीचे की पलक का अलग होगा। अभी बत्तीसों दांत का एक डेंटिस्ट होता है, फिर एक–एक दांत के अलग 32 प्रकार के डेंटिस्ट होंगे, जैसे ज्ञान बढ़ता जाएगा। अब ये संभव नहीं है कि एक व्यक्ति सारे शरीर के बारे में जाने, एक–एक अंग अपने आप में बहुत बड़ा है। जैसे–जैसे ज्ञान बढ़ता जाएगा, विशेषज्ञ बढ़ते जाएंगे। तो विशेषज्ञ की अंतिम परिभाषा क्या होगी, लॉजिकल कनक्लूजन, द वन हू नोज एवरीथिंग एबाउट नथिंग।

अभी थोड़े दिन पहले मैं एक फिजिक्स की किताब पढ़ रहा था, उसका शीर्षक बड़ा मजेदार था। उसका शीर्षक था समथिंग काल्ड नथिंग, फिजिक्स की आधुनिक किताब। धीरे–धीरे वैज्ञानिक खोज करते–करते अदृश्य परमाणु पर पहुंच गए, इलेक्ट्रान, प्रोटान पे पहुंच गए, फिर सब एटामिकल पार्ट्स पे पहुंच गए, अब उनकी खोज और आगे निकली जा रही है, समथिंग काल्ड नथिंग। तो विशेषज्ञ का अर्थ है जो कम से कम चीज के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानता है। सर्वज्ञ का अर्थ इसका ठीक उल्टा है। वह ज्यादा से ज्यादा के बारे में कम से कम जानता है और इसकी तार्किक में निष्पत्ति क्या होगी, ही नोज नथिंग एबाउट एवरीथिंग, विशेषज्ञ का ठीक उल्टा। बुद्ध स्वयं को जानते हैं, महावीर स्वयं को जानते हैं, बाहर की चीजों के बारे में उनकी जानकारी नहीं है। उनका वह स्वयं का ज्ञान, वह आत्मज्ञान, परमज्ञान ही उनकी सर्वज्ञता है। तो जब शिव कहते हैं कि तुम सर्वज्ञ होओ इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें बाहर की नालेज होगी, तुम्हें स्वयं का ज्ञान होगा। तुम सर्वव्यापी हो अर्थात देह की सीमा में कैद नहीं हो, ये विचारों की कारागृह में तुम बंद नहीं हो, तुम्हारी चेतना अनंत और अनादि और असीम है। यह प्रयोग करके समझना होगा, बौद्धिकरूप से इसे न समझ पाओगे। हमारी चेतना की जो विभिन्न अवस्थाएं हैं, उनका जरा ख्याल करो। जागरण में तुम समाज के संग होते हो, स्वप्न में तुम अपनी अधूरी कामनाओं के संग होते हो और गहन निद्रा में तुम प्रकृति के गर्भ में होते हो। इन तीनों के पार एक और तुरीय अवस्था है उसमें तुम ब्रह्म में होते हो, तब तुम सर्वव्यापी होते हो। उसकी क्षणिक झलकें हमको कभी–कभी मिलती हैं लेकिन हम बेहोश अवस्था में वहां पहुंचते हैं, इसलिए उसको ठीक–ठीक हम जान नहीं पाते। ध्यान और समाधि के सारे उपाय होशपूर्वक तुरीय अवस्था में पहुंचने के उपाय हैं।

जो शिव कह रहे हैं कि तुम सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी जानो अर्थात होशपूर्वक उस तुरीय अवस्था में प्रवेश करो। जिन लोगों को अपने ऊपर श्रद्धा है, आत्मभरोसा है, आत्मविश्वास है उनके लिए यह विधि बड़ी कारगर होगी। एक आंतरिक बल चाहिए इन विधियों को करने के लिए और याद रखना, हमारे मन के पास बड़ी अद्भुत शक्ति है, पदार्थ से भी ज्यादा। सामान्यतः आधुनिक शिक्षित जगत में पुरुष शक्तिशाली हैं, स्त्रियां शारीरिक रूप से कमजोर हैं लेकिन इसी दुनिया में कुछ जातियां और कबीले ऐसे हैं जहां पर इसकी उल्टी मान्यता है। वे मानते हैं कि स्त्रियां मजबूत होती हैं, पुरुष कमजोर होते हैं और उन जाति कबीलों में ठीक वैसा ही हुआ। धीरे–धीरे स्त्रियां बहुत मजबूत हो गई हैं, उनकी लंबाई ज्यादा है, उनका वजन ज्यादा है, उनकी मांसपेशियों की ताकत ज्यादा है। पुरुष दुर्बल, असहाय, दीन–हीन हो गए, मान्यता की वजह से। जो हम मान लेते हैं वैसा हम होना शुरू हो जाते हैं। हमारा शरीर हमारे मन का अनुगमन करता है, विश्वास बड़े सृजनात्मक होते हैं। जीसस ने कहा है, श्रद्धा पर्वत को भी हिला सकती है। बिल्कुल ठीक कहा है।

बाइबिल में एक कहानी आती है कि जीसस के कुछ शिष्य नाव में यात्रा कर रहे हैं जहाज में, तूफान आता है और नाव डूबने लगती है। वे आवाज लगाते हैं जीसस किनारे पे खड़े हैं, जीसस पानी पर दौड़ते हुए जाते हैं और अपने शिष्यों से कहते हैं उतर आओ नाव से, आओ मेरे साथ। शिष्यों की हिम्मत नहीं पड़ती, एक शिष्य हिम्मत करता है पानी पर उतर आता है। दो–चार कदम चलता है, खुद चकित होता है, उसके अंदर भरोसा भी था और संदेह भी था, दोनों चीजें थीं। भरोसे में वह उतर तो आया नाव से पानी पर चलने लगा लेकिन फिर संदेह आया कि मैं चल कैसे रहा हूं। उसने जीसस से पूछा कि हे प्रभु! यह कैसा चमत्कार, मैं पानी पर कैसे चल पा रहा हूं और जैसे ही उसने पूछा कैसे वह डूबने लगा। जीसस ने कहा, कम भरोसे के आदमी, कैसे न पूछ, कैसे पूछा कि गया। श्रद्धा जिनके भीतर है। आपको आश्चर्य होगा दुनिया में इतने प्रकार की पैथियां, चिकित्सा पद्धतियां चलती हैं और करीब–करीब 33 प्रतिशत लोग हर प्रकार की चिकित्सा पद्धति से ठीक हो जाते हैं। होना तो नहीं चाहिए, कोई एक विधि ही काम करनी चाहिए, सब विधियां काम करती हैं। इसका अर्थ हुआ उनका श्रद्धा, उनका भरोसे का भाव काम करता है। दवाई कम, डाक्टर की फीस, डाक्टर का व्यक्तित्व, उसकी भाषा, उसका रंग–ढंग, उसकी शैली, वे सारी चीजें काम करती हैं। आप डाक्टर से जितना ज्यादा प्रभावित हो जाते हैं उतनी ही उसकी दवाई काम करेगी।

आपके भीतर उसने श्रद्धा को पैदा कर दिया, असल में आपकी श्रद्धा ही आपके

ऊपर काम करती है। मैंने सुना है एक गीत –

मुझे मंदिरों ने दी सजा मैं जो रास्तों पर चल पड़ा,
मुझे मस्जिदों ने दी सजा मैं तो रास्तों पर चल पड़ा।
मेरी सांस भी रुकती नहीं, मेरे पांव भी थमते नहीं,
एक बार घर से जो निकला फिर रास्तों पर चल पड़ा।
ये जो जख्म कि भरते नहीं थे, ये गम की मरते नहीं थे,
हर दर्द रिस कर बह गया, जब रास्तों पर चल पड़ा।

जिसके अंदर ऐसी हिम्मत है, साहस है, आत्मश्रद्धा है उसके लिए ये वाली विधियां काम करेंगी। वो 33 प्रतिशत लोग जिन्हें लोग अंधविश्वासी कहते हैं और उन्हें मूढ़ कहते हैं, वास्तव में वे बड़ी सृजनात्मक शक्ति से भरे हुए हैं। तथाकथित बुद्धिजीवी लोग संदेह से भरे होते हैं और संदेह की कोई शक्ति नहीं होती। ये बुद्धिजीवी लोग लेकिन निंदा और आलोचना करने में बड़े कुशल होते हैं। ये उन विश्वासियों की निंदा करते हैं और मजे की बात यह है कि उन विश्वासियों ने भी आत्मनिंदा को स्वीकार लिया है, वे भी मानते हैं कि हम कुछ गलत किस्म के लोग हैं, बुद्धिजीवी महान हैं। यद्यपि इन बुद्धिजीवियों ने आज तक कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया है, हमेशा श्रद्धालु लोगों ने ही कार्य किया है। तो इस भाव में डूबना, शुरूआत करना इस बात से कि मैं देह नहीं हूं, अपनी प्राणऊर्जा का एहसास करना, उससे फैलाव की अनुभूति होगी। फिर सर्वव्यापकता का एहसास होगा, सर्वव्यपकता के बाद सर्वज्ञता का और सर्वशक्तिमान होने का एहसास होगा। जिनके भीतर आंतरिक बल है वे बड़े आराम से इस विधि में डूब पाएंगे। आपने कहानी सुनी होगी, आग पर चलने वाले फकीरों की। भारत में, सिलोन में, श्रीलंका में और कुछ सूफी फकीरों में भी यह प्रथा प्रचलित है। जिस आदमी को भरोसा है कि मैं आग पर चल सकता हूं, वह आग पर चल जाता है जलता नहीं। आश्चर्य की बात आग उसे जलाती नहीं। ठीक ऐसे ही जिनके भीतर श्रद्धा और भरोसा है वे इस विधि में डूब सकते हैं। आज शाम को इस विधि को हम करेंगे, धन्यवाद।

प्यारे मित्रो नमस्कार, आज सुबह हमने भगवान शिव की विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नंबर 101 समझी। आओ अब उसका व्यवहारिक रूप से प्रयोग करते हैं। मैं चाहूंगा आप सभी मित्र खड़े हो जाएं। शरीर को ढीला और शिथिल रखें, आंख बंद कर लें और तीव्र गति से श्वास लेना छोड़ना शुरू करें। छोड़ने पर जोर, लेने पर नहीं। शरीर को हिलने–डुलने दें, जोर से, जोर से, पूरी शक्ति लगा दें, स्टाप। बिल्कुल पत्थर

की मूर्ति हो जाएं, श्वास भी रोक लें। स्टार्ट.....स्टाप। श्वास रुकी, विचार रुके, निर्विचार जागरूकता में चेतना सधी। आखिरी बार स्टार्ट.....स्टाप। रिलैक्स आराम से बैठ जाएं, रीढ़ सीधी, गर्दन सीधी, बिना तनाव के जितनी सीधी होती हो, शरीर को निश्चल हो जाने दें, श्वास पर नियंत्रण छोड़ दें। एलाइव एनर्जी, स्वयं को शरीर की भांति नहीं, प्राणशक्ति की भांति महसूस करें। अब आराम से लेट जाएं। तुम शरीर नहीं चैतन्य हो, वह चैतन्य सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है। यू आर नाउ हियर, इस सर्वव्यापी सर्वज्ञता में गहरे और गहरे उतरें। जब तक आप की मौज हो ध्यान में डूबे रहें, धन्यवाद।

विधि-102

आत्मवान अस्तित्व

अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।

लम्हा लम्हा जीना क्या और तन्हा तन्हा मरना क्या
साथ तुम्हारा साथ हमारे अगर रहे तो कहना क्या
हम-तुम दोनों एक छंद हैं शायर जिनको भूल गया
शायद सोचा होगा सबके सामने इसको कहना क्या
सांस-सांस में समा गए तुम, कौन हूं मैं, कौन हो अब तुम
एक घूंट पीकर दुई मिट गई, अब सुनना क्या कहना क्या?

एक रासायनिक शराब है थोड़ी देर के लिए दुइ की भावना, द्वैत भावना को

मिटा देती है और आदमी को वह शांति देती है। प्रेम उससे भी गहरी शराब है ज्यादा देर तक अद्वैत की फीलिंग में ले जाती है, लेकिन सर्वाधिक गहरी शराब ध्यान की है, धर्म की है। एक बार पी, फिर कभी उतरेगी नहीं। सदा–सदा के लिए संपूर्ण अस्तित्व के साथ हम एक हो जाएंगे। आज की तंत्र सूत्र की विधि में भगवान शिव कहते हैं– अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए। पहले भीतर के द्वंद मिटा लो, सारी दुई मिट जाय, फिर भीतर और बाहर का आखिरी द्वंद भी जाने दो। सारे जगत के साथ एकात्म महसूस करो, वह अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है। रामकृष्ण परमहंस से एक दिन किसी मुसलमान ने कहा कि आप कहते हैं कि आपकी माँ काली सर्वत्र है फिर आप कभी मस्जिद क्यों नहीं आते, मंदिर में ही क्यों पूजा करते हैं? रामकृष्ण परमहंस चल दिए उठकर उस दिन, भूल गए दक्षिणेश्वर के मंदिर को, जा के 6 महीने मस्जिद में रहे और मुसलमान विधि के अनुसार उन्होंने प्रार्थना की, नमाज की। काली अगर सर्वत्र है तो मंदिर में भी है, मस्जिद में भी है और जहां कोई तीर्थ नहीं है उस रेगिस्तान में भी है। कण–कण में है, फिर हमारे भीतर भी है, सर्वत्र वही है।

भक्त का प्रेमपात्र विराट से विराट होता चला जाता है, अंततः भक्त स्वयं खो जाता, सांस–सांस में समा गए तुम। कौन हूं मैं और कौन हो अब तुम– सारे भेद–भाव गिर जाते हैं। इस विराटता की प्रतीति के बाद फिर संत थोड़–थोड़े पागल जैसे लगने लगते हैं। कारण, परमहंस और पागल दोनों मन के पार हैं, एक मन से नीचे गिर गया एक मन से ऊपर उठ गया। साधारण संसारी बीच में है, वह द्वैत की दृष्टि से चीजों को बांटकर, तोड़कर देखता है। अगर सचेतन प्रयास से हम उस अद्वैत की अवस्था में पहुंचे तो हम संत हो जाते हैं, बुद्ध पुरुष हो जाते हैं और अगर बिना किसी प्रयास के अचेतन रूप से हम अद्वैत में पहुंच गए तो विक्षिप्त हो जाते हैं। याद रखना, अद्वैत की प्रतीति विक्षिप्त भी कर सकती है और विमुक्त भी, इसलिए सचेतन प्रयास से वहां पहुंचना होगा। अमेरिकन कवि वाल्ट विटमन ने कहा है कि मैं इतना विराट हूं कि अपने से विपरीत को भी स्वयं में समा लेता हूं, इसलिए सारे विरोधाभास, कंट्राडिक्शंस मुझमें घुल–मिल जाते हैं। विज्ञान भैरव तंत्र को इसी दृष्टि से समझना।

भगवान शिव बिल्कुल विपरीत प्रकार की विधियां दे रहे हैं, कभी कुछ, कभी कुछ और, ठीक उसके विपरीत, इनमें कोई समन्वय खोजने की कोशिश न करना, प्रयोग करके देखना। तीन–चार दिन एक विधि को करना जो तुम्हें जम जाए, जो

तुम्हें भा जाए फिर उसमें डूबना, शेष 111 को भूल जाना, उनकी तुम्हें कोई जरूरत नहीं। एक विधि अपने आप में पर्याप्त है। नीत्से ने कहा है कि मैं केवल एक हंसते, नाचते, गाते ईश्वर को स्वीकार कर सकता हूं। नीत्से को पता नहीं था नृत्यमग्न नटराज का, भगवान शिव का, जो सारे विरोधाभासों को अपने में समाए हुए हैं। वे गंभीर भी हैं और हंसते, नाचते भी हैं। कृष्ण और बुद्ध दोनों का मिलन हो रहा है तंत्र में। भगवान शिव महानतम अद्वैत की, अनुभूति की अभिव्यक्ति हैं। कहते हैं भीतर और बाहर एक ही आत्मा की कल्पना करो। सामान्यतः हम केवल अपने प्रेम–पात्रों में ही आत्मा की कल्पना कर पाते हैं, शेष सबको हम जड़ पदार्थ की भांति देखते हैं।

मैंने सुना है एक लतीफा, बड़ा तेज आंधी–तूफान था, घनघोर बारिश हो रही थी, भयंकर ठण्ड के दिन थे। एक आदमी 11 बजे रात को थर–थर कांपता हुआ ठण्ड में, पानी से भीगा हुआ डबलरोटी की दुकान पर पहुंचा और कहा कि सेठ जी एक डबलरोटी दे दीजिए। दुकानदार ने कहा अरे! क्या तुम शादी–शुदा हो? वो आदमी गुस्से में थर्राकर बोला और क्या तुम समझते हो कि मेरी माँ इतने घनघोर वर्षा में मुझे डबलरोटी खरीदने भेजेगी। माँ को सर्वाधिक प्रेम होता है बच्चे से, इसलिए आत्मीयता होती है, पत्नी को उतना प्रेम नहीं हो सकता। निश्चितरूप से अगर प्रेम घना हो तो आत्मीयता होती है। ओशो अपने प्रवचनों में संबोधन करते थे, मेरे प्रिय आत्मन्। बड़े प्यारे, बड़े मधुर हैं उनके ये शब्द, सबके भीतर स्वयं को ही जान रहे हैं। हम हमेशा दोहरे मापदण्ड में, डबल स्टैण्डर्ड में जीते हैं। विभाजित मन स्वयं को अलग तर्क से और दूसरे को दूसरे तर्क से देखता है। जब दूसरा क्रोध करता है तो हम कहते हैं गलत आदमी है, बड़ा गुस्सैल है, जब हम क्रोध करते हैं हम कहते हैं, हमें तो दूसरे को सुधारने के लिए करना ही पड़ेगा, मजबूरी है, क्या करें। दुनिया में इतने बिगड़े हुए लोग हैं, नाराज होना ही पड़ता है। हमारा स्टैण्डर्ड स्वयं को, दूसरे को नापने का अलग–अलग है। इस दोहरे मापदण्ड को गिराना होगा, तब जा के दूसरे के भीतर भी आत्मीयता का बोध हो सकेगा वरना नहीं हो सकता।

मैंने सुना है एक अंग्रेज कवि के बारे में। जिंदगी भर लोग उसको थोड़ा पागल समझते रहे, विक्षिप्त मानते रहे। उसके मित्रों ने उसकी मृत्यु के बाद संस्मरण लिखे, उसके ऊपर उसकी जीवन कथा लिखी और तब उन्हें ख्याल में आया कि जिस आदमी को हम पागल समझते रहे उसके जीवन में दुख की कोई घटना नहीं है। बहुत आश्चर्यचकित थे मित्र। उसके पूरे जीवन की घटनाओं में कभी वह उदास नहीं हुआ,

कभी वह चिंतित, परेशान नहीं हुआ, कभी वह चिंतामग्न न हुआ। उसके मित्रों ने कहानी में लिखा है, अब हमें शक होता है कि वह पागल था कि हम पागल थे। उसके व्यवहार थोड़े अजीब थे। वह जूतों को भी उतार कर रखेगा तो बड़े धीरे से, धन्यवाद देकर कि तुमने मुझे काटों से बचाया, मेरे प्यारे जूते तुम्हारा बड़ा–बड़ा धन्यवाद। पानी पिएगा तो गिलास को इतने प्रेम से पकड़ेगा जैसे गिलास जीवित हो, वृक्ष से वह बात करेगा, फूलों से बात करेगा, रात छत पे लेट जाता, आकाश को देखता रहता, आकाश से बात–चीत चलती रहती। वस्तुओं के साथ भी वो ऐसे व्यवहार करता था जैसे वो जीवित व्यक्ति हों और हम जीवित व्यक्तियों के साथ भी ऐसा व्यवहार करते हैं कि जैसे वो कोई मुर्दा वस्तुएं हों।

याद रखना जो व्यक्ति एक वृक्ष से बात नहीं कर सकता, एक पत्थर से बात नहीं कर सकता, फिर मंदिर में पत्थर की मूर्ति के आगे उसकी प्रार्थनाएं झूठी ही होंगी। क्योंकि उसे कहीं जीवंतता दिखाई तो पड़ती नहीं, जिसे जीवंतता दिखाई पड़ेगी, उसे सर्वत्र दिखाई पड़ेगी। उसके मित्रों ने उसके जीवन कथा में लिखा है– अब हमें समझ में आता है वह ज्यादा जीवंत था, ज्यादा संवेदनशील था। वह पागल नहीं था, पागल हम हैं जो दुखी हैं, चिंतित हैं, परेशान हैं। कैसे पता लगाएं कि कौन पागल है। कोई परिणाम से ही सिद्ध होगा, वह कवि तो कभी उदास तक न हुआ, हमेशा बड़े आशा, उमंग और उत्साह में जिया, उसे हम कैसे पागल कह सकते हैं। निश्चितरूप से परिणाम से ही सिद्ध होगा कौन सही और कौन गलत। सामान्यतः हम सोचते हैं कि हमारे भीतर कल्पना की जो शक्ति है वह झूठी है। मैं आपसे कहना चाहता हूं नहीं, कल्पना की शक्ति तो एक वास्तविकता है और यह बाहरी वास्तविकता को बदलने की भी सामर्थ्य रखती है। जब कोई बीमारी फैलती है तो कितने ही लोग केवल कल्पना के कारण ही बीमार हो जाते हैं, भाव के कारण बीमार हो जाते हैं। वह बीमारी सच्ची बीमारी नहीं होती, अस्पताल के कर्मचारी बीमार नहीं होते जबकि सबसे ज्यादा इन्फेक्शन का एक्सपोजर तो उन्हीं को होता है। क्यों नहीं होते? उनके भीतर कहीं एक कल्पना, एक हिप्नोसिस, एक सम्मोहन बैठ गया है कि हम तो दूसरों का उपचार करते हैं, हम कैसे बीमार होंगे।

इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा– ऊर्जा की कल्पना करो, पदार्थ की नहीं, जल की नहीं वरन् प्रक्रिया की, गति की, लय की नित्य की कल्पना करो और तब तक कल्पना करते रहो जब तक कि पूरा जगत आत्मवान न हो जाए। यदि तुम धैर्यपूर्वक लगे रहे एक घंटा प्रतिदिन, करीब तीन महीने के बाद तुम इस

आभास को पाने लगोगे कि चारों तरफ का अस्तित्व जीवंत है। एक नया ही अनुभव होने लगेगा। पदार्थ खो जाएगा, मात्र अभौतिक, महासागरीय अस्तित्व बचा, केवल लहरें, केवल कंपन। जब यह अनुभव होता है तभी तुम जानते हो कि परमात्मा क्या है, ऊर्जा का महासागर है परमात्मा। वह कोई स्वर्ग पर बैठा हुआ, सिंहासन पर बैठा हुआ कोई व्यक्ति नहीं है, परमात्मा यानि सबकुछ, समग्रता, यह सारी सृजनात्मक ऊर्जा ही परमात्मा है। लेकिन हमारे सोचने का एक ढंग है, हम कहते हैं कि परमात्मा सृष्टा है, परमात्मा सृष्टी है बल्कि परमात्मा सृजनात्मक शक्ति है, स्वयं सृजन ही है वह। सृष्टा की धारणा तो बड़ी बचकानी और मुर्दा धारणा है। ईसाई कहते हैं कि ईश्वर ने 6 दिन में दुनिया को बनाया और फिर सातवें दिन उसने विश्राम किया। भारतीय धारणा ज्यादा जीवंत है। परमात्मा सृजनात्मकता है, गॉड इज क्रिएटीविटी। इस विधि को करने के लिए बेहतर होगा किसी प्राकृतिक स्थल में, कहीं बगीचे में, कहीं पर्वतों में, जंगलों में जाकर थोड़े दिन रहो और वहां जीवंतता की प्रगाढ़ धारणा करना बड़ा आसान होगा। एक बार वह आनंदपूर्ण अनुभव होने लगे फिर तुम सारे जगत में उसे कर सकोगे।

माँ ओशो प्रिया–

आओ आज की इस विधि को करने के लिए हम बाहर बगीचे में चलते हैं। प्रकृति के पास पहुंच कर हमारी कल्पना शक्ति प्रबल हो जाती है। पुराने जमाने में साधु–संन्यासी जो जंगल चले गए थे इसलिए नहीं कि संसार, घर–गृहस्थी बुरी है, बल्कि जंगल में ज्यादा भावात्मक हो पाएंगे। वृक्षों के पास जाएं महसूस करें कि वृक्ष जीवन की धड़कन से तरंगायित हैं, पत्तों–पत्तों में प्रभु के हस्ताक्षर हैं। पेड़ों के गले लग जाएं, ऊर्जा का आदान–प्रदान, प्रेम का हस्तांतरण महसूस करें। वृक्ष रिस्पोंड कर रहे हैं। केवल आपके तरफ से ही प्रेम नहीं बह रहा, उस तरफ से भी प्रत्युत्तर आ रहा है। एक–एक पत्ते को, एक–एक फूल को प्यार भरी नजर से देखें, जैसी चेतना हममें है वैसी ही चेतना उनमें हैं। पदार्थ विलीन होने लगा, जीवंतता का उदय होने लगा। कहीं जड़ता नहीं है, सब तरफ दिव्यता ओत–प्रोत है। प्रेम से एक पत्थर को उठा लो, कोमल हाथों से उसे स्पर्श करो, अपने सीने से लगा लो, पत्थर को अपना प्रेमपात्र बना लो, यह पागलपन नहीं, यही असली स्वास्थ है। धार्मिक रूप से तुम स्वस्थ हुए, स्वयं में स्थित हुए। सबकुछ कितना प्रवाहमान, जीवंत। आश्चर्य और

अहोभाव से भरो, पृथ्वी को भी जीवंत मानो। ऐसे छुओ जमीन को जैसे वह जीवंत हो। प्रेम से भर के भीतर बाहर ऊर्जा ही ऊर्जा, चैतन्यता ही चैतन्यता का एहसास करो। असीम ऊर्जा का सागर है, हम भी उसकी एक तरंग हैं बस। भीतर–बाहर सर्वत्र चेतना है।

अपने दोनों हाथ जोड़कर, साष्टांग दण्डवत कर धरती माँ को प्रणाम करो, अहोभाव से भरें, धन्यवाद से भरें। इसी माटी से हम बने, एक दिन फिर इस माटी में मिल जाना है। मिल जाओ, अभी भी हम मिले ही हुए हैं। सारे अस्तित्व के साथ एक हो जाओ, जैसे छोटा बच्चा माँ की गोद में सो जाता है। धरती माँ के साथ एक हो जाओ। सर्वत्र आत्मा है, भीतर–बाहर। कुछ भी जड़ नहीं है, सब चेतन है, सब चेतन है, सब चेतन है। जब तक भाव हो ध्यान में डूबे रहें।

धन्यवाद।

विधि–103

आरंभ में ही जानो

अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही, जानो।

सुनो आज मुल्ला नसरुद्दीन की कहानी से शुरू करते हैं। नसरुद्दीन की झगड़ालू, कर्कशा बीबी ने एक दिन गुस्से में पूछा कि जब तुम देशी दारू पीते हो, तब मुझे पारो कहके पुकारते हो, जब बियर पीते हो तो मुझे अप्सरा कहते हो, रम पीकर गुलबदन और व्हिस्की पीकर डार्लिंग कहते हो, वोदका पीकर उर्वशी और शैंपेन पीकर मुझे मेनका नाम से पुकारते हो। आज तुमने कौन सी दारू पी है जो मुझे चुड़ैल और राक्षसनी कहा? मुल्ला ने कहा माफ करो! आज मैने कोई दारू नहीं पी, आज मैं पूरे होशो–हवाश में हूं। तंत्र का यही लक्ष्य है। हमने जो कामनाओं की, विचारों की, धारणाओं की शराब पी रखी है वह उतरे, नशा उतरे और हम पूरे होशो–हवाश में आएं। ध्यान की यात्रा कठिन इसलिए लगती है कि सबसे पहले तो हमें उस नरक को फेस करना होगा, उसका साक्षात् करना होगा जो हमने बना रखा है। कामना नरक है,

दुखदायी है लेकिन नशे में हमें यह भी पता नहीं। और इसलिए ध्यान की अतर्यात्रा कठिन जान पड़ती है। निश्चित रूप से महासुख और महा आनंद की वर्षा होगी, लेकिन वह तो बाद में होगी। लेकिन उस नरक से पहले गुजरना होगा। जब पहले-पहले होश आएगा, कामनाओं का नशा उतरेगा। तो सबसे पहले तो अपनी नारकीय स्थिति का साक्षात्कार करना होगा, धीरज और धैर्य की जरूरत है साधना में।

आज के सूत्र में भगवान शिव कहते हैं पार्वती से, अपनी संपूर्ण चेतना से कामना को, जानने को आरंभ में ही जानो। कामना उठती है उसी समय उसको तुरंत पहचानो। हमारे भीतर जो कामनाएं हैं मुख्य रूप से चार प्रकार की- धन, पद, यश और ज्ञान। ये चार नशे हैं। शास्त्रों में कहा गया है धनमद, पदमद, यशमद, ज्ञान को लोगों ने मद की भांति नहीं कहा है। वह जरा सूक्ष्म नशा है। धन की शराब तो हमें समझ में आती है। जिस आदमी की जेब गरम हो उसकी चाल ही कुछ और होती है।

मैंने सुना है, सेठ चंदूलाल जनवरी की कड़कड़ाती ठण्ड में मलमल का कुर्ता पहने जा रहे थे। किसी ने पूछा, सेठ जी ठण्ड नहीं लगती। सब लोग स्वेटर पहने हैं, कोट पहने हैं। चंदूलाल ने कहा तुम्हें पता नहीं, मेरी जेब में इस समय दो लाख रुपए हैं। धन की गर्मी है, धन का नशा है, पद का नशा है। राजनेताओं को देखो, जब वे कुर्सी पर बैठे हैं, उनकी अकड़, उनका नशा, उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। यश की मद है, जिसको प्रतिष्ठा मिल गई वे एक प्रकार की बेहोशी में जी रहा है। ज्ञान का नशा और भी सूक्ष्म है, पंडित, पुरोहित, पादरियों को, फिलॉस्फर्स को, दार्शनिकों को, वैज्ञानिकों को देखना, वे ज्ञान के नशे में चूर हैं। ये चार प्रकार की कामनाओं के नशे हैं, लेकिन हमें तो पूरा नशा चढ़ जाने के बाद भी होश नहीं आता। जो लोग थोड़े-बहुत जागरूक हैं, उन्हें तब पता चलता है जब आग पूरे भड़क उठी होती है। जब क्रोध का नशा तुम पर सवार होता है और तुम क्रोध का कृत्य कर चुके होते हो, तब तुम्हें ख्याल में आता है कि अरे! यह मैं क्या कर गया। लेकिन तब कोई लाभ नहीं, अब तो मकान जल चुका क्रोध की अग्नि में।

होश तब आना चाहिए जब छोटी सी चिंगारी शुरू हुई थी, तब तो तुम जूते के तले दबाकर उसे बुझा सकते थे। लेकिन एक बार पूरे मकान में आग पकड़ ली और फिर तुम्हारा ही मकान नहीं, अड़ोस-पड़ोस के भी मकान जलेंगे। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम अकेले थोड़ी होते हो, आसपास के लोग भी अग्नि की लपट पकड़ लेते हैं। फिर फायर ब्रिगेड भी इस आग को न बुझा सकेगी। चिंगारी के रूप में तुम बड़ी आसानी से बुझा सकते थे। भगवान शिव कह रहे हैं कि हे देवी! कामना के

आरंभ में ही जागरूक हो जाओ। बड़ी अद्भुत विधि है। बीज रूप में चीजों को पकड़ो, बीज बड़ा सूक्ष्म होता है, वृक्ष बहुत विशाल हो जाता है। एक बरगद का बीज कितना छोटा सा, कोई छोटा बच्चा भी उसे दग्ध कर दे, आग में डाल दे जल जाए। लेकिन बरगद का वृक्ष एक बार अपने विराट रूप में आ गया, उसकी शाखाएं आसमान में फैल गईं, अब इसको काटने के लिए सैकड़ों लकड़हारों की जरूरत पड़ेगी। इसको उखाड़ने के लिए बड़ी–बड़ी क्रेन और बुल्डोजर की जरूरत पड़ेगी। अब इसको उखाड़ना आसान नहीं है, जमीन में गहरी उसकी जड़ें हैं। ऊपर–ऊपर से काट भी दो तो भी कुछ न होगा, फिर नए अंकुर निकल आएंगे, फिर वृक्ष बड़ा हो जाएगा, लेकिन बीज को दग्ध करना कितना आसान है। तो कामना को, मन को, वासना को बीज रूप में पकड़ो। सुनो यह गीत –

जब चाहा इंकार किया, जब चाहा इकरार किया,
देखो हमने खुद ही से कैसा अनोखा प्यार किया।
रोते दिल हंसते चेहरों को, कोई भी न देख सका,
आंसू पी लेने का वादा हां हमने हर बार किया।
कहने जैसी बात नहीं है, बात तो बिल्कुल सादा है,
जिस दिल पर कुरबान हुए उसने ही हमें बीमार किया।

हमारी सारी तकलीफ यही है। वही कामनाएं हमें दुख दे रही हैं और हम फिर–फिर उन्हीं कामनाओं में गिर रहे हैं। कौन नहीं जानता कि क्रोध दुख देता है, लेकिन तुम्हारा यह जानना किसी काम नहीं आता। फिर–फिर क्रोध के गढ्ढे में गिरते हो। कौन नहीं जानता कि ईर्ष्या में जलन है, लेकिन फिर–फिर उस आग में गिरते हो।

कहने जैसी बात नहीं है, बात तो बिल्कुल सादा है,
जिस दिल पर कुरबान हुए उसने ही हमें बीमार किया।
शीशे टूटे या दिल टूटे, फिर भी हम खामोश रहे,
जो कोई भी कर न सका वो हमने आखिरकार किया।
मेरे इन जख्मी हाथों ने, जो भी किया वह बुरा हुआ,
स्याह रात की मांग सजाई, हर दिन का सिंगार किया।

हम सब जानते हैं, जो हम कर रहे हैं उसके परिणाम बुरे आ रहे हैं, फिर भी हम जागरूक नहीं हो पाते। कारण, जब नशा पूरा चढ़ जाता है, आग पूरी लग जाती है, तब हमें होश आता है फिर हम कुछ न कर सकेंगे। तब तो हम आविष्ट हो गए, शुरूआत में ही जागो। और कारण क्या है? हम समग्र नहीं हैं, हम टोटालिटी में नहीं जी रहे हैं, हम टूटे–टूटे, खण्ड–खण्ड में हैं। हमारी सारी समस्याओं की जड़ एक है, हमारा अधूरापन। इसलिए सब चीजें बुरी होती हैं। चाहे तुम इंकार करो, चाहे तुम इकरार करो, चाहे घृणा करो, चाहे प्यार करो, सब चीजें आधी–अधूरी हैं। अगर समग्रतापूर्वक तुम अभी मुझे सुन सको तो यह सुनना ही पर्याप्त है। ओशो 35 साल तक रोज सुबह–शाम डेढ़–डेढ़ घण्टे तक प्रवचन देते रहे। इसलिए नहीं कि कोई सिद्धांत सिखाना है, सिखाना नहीं, जगाना है, होशो–हवाश में लाना है। कोई समग्रतापूर्वक अगर सुन ले तो होश की साधना हो गई। महावीर ने श्रावक बनने पर बड़ा जोर दिया है, साधु से भी ज्यादा साधक को महत्त्व दिया है। क्या करूं यह सवाल नहीं, कैसे करूं यह तंत्र की मूलभूत देशना है।

मैंने सुना है, एक जैन फकीर रिंझाई के बारे में। दूर से कोई प्रोफेसर उससे मिलने आया। रिंझाई उस समय अपने बगीचे में गढ्ढा खोद रहा था। प्रोफेसर ने पूछा कि मैं रिंझाई से मिलना चाहता हूं, रिंझाई कहां हैं? उसे पता नहीं था, वह सोच रहा था बगीचे का माली होगा। रिंझाई ने उत्तर दिया– रिंझाई सदा यहां हैं। देखते हो उत्तर, पूछा है रिंझाई कहां हैं, उसने कहा रिंझाई सदा यहां हैं, वर्तमान के इस क्षण में। वह प्रोफेसर चौंका, तो उसने कहा कि आप ही रिंझाई हैं? उसने कहा, हां। आप बगीचे में गढ्ढा खोद रहे हैं? रिंझाई ने कहा हां। उसने कहा कि आपके जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृत्य क्या है? रिंझाई ने कहा, बगीचे में गढ्ढा खोदना। प्रोफेसर थोड़ा हैरान हुआ! बगीचे में गढ्ढा खोदना! यह कौन सा धार्मिक कृत्य है? फिर वे बैठे चाय पी रहे थे। प्रोफसर ने फिर पूछा क्षमा करें, मैं फिर से पूछना चाहता हूं, आपके जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृत्य कौन सा है? रिंझाई ने कहा, चाय पीना। रिंझाई जिस समय जो कर रहा है, पूर्णता और समग्रता से कर रहा है।

कामना हमेशा भविष्य की होती है, वर्तमान में कोई कामना नहीं होती। काश, हम समग्ररूपेण कुछ कर पाएं। लेकिन अपनी कामना से लड़ना मत, दूसरी भूल जो साधु–संन्यासी करते हैं, वह कामना से लड़ने लगते हैं। कभी भी कामना से लड़ना मत, अंतर्संघर्ष मत करना। बस जागना, अवलोकन करना। इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो कहते हैं– जब कामना उठे आरंभ में ही, पहली झलक में ही, पहले

आभास नहीं कि कामना उठ रही है, अपनी संपूर्ण चेतना को, अपने प्राणों की समग्रता को उसे देखने में लगा दो। कुछ भी न करो, कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस पूर्णता से दृष्टि उस पर जमा दो, तुम्हारी दृष्टि उतनी आग्नेय हो जाएगी कि बिना किसी संघर्ष के, बिना किसी विवाद के, बिना किसी विरोध के कामना का बीज जल जाता है। समग्र प्राणों से गहरे ढंग से देखने की बात है बस और कामना दग्ध हो जाती है।

जब कोई कामना बिना किसी संघर्ष के समाप्त हो जाती है, तब वह तुम्हें इतना शक्तिशाली कर जाती है, ऊर्जा से भर जाती है, गहन होश से परिपूर्ण कर देती है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि तुम लड़ो भी तो तुम हारोगे, अगर तुम लड़े तो थकोगे, हारोगे, टूटोगे, कामना से कभी भी लड़ना मत। क्योंकि कामना की ऊर्जा तुम्हारे ही जीवन स्रोत की ऊर्जा से आ रही है। कुछ भी परिणाम हो, चाहे कामना जीते या तुम जीते, दोनों हालत में वह ऊर्जा का स्रोत निर्बल होगा किन्तु यदि कामना के आरंभ में ही वह समाप्त हो जाए बिना किसी विरोध के, बिना किसी संषर्ष के, देखने मात्र से उसके नष्ट हो जाने के पश्चात एक अद्भुत ऊर्जा तुम अपने आप में भरी हुई महसूस करोगे। कामना धुएं की तरह विलीन हो जाएगा। वह बिना किसी संघर्ष या युद्ध के, बिना किसी अंतर्हिंसा के नष्ट हो गई कामनाओं के कारण होती है। बड़ी ही प्यारी विधि है। बस इतना ही स्मरण रखना, शुरूआत में ही जागना। आओ माँ ओशो प्रिया के साथ इस विधि को करते हैं, धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

मेरे प्रिय आत्मन् नमस्कार,

शिव कहते हैं, हे पार्वती! अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के जानने के आरंभ में ही जानो। आज के ध्यान में आंख बंद करके बैठे रहना है। मन में कोई कामना चल रही हो तो न ही उसे लड़ना है, न ही उसका अनुगमन करना है। वरना आरंभ में ही जागना है। मन में कोई कामना उठे, पकड़ लो उसे आरंभ में ही। पूरे होश के साथ कामना के शुरूआत में ही उसका निर्विरोध अवलोकन करो, बीज रूप में ही उसके साक्षी बनो। आरंभ में ही, याद रखना कामना उठे उसके साथ ही, उसके पहले ही इतने चौकन्ने हो जाना है कि शुरू में ही उसका अवलोकन हो जाए। निर्विरोध अवलोकन।

है कलह उत्स पर क्षीण धार, तुम रूप नदी का देते हो,
फिर बाढ़ कभी जो आ जाती, तुम बहा सभी कुछ रोते हो।

इसलिए उत्स पर ही रोको, मत व्यर्थ कलह को जीवन दो।

अकलहं शरणम गच्छामि, भज ओशो शरणम् गच्छामि।

अब धीरे से शवासन में जाएं, कामना की शक्ति जागना बन गई, जागरण का द्वार बन गई। वासना में बहने वाली ऊर्जा चेतना की तरफ बह गई, प्रार्थना बन गई। दिशा ही बदल गई, रूपांतरण घटित हो गया, रूपांतरण ही तंत्र का लक्ष्य है। इस असीम जागरण की ऊर्जा को महसूस करते हुए असीम विराट में प्रवेश हो गया। अपने शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप में डूबें, शुद्ध, बुद्ध चैतन्य स्वरूप, सच्चिदानंद स्वरूप। जब तक भाव हो तब तक इस स्वरूप में डूबे रहें। आज का ध्यान पूरा हुआ।

हरि ओम् तत्सत्।

विधि–104

सर्वशक्तिमान में लीन

हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।

जन्म के साथ जीवन की शुरूआत तो होती है। लेकिन हमें जाना कहां है, पहुंचना कहां है, हमारी मंजिल क्या है, उसका एहसास नहीं होता। किसी शायर ने लिखा है–

आगाज तो होता है, अंजाम नहीं होता,
जब मेरी कहानी में तेरा नाम नहीं होता।
जब जुल्फ की कालिख में गुम जाए कोई राही,
बदनाम सही लेकिन गुमनाम नहीं होता।

एक और तरीका है, परमात्मा के प्रेम में जब कोई डूबता है तो वह गुमनाम भी हो जाता है। खो ही जाता है, गुम हो जाता है। कबीर साहब ने कहा है–

हेरत–हेरत हे सखी रहा कबीर हेराय।

बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाय।
बहते हुए आंसू ने आखों से कहा थमकर,
जो मय से पिघल जाए वो जाम नहीं होता,
हंस–हंस के जवां दिल के हम क्यों न चुने टुकड़े,
हर शख्स की किस्मत में ईनाम नहीं होता।

संसार के प्रेम तो, बस ईनाम नहीं, सिर्फ सजा ही है। और सजा क्या है– दिल के टुकड़े–टुकड़े हो जाते हैं। जितनी कामनाएं उतने हम खण्डित हो जाते हैं, यही बड़ी से बड़ी सजा है खण्डित हो जाना।

हंस हंस के जवां दिल के हम क्यों न चुनें टुकड़े
बहते हुए आंसू ने आंखों से कहा थमकर
जो मय से पिघल जाए वो जाम नहीं होता
आफताब डूबे या बारात लिए कश्ती
साहिल पे मगर कोई कोहराम नहीं होता
आगाज तो होता है, अंजाम नहीं होता
जब मेरी कहानी में तेरा नाम नहीं होता।

जब तक परमात्मा का नाम हमारी कहानी में न जुड़ जाए, हमारी जिंदगी की कहानी बस यूं ही रहेगी, आधी, अधूरी, अतृप्त। परमात्मा का नाम उसमें जुड़ना जरूरी है, प्रभु के प्रेम में, भक्ति में डूबना जरूरी है। हम छोटे से खण्ड हैं, जब तक उस अखण्ड को न जान लें, जब तक अंश, अंशी को न पहचान ले, तब तक तृप्ति हो भी कैसे सकती है। आज की विधि नंबर 104 में भगवान शिव कहते हैं, हे शक्ति! प्रत्येक आभास सीमित है और सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है। वह जो ओमनीपोटेंट, सर्वशक्मिान परमात्मा है, हम भी उसके हिस्से हैं। और हिस्सा कहना शब्द भी गलत है, हिस्सा कहने में ऐसा लगता है कुछ टूटे हुए खण्ड। वास्तव में हम टूटे हुए खण्ड नहीं हैं, अखण्ड रूप से एक हैं, इस अद्वैतता को जानना, इसे पहचानना ही धर्म का लक्ष्य है।

मैने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन कह रहा था कि जब भी मैं कोई काम करता हूं उसमें पूरी तरह डूब जाता हूं, बिल्कुल पूरी तरह डूब जाता हूं। किसी ने उससे कहा कि लगता

है कि आपने कभी कुआं खोदने का काम नहीं किया? एक कुआं हमारे भीतर भी है। वैसे तो बाहर का कुआं भी बड़ा प्रतीकात्मक है, बाहर के कुएं में जो जल है, आप सोचते हैं कि आपके कुएं का जल है, कि पड़ोस के कुएं में कोई दूसरा जल है। नहीं, पूरे शहर में जितने कुएं हैं सब में एक ही जलभण्डार से पानी आ रहा है, एक अंडरग्राउण्ड वाटर टेबिल है बहुत विशाल, सारी पृथ्वी का एक, सारा पानी वहीं से आ रहा है, जितने ट्यूबवेल लगे हैं सबमें वहीं से पानी आ रहा है। किन्तु ऊपर-ऊपर से हमने खण्डित कर लिया, हम कहते हैं यह हमारा कुआं, यह पड़ोसी का कुआं, यह बगल के शहर का कुआं। भीतर पानी एक ही है।

मैंने सुना है 1947 की घटना, जब भारत पाकिस्तान का बंटवारा हो रहा था। सभी नागरिकों से पूछा गया कि वे भारत में रहना चाहते हैं कि पाकिस्तान में। संयोग की बात एक पागलखाना था, ठीक सीमा पर। पागलों से पूछा गया कि तुम लोग कहां जाना चाहते हो, पाकिस्तान में कि हिन्दुस्तान में? पागलों ने कहा कि यह बताइए कितनी लंबी यात्रा करनी पड़ेगी? इन्चार्ज ने कहा कि यात्रा कहीं नहीं करनी पड़ेगी, रहोगे यहीं। बताओ पाकिस्तान में जाना है कि हिन्दुस्तान में? पागल खूब हंसने लगे, उन्होंने कहा कि पागल हम हैं कि तुम। कह रहे हो कि जाना कहीं नहीं है, पागल खाना यहीं रहेगा, तुम भी यहीं रहोगे और बताओ पाकिस्तान में जाना है कि हिन्दुस्तान में। हमने नक्शें में रेखाएं खींच लीं, हम कहते हैं कि यह चीन है, यह पाकिस्तान है, यह जापान है। क्या सचमुच में पृथ्वी पर रेखाएं खिच गईं।

पटवारी ने आपके घर का नक्शा बना दिया, यह आपकी जमीन, यह आपके पड़ोसी की जमीन, यह आपका खेत, यह पड़ोसियों का खेत, क्या सचमुच में पृथ्वी डिवाइडेड हो गई खण्डों में। सिर्फ नक्शें में रेखाएं खिंच गई हैं, वास्तव में तो सब कुछ अखण्ड है। पृथ्वी को पता ही नहीं कि पाकिस्तान और बंग्लादेश बन गए, पृथ्वी को तो भारत का भी पता नहीं है, अमेरिका और रूस का भी पता नहीं है। देश की तो छोड़ो, हम जिन्हें द्वीप और महाद्वीप कहते हैं क्या वे अलग-अलग हैं? ऊपर से दिखाई पड़ता है यह एशिया, वह है आस्ट्रेलिया। जरा गहराई से देखो समुद्र के नीचे जो जमीन है क्या वह जुड़ी हुई नहीं है? जमीन में ही कहीं-कहीं बड़े गढ्ढे थे, वहां पानी भर गया, वे महासागर बन गए। देखने में ऐसा लगने लगा कि आस्ट्रेलिया अलग है, अफ्रीका अलग है, अमेरिका अलग है। कहीं कोई अलग नहीं है, एक ही पृथ्वी है बस।

भगवान शिव कह रहे हैं, हमें जो खण्डित चीजों का आभास हो रहा है, वह हमारी इंद्रियों की कमजोरी की वजह से, वास्तव में चीजें टूटी हुई और खण्डित नहीं हैं।

जब आप खिड़की से आकाश को देखते हैं, अगर आपकी खिड़की चौकोर है तो आकाश भी चौकोर दिखाई पड़ने लगता, क्या आकाश चौकोर हो गया। गोल खिड़की से देखेंगे तो आकाश गोल दिखाई देगा। उस व्यक्ति ने जो कभी घर के बाहर आके आकाश को न देखा है, हमेशा खिड़की से ही झांक के देखा है, वह तो बड़े भ्रम में पड़ जाएगा। वह खिड़की की चौखट की आकृति को आकाश की आकृति समझेगा। लेकिन याद रखना जब हम घर के बाहर आके आकाश को देखते हैं तब भी हमने वास्तविक आकाश को नहीं देखा, अभी भी हम आंख की खिड़की के थ्रू देख रहे हैं। इन्द्रधनुष को हम देखते हैं हमें सात रंग दिखाई पड़ते, कुछ कलर ब्लाइंड लोगों को चार या पांच कलर ही दिखाई पड़ते, शायद कुछ कलाकारों को, चित्रकारों को आठ–नौ रंग दिखाई पड़ते होंगे। कुत्ते को केवल ग्रे कलर दिखाई पड़ता है, सिर्फ ब्लैक एण्ड व्हाइट की शेड्स और कोई भी रंग दिखाई नहीं पड़ता। उसके लिए जगत बिल्कुल दूसरे प्रकार का होगा, जैसा हम देख रहे हैं वैसा उसे दिखाई ही नहीं पड़ सकता। वह जगत को देख रहा है कि उसकी खिड़की, आंख की खिड़की ने जगत पर फ्रेम जड़ दी। हम जो देख रहे हैं वह भी हमारी फ्रेम है और इसलिए ही हम सब एक ही दुनिया के निवासी नहीं हैं।

हमारी मानसिक धारणाएं, हमारी फिलॉस्फी, हमारे सिद्धांत वे सब खिड़कियां बन गए हैं और चीजों को तोड़–तोड़ के देख रहे हैं। हमने सब चीजों को खण्डित और विकृत कर डाला है और इसलिए परमात्मा से हमारा वियोग हो गया। वास्तव में वियोग नहीं हुआ है, जैसा मैंने कहा हिन्दुस्तान पाकिस्तान नहीं बंट गए हैं, यह हमारा पागलपन है। ठीक ऐसे ही सचमुच में जीवात्मा और परमात्मा अलग–अलग नहीं हैं। शिव कह रहे हैं कि हे शक्ति! सब आभास सीमित हैं, हमको लग रहा है कि सीमाएं हैं। वे सीमाएं हमारी इंद्रियों की वजह से हैं, वे सत्य की सीमाएं नहीं हैं। और जैसे ही इस बात के प्रति आप जागरूक होंगे अचानक सर्वशक्तिमान में विलीन होना घटित हो जाएगा। इस विधि को समझाते हुए परमगरु ओशो ने कहा–

जब भी तुम देखो सीमाओं के पार देखो, कहीं भी रुको मत, देखते जाओ, देखते जाओ जब तक की तुम्हारा मन ही न खो जाए। जब तक तुम सारे सीमित आकार न खो बैठो। अचानक तुम अद्भुत रूप से प्रकाशमान हो उठोगे, क्योंकि पूरा अस्तित्व एक है। वह एकता ही धर्म का लक्ष्य है और अचानक मन आकार से, सीमा से, परिधि से थक जाता है। अगर तुम पार जाने के प्रयत्न में लगे रहे, पार और पार खोजते गए तो अचानक मन छूट जाता है, गिर जाता है और तुम अस्तित्व को अद्वैत की भांति, विराट की भांति देखने में सफल हो पाते हो। सबकुछ एक–दूसरे में समाहित हो रहा है,

सबकुछ एक–दूसरे में परिवर्तित हो रहा है। हे शक्ति! प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है। इसे तुम ध्यान की एक सुंदर विधि बना सकते हो। घंटे भर के लिए बैठ जाओ और इसे करके देखो। कहीं कोई सीमा मत आरोपित करो, जहां भी सीमा नजर आए उसके पार खोजने का प्रयास करो और प्रयास करते जाओ, जल्दी ही यह मन थक जाएगा क्योंकि मन असीम के साथ नहीं चल सकता, मन केवल सीमित से ही जुड़ सकता है। असीम के साथ मन का तालमेल नहीं बैठता, मन ऊब जाता है, थक जाता है; कहता है बहुत हुआ, अब बस भी करो। लेकिन तुम रुकना मत, चलते ही जाना, खोजते ही जाना, एक क्षण आएगा अचानक मन विलीन हो जाएगा और केवल चेतना ही बचेगी। कुछ क्षण में तुम्हें अखण्डता का, अद्वैत का ज्ञान होगा, वही अध्यात्म का लक्ष्य है। यह चेतना का सर्वोच्च शिखर है और मनुष्य के लिए, मन के लिए यह परमानंद है, गहनतम समाधि का क्षण है, सर्वशक्तिमान के साथ स्वयं को एक होना जानना, सर्वव्यापी के साथ एक हो जाना।

तो बाहर खण्ड–खण्ड देखना बंद करो और तभी तुम भीतर भी अखण्ड को देख पाओगे। अगर हम बाहर चीजों को तोड़कर देखते हैं, तब हम भीतर भी चीजों को तोड़कर देखने के आदी हो जाएंगे। चलो बाहर से शुरू करो और इसे शुरू करना बहुत आसान है, बहुत कठिन यह बात नहीं है। क्योंकि जब हम छोटे बच्चे थे, नए–नए जन्मे थे, तब हम अखण्ड दृष्टि से जगत को देखते थे। ख्याल रखना, छोटे बच्चे चीजों को तोड़कर नहीं देख सकते। समझो एक टेबिल रखी है, टेबिल के ऊपर टेबिल फैन रखा है, बगल में उसके पिताजी खड़े हैं, वह नवजात शिशु देख रहा है इस दृश्य को। वह अलग–अलग नहीं कर सकता कि टेबिल और टेबिल फैन और पिताजी, उसके लिए सब एक हैं। अभी उसे समझ में नहीं आता कि चीजें बटी हुई हैं। इसलिए बच्चे आंख गड़ाकर, फोकस करके नहीं देखते, उनकी नजरें फैली हुई रहती हैं। वे पूरे दृश्य को इकट्ठा देखते हैं। कोई साल भर की उमर बीतते–बीतते बच्चे आंखें को फोकस करना सीखते हैं, तब उनको समझ में आता है कि चीजें डिवाइडेड हैं। और जैसे ही बाहर की चीजें टूटी हुई नजर आने लगती हैं, भीतर भी कुछ टूट जाता है।

मैंने सुना है एक शराबी के बारे में। उससे पूछा गया कि आप कब तक शराबघर में बैठ कर शराब पीते रहते हैं? उसने कहा एक मैंने क्राइटेरिया बना लिया है, जब एक आदमी के मुझे दो आदमी दिखाई देने लगते हैं तब मैं समझ जाता हूं कि बहुत पी लिया, तब मैं उठ के घर चल देता हूं। मुझे उसकी बात बहुत अच्छी लगी। किसी ने मुझसे पूछा कि ध्यान कब तक करना चाहिए, समाधि कब तक करनी चाहिए? मैंने कहा उस शराबी से बिल्कुल उल्टी बात, जब तुम्हें दो के भीतर एक दिखाई देने लगे, जानना कि

समाधि फल गई। सर्वशक्तिमान में विलीन हो जाओ, सब एक है, दो कहीं हैं नहीं। एक ओंकार सतनाम,

धन्यवाद।

माँ ओशो प्रिया–

सभी मित्रों को नमस्कार।

आज सुबह हमने तंत्रसूत्र की विधि नंबर 104 समझी थी। जिसमें भगवान शिव कहते हैं कि हे शक्ति! प्रत्येक आभास सीमित है और असीम सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है। आओ आज संध्या इसका हम प्रयोग करते हैं।

असीमता पर डूबने के लिए आंख पर पट्टी बांधना ज्यादा ठीक होगा, अंधकार में लीन होना आसान होगा। तो आप सबसे निवेदन है, अपनी आंख में पट्टी बांध लें। रीढ़ और गर्दन सीधी रखें, बिना तनाव के जितनी सीधी होती हो, शिथिल विश्रामपूर्ण। धीमी–गहरी श्वास लें। आपके द्वारा छोड़ी गई श्वास बगल में बैठा मित्र ले रहा है, दूसरे मित्रों द्वारा छोड़ी गई श्वास आप ले रहे हैं, मनुष्यों के द्वारा छोड़ी गई श्वास पशु–पक्षी ले रहे, प्राणियों के द्वारा छोड़ी श्वास पेड़–पौधे ले रहे, पेड़–पौधों के द्वारा छोड़ी श्वास हम ले रहे। इस विराटता की अनुभूति में डूबें। श्वास लेने वाले भिन्न–भिन्न, वायुमण्डल एक ही है। एक विराट वायुमण्डल, श्वास लेने वाले खरबों–खरबों प्राणी, पेड़–पौधे, कीड़े–मकोड़े। सारी पृथ्वी के प्राणियों को, जीव–जंतुओं का जीवन इस एक वायुमण्डल पर ही आधारित है। श्वास के इस प्रयोग के माध्यम से अब भाव करें एक सर्वव्यापी चेतना है, सर्वशक्तिमान। हमारी इंडिविजुअल कांशसनैस, हमारी निजी चेतना उस विराट चेतना का ही हिस्सा है। जैसे वायुमण्डल से श्वास आ–जा रही, ठीक ऐसे ही उस काज्मिक कांशसनैस से, उस ब्रह्माण्डीय चेतना से हमारे भीतर चैतन्यता आ–जा रही है। आराम से लेट जाएं, छोड़ दें शरीर को बिल्कुल शिथिल, रिलैक्स कंपलीटली, उस ब्रह्म चैतन्य में विश्राम। छोड़ दें मैं का भाव, बस वही है, वही है, वही है। जैसे मेरे कुएं के भीतर का जल विराट अण्डरग्राउण्ड टेबिल का भूमिगत जलभण्डार का हिस्सा है, ठीक वैसे ही मेरी चेतना है। ब्रह्म चैतन्य का हिस्सा। मैं पृथक नहीं हूं, अलग नहीं हूं। कहते हैं भगवान शिव हे देवी, हे शक्ति! प्रत्येक आभास सीमित है और सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है। विलीन हो जाएं, खो जाएं, मिट जाएं, विराट के संग एक हो जाएं।

धन्यवाद।

विधि-105

सर्वव्यापी आत्मा

सत्य में रूप अविभक्त हैं। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा रूप अविभक्त हैं। दोनों को इसी चेतना से निर्मित जानो।

मुझमें नहीं रहा अब जुल्म सहने का हौसला,
पता नहीं इसे कहूं मैं बुरा या भला? कौन करेगा फैसला?
हरेक नए जख्म पे अब रूह बिलख उठती है,
होंठ अगर हंसें भी तो आंख छलक पड़ती है।
सुबह से शाम तक सिर्फ औरों के लिए कुछ करना है,
जिसमें अपना नक्श नहीं, उस तस्वीर में रंग भरना है।
आजकल दिल में रह रह के ख्याल आता है,
यही है जिंदगी तो मौत किसे कहा जाता है?
आइने के सौ टुकड़े करके हमने देखे हैं,

एक में भी तन्हा थे और सौ में भी अकेले हैं।
प्यार एक ख्वाब था ख्वाब की ताबीर न पूछो
क्या मिला क्या लुटा, रूह की जागीर न पूछो।
जिंदगी बस एक बिखरता हुआ दर्दाना है
ऐसा लगता है कि खत्म पर अफसाना है।
मुझमें नहीं रहा जिंदगी जीने का हौसला
पता नहीं इसे कहूं मैं बुरा या भला? कौन करेगा फैसला?

हमारा मन निरंतर फैसला कर रहा है, जजमेंट्स दे रहा है, चीजों को अच्छे और बुरे में विभाजित कर रहा है। भगवान शिव कहते हैं आज की विधि में कि हे पार्वती! सत्य में रूप अवि हैं, कुछ भी डिवाइडेड नहीं है, सब चीजें अविभाजित हैं। लेकिन हम चीजों को तोड़–तोड़कर देखते हैं। आपने प्रिज्म देखा, धूप की किरण उसमें से गुजर के सात खण्डों में टूट जाती है। है एक और सात दिखाई पड़ने लगती हैं। ठीक ऐसा ही यह इन्द्रधनुषीय मायाजाल है जगत का। है एक परमात्मा, लेकिन हमारी दृष्टि की वजह से, हमारी इंद्रियों की सीमाओं की वजह से वह विभाजन होकर दिखाई पड़ता है। हमारा मन प्रिज्म की तरह काम करता है। भगवान शिव कहते हैं कि सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा रूप अविभक्त हैं, दोनों को एक ही चेतना से निर्मित जानो। योगी कहते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा का वियोग हो गया और उनको मिलाने का नाम है योग है।

विज्ञान भैरव तंत्र की दृष्टि योग से भिन्न है। योग ने यह तो मान ही लिया कि वियोग हो गया है। तंत्र कहता है वियोग हो नहीं गया है, तुम केवल सो गए हो। तुम दिल्ली में सो जाओ और सपना देखो मुंबई पहुंच गए और सोचो कि मुंबई से कैसे वापस लौटें, कौन सी प्लेन या ट्रेन पकड़ें, कि बस से आएं, कि घुड़सवारी करके आएं, कि पैदल आएं, किस दिशा में है दिल्ली। बड़ी मुश्किल हो जाएगी तुम्हारे प्रश्नों का जबाब देना। वास्तव में तुम मुंबई गए नहीं हो और लौट के आने के लिए न घोड़े की जरूरत है, न प्लेन की, न कार की। जरूरत इतनी है कि तुम्हें झकझोर के जगा दिया जाए बस और तुम पाओगे कि तुम दिल्ली में ही हो। ठीक इसी प्रकार आत्मा कभी परमात्मा से अलग हुई ही नहीं, सिर्फ मूर्छित हो गई, सो गई और सोने में बहुत दूर निकल गई। ये दूर निकलना वास्तव में नहीं हुआ है, केवल ख्याल मात्र है बस। सचमुच में वियोग हुआ नहीं और इसलिए योग की बात ही बड़ी बचकानी है।

तंत्र कहता है बस जागो, अपने आप को अविभक्त जानोगे, अविभक्त हो।

लेकिन हमारा मन चीजों को खण्ड–खण्ड करके देखता है। हम खण्डित चीजों को देखने की आदत की वजह से दुख चिंता में डूब जाते हैं। इससे जागना होगा, सूर्योदय और सूर्यास्त एक ही घटना के हिस्से हैं, दिन और काल एक ही कालचक्र के अंग हैं, जन्म और मृत्यु एक ही घटना के दो छोर हैं। स्त्री और पुरुष जैसे एक ही डण्डे के दो छोर हों, विपरीत नहीं। स्वास्थ और बीमारी, अच्छाई और बुराई, राम और रावण, शुभ और अशुभ, नैतिक और अनैतिक सब एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं। उठती लहर और गिरती लहर एक ही जल से निर्मित है। अनंत–अनंत लहरें हैं सागर में, सबमें एक ही जल है इस बात को जानो, जागो और पहचानो।

मैंने सुना है एक चुटकुला– एक ज्योतिषी, एक सेठ जी, एक चोर और एक थानेदार कार दुर्घटना में इकट्ठे मरे। समय के पहले मर गए, ऊपर पहुंचे। चंद्रगुप्त ने हिसाब–किताब देखा कि अभी तो आप लोगों को दस–दस साल और जिंदा रहना है, वापस जमीन पर जाइए। भगवान ने उनसे पूछा कि कहां जाना चाहोगे? तो ज्योतिषी, पंडितजी ने कहा कि प्रभु किसी बड़े शहर के, बड़े मंदिर में मुझे भेज दीजिए। बस आपके गुणगान करूंगा, प्रार्थना करूंगा और ज्योतिषी का काम करूंगा। सेठ से पूछा कि तुम कहां जाना चाहते हो? उसने कहा कि जहां यह ज्योतिषी को भेज रहे हैं, उसी शहर में खूब सारी धन–दौलत देके मुझे भेज दीजिए। इस ज्योतिषी से ही पूछ के मैं व्यापार अपना चलाता था, इन्हीं के निर्देश में चल के इतना फायदा होता था, मुनाफा होता था। फिर मैं ही दान देके मंदिर बनवाता हूं। ज्योतिषी और हमारा काम आपस में जुड़ा हुआ है। चोर से पूछा तुम कहां जाना चाहते हो? वो भगवान के कान के पास पहुंचकर फुसफुसाकर बोला, बताइएगा नहीं, जहां इस सेठ को भेज रहे हैं वहीं मुझे भी भेज दीजिए, मेरा धंधा भी इसी से जुड़ा हुआ है। पुलिस वाले से पूछा कि थानेदार साहब आपकी क्या मर्जी है? थानेदार ने कहा, जहां ये तीनों जा रहे हैं वहीं मेरा भी सारा काम है। ये चोर जहां जाएगा वहीं मुझे नौकरी मिलेगी। हमें ऊपर से देखने में लगता है कि चोर अन्याय कर रहा है, थानेदार कानून और न्याय की रक्षा कर रहा है लेकिन आपस में संयुक्त हैं, जुड़े हुए हैं। ऊपर से देखने में लग रहा है हमें कि सेठ और चोर अलग–अलग हैं। नहीं, कोई भी आदमी खूब धन इकट्ठा कर लेगा तो निश्चितरूप से कोई न कोई उसकी चोरी करेगा।

चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं, सब चीजें संयुक्त हैं, लेकिन हमारा मन इसको तोड़–तोड़ के देखता है। और इसीलिए हमें सहअस्तित्व की बात समझ में नहीं आती। अनेक लहरें दिखाई देती हैं, एक सागर देखने से हम चूक जाते हैं, क्षुद्र पर

हमारी नजर है और विराट परमात्मा से हमारा नाता टूट गया।

इस विधि को समझाते हुए परमगुरू ओशो कहते हैं –

तुम इस जगत के एक अभिन्न अंग हो। तुम बाहरी नहीं हो, अजनबी नहीं हो, कोई परदेशी नहीं हो, तुम एक अंतरंग, अभिन्न अंग हो। और जगत तुम्हें खो नहीं सकता, क्योंकि यदि वह तुम्हें खोता है तो वह स्वयं को खो देगा। वो रूप विभक्त नहीं हैं, अविभक्त हैं, वे एक ही हैं, केवल आभास की सीमाएं और परिधियां महसूस होती हैं। यदि तुम इस पर मनन करो, इस पर प्रवेश करो तो यह एक अनुभूति बन सकती है। यह अनुभूति बन जाती है, कोई सिद्धांत नहीं, कोई विचार नहीं, बल्कि एक अनुभूति कि हां मैं जगत के साथ एक हूं और सारा जगत मेरे साथ एक है। शिव कहते हैं, सत्य में रूप अविभक्त हैं, सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त है, दोनों को इसी चेतना से निर्मित जानो। न केवल यह अनुभव करो कि तुम इस चेतना से बने हो, बल्कि अपने आसपास के हर चीज को इसी चेतना से निर्मित जानो। क्योंकि यह अनुभव तो बड़ा सरल है कि तुम चैतन्य से निर्मित हो, इसमें तुम्हारे अहंकार का भाव छिप सकता है, अहंकार को इसमें बड़ी तृप्ति मिल सकती है। लेकिन तुम जब अनुभव करोगे कि दूसरे सब लोगों में भी वही चैतन्य है, तब यह एक विनम्रता बन जाएगी। सब कुछ दिव्य है, तुम्हारा मन, अहंकारी मन इसे स्वीकार करने को राजी न होगा। अगर सब कुछ दिव्य है, तब तुम्हें भी नम्र होना होगा, फिर तुम्हारे कुछ विशिष्ट होने का, श्रेष्ठ होने का प्रश्न नहीं उठता, फिर सारा अस्तित्व भगवत्ता से ओत–प्रोत हो जाएगा।

जहां भी तुम देखते हो दिव्यता ही नजर आती है। देखने वाला द्रष्टा और देखा गया दृश्य दोनों ही दिव्य हैं, दोनों भागवत स्वरूप हैं क्योंकि रूप विभक्त नहीं है। सब रूपों के पीछे अरूप छिपा है, सब आकारों में निराकार परमात्मा है। बड़ी अद्भुत है यह विधि। अपने चारों तरफ जीवन को गौर से देखना और तुम पाओगे यह बौद्धिक समझ धीरे–धीरे अनुभूति में परिवर्तित होने लगी। और न केवल हम आज के वर्तमान जगत से जुड़े हैं, पूरा अतीत हमसे जुड़ा हुआ है। जरा स्मरण करो, तुम्हारे माता–पिता न हुए होते अगर, तुम्हारे दादा–दादी और नाना–नानी न हुए होते, पूर्वजों की शृंखला बंदरों से लेकर आज तक की न हुई होती... इस पूरी शृंखला में एक भी लिंक अगर मिसिंग होता तो तुम आज नहीं हो सकते थे। पीछे करोड़ों साल में जो हुआ है, उस सबका योगदान है, आज तुम्हारे होने में। वैज्ञानिक कहते हैं कि दस अरब साल पहले सूरज का निर्माण हुआ था और चार अरब वर्ष पहले पृथ्वी सूरज से टूटकर अलग हुई थी। जरा सोचो, दस अरब साल पहले और चार अरब

साल पहले ये घटनाएं न घटी होतीं तो हम और तुम आज यहां नहीं हो सकते थे। इसका अर्थ हुआ हमारे होने में इतनी पुरानी घटनाओं का भी योगदान है।

तो न केवल हम वर्तमान में संयुक्त हैं, पूरा अतीत हममें प्रगट हो रहा है और जब यह बात समझ आएगी, एक बात और नजर आएगी, सारा भविष्य भी हमसे आने को है, वह भी हमसे जुड़ा हुआ है, हम सारे जगत के साथ एक हैं। जीसस क्राइस्ट ने यही कहा था कि मैं और मेरा पिता परमात्मा एक ही हैं। लेकिन लोगों ने नासमझी कर दी, वे समझे कि यह अहंकार की घोषणा कर रहे हैं कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं। जीसस कह रहे थे सभी ईश्वर के पुत्र हैं, उसके अतिरिक्त यहां कोई और है ही नहीं। ईसाई भी भूल करते हैं, वे समझते हैं कि जीसस कह रहे हैं कि इकलौते पुत्र बस वही हैं। जो भूल दुश्मनों ने की वही अनुयायिओं ने की, थोड़ा जागो, चेतो यहां ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है नहीं। अहं ब्रह्मस्मि, तत्वमसि श्वेतकेतु।

ओम नमः शिवाय।

माँ ओशो प्रिया–

प्यारे मित्रो, आज सुबह हमने तंत्रसूत्र की विधि नंबर 105 समझी। आओ उसका हम प्रयोग करते हैं। व्यापकता के इस प्रयोग में डूबने के लिए अंधकार में या आंख पर पट्टी बांधकर डूबना ज्यादा आसान होगा। तो मैं निवेदन करूंगी आप सब अपनी आंख पर पट्टी बांध लें। रीढ़ और गर्दन सीधी, बिना तनाव की जितनी सीधी होती है, विश्रामपूर्ण शिथिल, धीमी–गहरी श्वास। अब मेरे साथ कल्पना करें। कल्पना करें एक पत्ते की। डंठल के द्वारा प्रशाखा से जुड़ा हुआ है। यह पत्ता अगर सोच सके तो सोचता होगा कि मैं सब पत्तों से भिन्न अलग एक पत्ता हूं, लेकिन जरा गौर से भीतर देखें, सब शाखाएं एक तने से जुड़ी हैं और वृक्ष का तना जड़ों से रसधार पाता है। थोड़ा और गहरे चलें, जमीन पर केवल एक ही पेड़ नहीं है, अनगिनत पेड़ ही पेड़ हैं। सारे जंगलों के सारे वृक्ष एक ही भूमि से भोजन पाते, एक ही वायुमण्डल से श्वास लेते, एक ही सूरज की किरणों से भोजन पकाते, एक ही वर्षा के बादल सबके लिए जल सींचते। क्या ये सारे पेड़ अलग–अलग कहे जा सकते हैं?

सबका जीवन एक धरती पर आधारित है, ऊपर–ऊपर से देखने में लगते कि पत्ते अलग–अलग, वृक्ष अलग–अलग, थोड़े गहरे जाओ सब एक हैं। न केवल वर्तमान के पेड़–पौधे, अतीत में जो वृक्ष हुए, जो मिट्टी में मिल गए, खाद बन गए वे भी वर्तमान के वृक्षों में मौजूद हैं। अब भाव करें ठीक इसी प्रकार अपनी चेतना की।

भगवान शिव कहते हैं हे पार्वती सत्य में रूप अविभक्त हैं, अनडिवाइडेड, कहीं कोई विभाजन नहीं है। सर्वव्यापी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक ही है। जीवात्मा और परमात्मा भिन्न–भिन्न नहीं है, हमारी इंडिविजुअल कांशेसनैन पत्तों की तरह हैं। हम अलग–अलग नहीं हैं, हम पृथ्वी के साथ जुड़ें हैं, हम चांद–सूरज से जुड़े हैं, हम हवाओं–बादलों से जुड़े हैं। हमारे रूप अविभक्त हैं, इसी भाव दशा में लीन होकर विश्रामपूर्वक लेट जाएं, रिलैक्स। अपने आप को पत्ते की भांति सोचेंगे अलग तो चिंताएं होंगी, अपने आप को पृथ्वी की भांति, विराट की भांति ख्याल करेंगे तो निश्चिंत और विश्राम में डूबेंगे। विश्राम, विश्राम, परमविश्राम। जब तक भाव हो ध्यान में डूबे रहें, अपनी आत्मा को सर्वात्मा के साथ एक जानें। हरि ओम तत्सत्।

धन्यवाद।

विधि-106

सबकी चेतना अपनी है

**हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।
अतः आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।**

यह घटना उन दिनों की है जब अरब के देशों में बड़ी दरिद्रता थी। रेगिस्तानी इलाकों में पीने के लिए पानी भी नसीब न होता था। एक यूरोप का पर्यटक अरब घूमने आया। वहां के कुछ लोगों से उसकी गहन दोस्ती हो गई और अपने साथ उन्हें यूरोप के देश घुमाने ले गया। पहली बार अरब के वे शेख यूरोप के किसी होटल में रुके। बाथरूम में पानी का नल देख के वे बहुत हैरान हुए, टोंटी में से पानी निकल रहा। उनके लिए तो किसी चमत्कार से कम न था। अरब के रेगिस्तान में तो बूंद-बूंद पानी के लिए तरसते थे। फिर दो दिन बाद उस होटल से जाने का समय आया। उनका मेजबान तो नीचे कार में जाकर बैठा है, सारा सामान रखा जा चुका है गाड़ी में। वह इंतजार कर रहा है कि वे लोग आएं लेकिन वे कमरे से बाहर ही नहीं निकल रहे। वह हैरान हुआ कि

आखिर कर क्या रहे हैं। गया, देखा उसने बाथरूम में वे लोग नल की टोंटी खोलने की कोशिश कर रहे हैं। उनसे पूछा क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा इन टोंटियों को हम अरब ले जाएंगे, ये तो अद्भुत चमत्कार हैं। वहां जाके हम पानी ही पानी लोगों के लिए देंगे पीने के लिए। अरब के शेख को ख्याल भी नहीं आ सकता कि सिर्फ टोंटी से पानी नहीं आ रहा, टोंटी के पीछे एक पूरा पाइप लाइन का सिस्टम है लंबा–चौड़ा। पूरे शहर के लिए पानी की एक टंकी है, उस टंकी में कहीं ट्यूबेल से पानी आ रहा है। नीचे जमीन के नीचे एक अण्डरग्राउण्ड वाटर टेबिल है, वहां से जुड़ी हुई है यह नल की टोंटी। ठीक ऐसे ही हमारी चेतना है। प्रगट हो रही है इस शरीर और मन के माध्यम से किन्तु भीतर इसका विस्तार अनंत ब्रह्मण्ड तक है।

जो छोटी सी चैतन्यता हममें झलक रही है, जो छोटा सा प्रेम, छोटी सी जागरूकता, थोड़ा सा होश, थोड़ी सी समझ, थोड़ी सी बुद्धिमत्ता, यह काज्मिक कांशसनेस से आ रही है। लेकिन हम उस विराट को भूल गए, उस अरब के शेख की भांति, हम सोचने लगे कि यह टोंटी ही सबकुछ है और यहां से अहंकार की शुरूआत होती है। हम स्वयं को जगत से भिन्न मानने लगते हैं और फिर हमारे दुख की कहानी शुरू होती है। तंत्र और योग और भक्त मानते हैं कि सारा जगत एक है, अद्वैत सत्य है। पृथकता हमारी भ्रांति है, हमारा भ्रम है। पृथकता जैसी कोई चीज है नहीं। एक छोटा सा पत्ता भी पूरी पृथ्वी से जुड़ा हुआ है और पृथ्वी के माध्यम से सूरज, चांद, तारों से, सारे अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। यहां कोई भी पृथक नहीं है। जैसे ही इस अभिन्नता का बोध होता है, हमारी सारी चिंताएं मिट जाती हैं। आज की विधि नंबर 106 में भगवान शिव कहते हैं पार्वती से, हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो, अतः आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ। हो जाओ कहना भी ठीक नहीं, हम हैं ही, हम भिन्न हैं कहां। वैज्ञानिकों ने खोजा कि हम आक्सीजन लेते हैं और कार्बन–डाइआक्साइड श्वास में छोड़ते हैं, पेड़–पौधे कार्बन–डाइक्साइड लेते हैं और आक्सीजन छोड़ते हैं। क्या हम पेड़–पौधों के बिना एक क्षण भी जिंदा रह सकते हैं, क्या पेड़–पौधे हमारे बिना जीवित हो सकते हैं?

ऊपर से देखने में हम कितने भिन्न, किन्तु हमारा प्राणतत्व आपस में जुड़ा हुआ है। हम सारे अस्तित्व के एक अभिन्न हिस्से हैं, जब इस अद्वैत की अनुभूति में कोई डूबता है तो आत्मचिंता समाप्त हो जाती है। आत्मचिंता पैदा होती है स्वयं को पृथक मानने से। हां, गहरी नींद में भी हम उसी अवस्था में पहुंच जाते हैं जहां हम सारे जगत के साथ जुड़े हुए हो जाते हैं, इसलिए तो सुबह उठकर इतनी ताजगी और स्फूर्ति और एनर्जी का एहसास होता है। समाधि में जाना उसी सुषुप्ति वाली अवस्था में जागृत रूप

से जाना है। सुषुप्ति और समाधि में ज्यादा भेद नहीं, जगह एक ही है। सुषुप्ति में हम बेहोश पहुंचते हैं, समाधि में हम होशपूर्वक उसी जगह पहुंचते हैं। जब बेहोशी में नींद में पहुंचकर भी इतना आनंद घटित होता है तो होशपूर्वक पहुंचने पर और कितना आनंद घटित न होगा जरा कल्पना तो करो। अहंकार तोड़ने वाला तत्व है, धर्म जोड़ने वाला तत्व है। यह अहंकार फिर क्यों पैदा होता है? इसको भी थोड़ा समझना, इसकी भी जरूरत है। प्रकृति में जो कुछ भी है वह अनावश्यक नहीं है, सब अनिवार्य है। जैसे बीज के ऊपर एक कड़ा कवच होता है, वह बीज की रक्षा के लिए। हां, भूमि को उचित भूमि मिल जाए, गीली जमीन मिल जाए, पानी मिल जाए फिर यह खोल गल जाएगी और बीज के भीतर से अंकुर निकल आएगा, वृक्ष बन जाएगा।

मुर्गी का अण्डा आपने देखा, ऊपर कड़ी सफेद कवच रहती है, वह भीतर के जीव का पालन–पोषण करती है, उसकी रक्षा करती है, सुरक्षा करती है। फिर एक दिन भीतर मुर्गी का चूजा तैयार हो जाता है, तब अण्डे की कवच टूट जाती और चूजा बाहर हो जाता, फिर उसका स्वतंत्र जीवन आरंभ हो जाता। इस कवच का एक दिन तक का रहना जरूरी है, इसके बिना वह चूजा पैदा ही न हो सकेगा। लेकिन एक दिन इसका मिट जाना भी जरूरी है, टूट जाना भी जरूरी है। अगर यह खोल टूटने से इंकार कर दे तब तो मुर्गी का बच्चा कभी पैदा ही नहीं हो पाएगा, वह तो भीतर ही उसके प्राणांत हो जाएंगे। अगर बीज की खोल गलने से इंकार कर दे, तब तो कभी अंकुर निकल न पाएगा, वृक्ष कभी हो न पाएगा। ठीक ऐसे ही समझना हमारी स्थिति, अहंकार का कवच हमारी रक्षा के लिए है एक सीमा तक जरूरी, एक परिपक्वता के बाद, एक मेच्योरिटी के बाद इसका टूट जाना, गल जाना जरूरी है। उसी को मैं स्प्रिच्युअल मेच्योरिटी, आध्यात्मिक परिपक्वता कहता हूं। हर बच्चे के भीतर अहंकार का जन्मना जरूरी है, उसके बिना वह अपने पैरों पे खड़ा न हो पाएगा, उसका दूसरों से टूट जाना जरूरी है, वह स्वयं के होने की घोषणा करे, फिर इस अहंकार के दौर से वह गुजरे। यह जिंदगी एक पाठशाला है, ये दुख उसे जगाएंगे, चेताएंगे, धीरे–धीरे उसके अंदर प्रज्ञा विकसित होगी कि मैं अहंकार की वजह से दुख झेल रहा हूं और तब अहंकार गलना शुरू होगा, तब जाके आदमी अध्यात्म में प्रवेश करता है। तो याद रखना, अहंकार भी अनावश्यक नहीं है, वह भी हमारी विकास प्रक्रिया का एक हिस्सा है। पहले हम टूटें जगत से और फिर वापस एक हो जाएं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की प्रेमिका ने 6 साल से तंग आकर एक दिन उससे कहा कि मुल्ला तुम तो एकदम जानवर हो, जानवर। प्रेमिका के मुंह से अपशब्द सुनकर मुल्ला उदास, चिंतित बैठ गया, अपना सिर खुजाने लगा। प्रेमिका मुस्कुराई

और उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं मैं जानवरों से कितना प्रेम करती हूं। मुल्ला थोड़ा रिलैक्स हुआ और उसकी प्रेमिका ने कहा कि असल में तू ही मेरी जान है और तू ही मेरा वर है इसीलिए मैंने तुझे जानवर कहा। जब हम किसी से प्रेम करते हैं, हमें उसमें जान दिखाई देने लगती है, जान यानि चैतन्यता, जीवंतता। काश, हम सारे जगत के प्रेम में डूब जाएं, तब सारा जगत हमारे लिए प्राणवान हो जाता है, जीवंतता से भर जाता है। ध्यान में सारे जगत के प्रति हम अपने अहंकार को विसर्जित कर देते हैं, प्रेम में एक व्यक्ति के प्रति विसर्जन होता है, इसलिए प्रेम और ध्यान एक–दूसरे के बड़े सहयोगी हैं। प्रेम पहली झलक देता है ध्यान की। एक व्यक्ति के प्रति भी अगर हम अपने अहंकार को छोड़ पाएं, आत्मचिंता को मिटा पाएं, दूसरा हमारे लिए हमसे भी ज्यादा महत्वपूर्ण जब हो गया तब हमारा अहंकार छूट जाता है। प्रेम में यह घटना घटती है। थोड़ी देर के लिए अद्वैत घटित होता प्रेमी और प्रेमिका के बीच, दो घनिष्ठ मित्रों के बीच अहंकार का संघर्ष समाप्त होता है, आनंद फलित होता है, शांति मिलती है, कितनी प्रफुल्लता आ जाती है।

प्रेम एक सबक है। काश, इसी को हम एक विराट रूप दे पाएं, सारे अस्तित्व के प्रति मैत्रीभाव से भर पाएं तब कैसा जादू न हो जाएगा, तब तो हमारा अहंकार सदा–सदा के लिए विलीन हो जाएगा। इसलिए प्रेम को मैं एक सबक कहता हूं, एक अनिवार्य सबक ध्यान और समाधि के लिए। प्रेम और ध्यान एक–दूसरे के विपरीत नहीं हैं, एक–दूसरे के सहयोगी हैं। ध्यान प्रेम का ही एक बड़ा रूप है। संतों ने कहा है प्रकृति और पुरुष का मिलन समाधि है, वह भी एक बहुत गहन संभोग है, जहां व्यक्ति समष्टि में खो जाता है। लेकिन शुरूआत करना किसी प्रकृति के दृश्य से, वृक्ष से, चट्टान से, नदी से। क्योंकि आदमियों के साथ हमारा अहंकार जल्दी नहीं गलता, दूसरे को देखते ही मैं भाव उत्पन्न हो जाता है। जरा सोचें आप एक सुनसान सड़क से जा रहे हैं, गीत गुनगुनाते, प्रसन्नचित्त अचानक एक गली से एक आदमी आता है उस सड़क पर, उसको देखते ही आप तनावग्रस्त हो जाते हैं, आपका गीत बंद हो जाता है, आपकी चाल बदल जाती है, आपकी आंखे बदल जाती हैं।

दूसरे की उपस्थिति स्वयं के होने के बोध से भरती है, अहंकार आ जाता है। आप अपने बाथरूम में आइने के सामने मुंह बिचका रहे हैं छोटे बच्चे की भांति, गीत गुनगुना रहे हैं, सभी लोग बाथरूम सिंगर होते हैं। अचानक आपको पता चले कि दरवाजे की संधि में से कोई झांक रहा है आप तुरंत बदल जाएंगे। मुंह बिचकाना बंद हो जाएगा, गीत गुनगुनाना बंद हो जाएगा, क्या हुआ? अहंकार आ गया। इसलिए मैं कहता हूं इस प्रयोग को करने के लिए बेहतर हो प्रकृति के साथ करना, वृक्षों के साथ

करना, पशु–पक्षी के साथ करना, जब उसमें तुम सफल हो जाओ अपने अहंकार को गलाने में क्योंकि वह आसान है। फिर करना अपने प्रियजनों के साथ, पति–पत्नी के साथ, प्रेमी–प्रेमिका के साथ, मित्रों के साथ, परिवार जनों के साथ, जब वहां पर तुम सफल हो जाओ फिर शुरू करना अजनबियों के साथ क्योंकि वह सर्वाधिक कठिन है और अंततः सारे अस्तित्व के साथ इस प्रयोग को करना। और तब तुम समझ पाओगे भगवान शिव क्या कह रहे हैं, अद्भुत सूत्र दे रहे हैं, आत्मचिंता को छोड़ो।

इसलिए धर्मों ने सेवा और करूणा पे बड़ा जोर दिया है। क्योंकि सेवा और करुणा में मुझसे ज्यादा महत्वपूर्ण दूसरा हो जाता है, तब आत्मचिंता छूट जाती है, दूसरे की फिकर हो जाती है। इसलिए सेवा और करुणा अहंकार को गलाने के बड़े प्यारे उपाय हैं। किन्तु आदमी बड़े अद्भुत हैं उन्होंने सेवा और करुणा को भी अहंकार का हिस्सा बना लिया। वे घोषणा करते हैं कि मैने इतनी करुणा की, मैंने इतनी सेवा की, इतना दान दिया। यह तो मामला ही गलत हो गया औषधि को उन्होंने जहर बना लिया। यह अहंकार पुष्ट करने के लिए न था, स्वर्ग कमाने के लिए न था, ये तो पुण्य के सिक्के इकट्ठे करने लगे, इन्होंने दान का भी भण्डार कर लिया। ये पहले कहते थे कि बैंक बैलेंस में इतना धन है मेरे पास, अब ये कहते हैं कि हमने इतना दान कर दिया। गुणा–भाग अभी भी जारी है पहले के समान, कुछ फर्क न पड़ा। नहीं, दान का, करुणा का, सेवा का महत्व अहंकार रहित हो जाने में है।

एक और आखिरी बात फिर हम प्रयोग में डूबेंगे। ईश्वर से भी ज्यादा महत्वपूर्ण धर्म का मूलतत्त्व अहंकार रहित हो जाना है। इसलिए जैन धर्म और बौद्ध धर्म और जापान का झेन धर्म और चीन का ताओवादी धर्म ईश्वर विहीन धर्म है, किन्तु अहंकार रहितता की महत्ता कम नहीं होती। ईश्वर के बिना धर्म हो सकता है लेकिन अहंकार के साथ धर्म नहीं हो सकता। इसका अर्थ हुआ अहंकार रहित होना ईश्वर से भी, प्रार्थना से भी, स्वर्ग और नर्क की मान्यता से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। तुम किसी धर्मग्रंथ को मानो कि न मानो, तुम किसी मंदिर–मस्जिद जाओ कि न जाओ, तुम सारे अस्तित्व के प्रेम में डूब जाओ यह ज्यादा महत्वपूर्ण है, तब सारा अस्तित्व ही तुम्हारे लिए मंदिर हो जाता है। इस प्रयोग को करने के लिए हम बाहर बगीचे में चलेंगे और चार स्टेप में करेंगे। उसको समझ लें फिर हम बाहर जाके करेंगे। शुरूआत करेंगे हम किसी प्रकृति के दृश्य से, आकाश से, सूरज से, रात के समय में चांद–सितारों से। किसी वृक्ष के पास चले जाना, उसे अपने आलिंगन में ले लेना, लिपट जाना एक व्यक्ति की भांति, उसके भीतर चैतन्यता को, उसके प्राणतत्व को महसूस करना और तुम पाओगे वृक्ष भी

रिस्पांस देने लगा। फिर अपने किसी मित्र के पास जाना, हाथ पकड़ के, आंख बंद करके चुपचाप खड़े हो जाना। इसके बाद फिर किसी अजनबी के पास जाकर उसी भाव में डूबना और तब चुपचाप आराम से बैठ जाना। और आंख बंद करके विराट अस्तित्व के चरणों में अपने आप को समर्पित कर देना। सारे जगत की चेतना को अपनी ही चेतना जानो, आत्मचिंता को छोड़ परमानंद में विलीन हो जाओ। तो इस प्रयोग को हम बाहर चल के करेंगे। धन्यवाद।

विधि–107

हर प्राणी में चेतना है

यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है।

महाकवि बच्चन ने लिखा है–

जितनी दिल की गहराई हो, उतना गहरा है प्याला;
जितनी दिल की मादकता हो, उतनी मादक है हाला।
जितनी उर की भावुकता हो, उतना सुंदर है साकी;
जितना हो जो रसिक, उसे है, उतनी रसमय मधुशाला।।
किसी आकर मैं देखूं, मुझको, दिखलाई देता साकी;
किसी ओर देखूं, दिखलाई, पड़ती मुझको मधुशाला।
हर सूरत, साकी की सूरत, में परिवर्तित हो जाती;
आँखों के आगे हो कुछ भी, आँखों में है मधुशाला।।

जो आखों के पीछे छिपा है, वही आखों के सामने दिखाई पड़ने लगता है। यह

जगत एक दर्पण के समान है। बाहर जो हम देख रहे हैं वह हमारे भीतर का ही प्रतिफलन है, उसी का रिफ्लेक्शन है। और अगर बाहर को बदलना चाहते हो तो अपने भीतर को बदलना। अगर तुम्हारे भीतर गहराई है तो बाहर जीवन में गहराई हो जाएगी, अगर तुम्हारे भीतर सौंदर्य और माधुर्य है तो फिर सब तरफ सौंदर्य और माधुर्य हो जाएगा, अगर तुम्हारे भीतर प्रेम और मैत्री भाव है तो बाहर सब कुछ सद्भावनाओं से ओत–प्रोत नजर आएगा। आज की विधि धर्म का गहरे से गहरा सूत्र है। भगवान शिव कहते हैं, हे पार्वती! यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है। यहां कोई दूसरा और है ही नहीं, बस तुम्हीं हो और अपनी छवि को सब तरफ देख रहे हो।

मुझे याद आती है एक बड़ी प्यारी कथा यहूदियों की। यहूदी फकीर हुआ है झूसिया। एक दिन एक युवक उसके पास आया और उसने कहा कि मैं कई संतों, दार्शनिकों, विद्वानों के पास जा चुका हूं, एक ही मेरा सवाल है, वही आपसे पूछने आया हूं। वह एक पैर ऊंचा करके खड़ा हो गया और उसने कहा कि जितनी देर तक मैं पैर ऊपर रख सकता हूं कृपया उतने शीघ्र बताएं, धर्मग्रंथ तोरा का सार क्या है? कई विद्वानों से मैंने पूछा, वे कहते हैं बैठो आराम से, समय लगेगा तोरा बड़ा भारी ग्रंथ है। महाभारत, रामायण जैसा, यहूदियों का पवित्र ग्रंथ। समझाने में समय लगेगा, बड़े सूक्ष्म सिद्धांत हैं, सालों खर्च होंगे। उस युवक ने कहा कि मुझे समय नहीं और मुझे भरोसा नहीं कल होऊंगा कि नहीं होऊंगा। मैं टांग ऊंची करके खड़ा हूं जितनी देर, उतनी देर मे बता दो। झूसिया ने कहा, मैं तुझसे भी जल्दी बता दूंगा, एक पंक्ति में सुन– दूसरे के साथ वैसा व्यवहार कर जैसा तू चाहता है कि दूसरे तेरे साथ करें। झूसिया ने कहा कि पैर नीचे रख और जा यहां से। न केवल धर्मग्रंथ तोरा का, दुनिया के सारे धर्मग्रंथों का सार यही है।

दूसरे को दूसरा न जानो, अपना ही एक्सटेंशन जानो। जब महावीर चींटी के ऊपर पैर नहीं रखते और कदम फूंक–फूंक कर रखते हैं तो इसलिए नहीं कि चींटी के मर जाने से नर्क मिल जाएगा कि चींटी की हत्या हो जाएगी, अनीति हो जाएगी बल्कि इसलिए कि अपने ही ऊपर कैसे पैर रखें। अपने ही नाखून से हम अपने आप को नहीं खरोंचते, अपने आप को कैसे घाव लगाएं। अब यह चींटी महावीर के लिए स्वयं का ही एक्सटेंशन हो गई है। ये किसी पर दया नहीं कर रहे हैं, किसी पे करुणा नहीं कर रहे हैं। यह ऐसा ही है जैसे मैं अपने ही एक हाथ से दूसरे हाथ को

घाव न लगाऊं। इसमें किसके ऊपर दया हुई? भगवान शिव कह रहे हैं, यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है। याद रखना, यह वही पौरुषपत्ति है। कई लोग हैं, सिद्धांत मान के चलते हैं लेकिन सिद्धांत मानने से कुछ न होगा अगर तुम्हारे भीतर गहराई नहीं है, तुम्हारे भीतर चैतन्यता नहीं है, तुम सबमें चैतन्यता को न देख पाओगे। जिसे अपने भीतर भी न सूझी, जिसे निकट से निकटतम में दिखाई न दी चेतना उसे दूर कैसे दिखाई देगी। तो खोज हमेशा अपने भीतर करना।

आज से लगभग डेढ़ सौ साल पहले फ्रेडरिक नीत्से ने घोषणा की थी कि ईश्वर मर गया। काश नीत्से दोबारा आए धरती पर तो उसे पता चले कि वे जो मटेरियालिस्टिक थे, पदार्थवादी वैज्ञानिक थे जो कहते थे केवल पदार्थ ही सत्य है, अब वे बदल गए। वे कह रहे हैं पदार्थ नहीं, ऊर्जा सत्य है, पदार्थ केवल भ्रम था, तीव्र गति से घूमती हुई ऊर्जा थी वह। इन डेढ़ सौ सालों में ईश्वर तो नहीं मरा, पदार्थ मर गया। अब वैज्ञानिकों को मटेरियालिस्ट कहना नहीं चाहिए, वह शब्द अब आउट ऑफ डेट हो गया। वे तो खुद ही कह रहे हैं, देयर इज नथिंग लाइक मैटर, इट इज ओनली कंडेन्स्ड फार्म आफ एनर्जी। उसी ऊर्जा को तो पुरानी भाषा में परमात्मा कहा था, आदिशक्ति कहा था। नए शब्द में नए ढंग से वे कह रहे हैं, केवल ऊर्जा ही ऊर्जा है। और ओशो उम्मीद करते हैं कि भविष्य में वैज्ञानिक जब ऊर्जा की खोज में जाएंगे कि ऊर्जा किस चीज से बनी है, तब पता चलेगा कि ऊर्जा चैतन्यता से, कांशसनैस से बनी है। जैसे एचटूओ के तीन रूप होते हैं– एक ठोस रूप बर्फ, तरल रूप पानी और एक गैसीय रूप भाप। ठीक ऐसे ही कांशसनैस, माइण्ड और मैटर। या दूसरे शब्दों में कह लें शरीर, मन और आत्मा, ये एक सत्य के तीन रूप हैं। भाप का ही कंडेन्स्ड रूप पानी है और पानी का कंडेन्स्ड रूप बर्फ है। ठीक इसी प्रकार चेतना का सघन रूप ऊर्जा है और ऊर्जा का सघन रूप पदार्थ है। इस जगत में उसके अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं, ये तीन परतें हैं। बस इनको समझना, अपने भीतर की चैतन्यता को महसूस करना, ये बौद्धिक समझ पर्याप्त नहीं हैं, उपयोगी है बौद्धिक समझ लेकिन पर्याप्त नहीं है। अनुभव करना होगा, गहराई में उतरना होगा।

मैंने सुना है, सुहागरात को कवि महोदय ने अपनी नववधू से कहा कि प्रिये, आज से तुम ही मेरी भावना हो, तुम ही मेरी कल्पना हो, तुम ही मेरी कविता हो। पत्नी बोली कि चलो ठीक है तो फिर आज से तुम ही मेरे रमेश हो, मेरे दिनेश हो और मेरे प्रिंस हो। अब सबमें तुम्हारा ही दर्शन करूंगी और तुममें सबका दर्शन

करूंगी।

अगर अपने भीतर परमात्मा का दर्शन नहीं हुआ तो कहीं और दर्शन न हो सकेगा। शरीर और मन के हम साक्षी हो सकते हैं। विधि को समझो, कैसे वह दर्शन होगा अपने भीतर, जिस चीज के हम साक्षी हो सकते हैं वह हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है, उससे थोड़ा पीछे खिसकें। शरीर और मन के हम द्रष्टा हो सकते हैं, इस द्रष्टा भाव को पकड़ें। साक्षी का साक्षी नहीं हुआ जा सकता, इससे सिद्ध होता है कि वह साक्षित्व, वह कांशसनैस, वह विटनेसिंग चेतना ही हमारा वास्तविक स्वरूप है, इस अनुभव में डूबो।

मैंने सुनी है एक कथा झेन फकीर लिंची के बारे में। एक प्रोफेसर आया उसके पास, भड़ाम से उसने दरवाजा खोला, जूते उतारे, धड़ से जूते पटके, आके लिंची को प्रणाम किया और कहा कि मैं परमात्मा के बारे में जानना चाहता हूं, जल्दी में हूं कृपया बताएं। लिंची ने कहा कि पहले तो जाओ दरवाजे से क्षमा मांगो, जूते से क्षमा मांगो, तुमने बड़ा अभद्र व्यवहार किया है, उसके बाद ही मैं तुम्हें कोई उत्तर दे पाऊंगा। उस प्रोफेसर ने कहा, हद हो गई! जूते से मैं क्षमा मागूं। अरे! जूते में कोई प्राण हैं क्या, दरवाजे से क्षमा मागूं, दरवाजा कोई जीवंत वस्तु है क्या? लिंची ने कहा कि जब तुम क्रोध प्रगट कर रहे थे जूते के ऊपर तब तुम्हें ख्याल नहीं आया कि यह कोई जीवित व्यक्ति तो नहीं है और जिस प्रकार तुमने लात मारके दरवाजे को धकाया था, तब तुम्हें ख्याल नहीं आया कि यह क्रोध इस पर क्यों व्यक्त कर रहे हो। तुम पता नहीं किसी और पर नाराज होओगे, दरवाजे और जूते पर तुमने अपनी नाराजगी निकाली। जब तक तुम इनसे क्षमा न मांगोगे मैं आगे बात न करूंगा। मजबूरी थी, गया प्रोफेसर, जूते दरवाजे से क्षमा मांगी, लौट के आया बड़ा शांत, प्रसन्न और कहा कि अद्भुत! आज पहली बार मुझे लगा जैसे जूता भी जीवंत है, कोई मुर्दा, पशुवत नहीं है।

हम जितने ज्यादा जीवंत और संवेदनशील होंगे, उतना ही यह सारा अस्तित्व हमारे लिए जीवंतता से ओत-प्रोत होता जाएगा। केवल विज्ञान ही एकमात्र उपाय नहीं है प्रकृति के रहस्यों को खोलने का, वो तो बड़ा स्लो और बड़ा अपरिष्कृत, धीमा उपाय है। धर्म बड़ी तीव्र गति से जगत के रहस्य में प्रवेश करता है, स्वयं के भीतर डूबकर, सीधा साक्षात् दर्शन करता है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं, अहं ब्रह्मस्मि। कोई प्रमाण भी नहीं देते, कोई तर्क भी नहीं, सीधा ही जान लिया, बिना

किसी विधि के। संत का जीवन स्वयं प्रमाण होता है, प्रमाण उसकी बातों में नहीं होते। इस विधि को करने के लिए बड़ा आसान होगा, अपने भीतर चैतन्यता का एहसास और फिर सर्वत्र उसी का एहसास। पहला हिस्सा घट जाए महत्वपूर्ण है, दूसरा तो परिणामस्वरूप अपने आप आ ही जाएगा, उसे अलग से कुछ कहने की जरूरत नहीं है। तो चलो इस विधि में डूबते हैं।

माँ ओशो प्रिया–

सभी मित्रों को नमस्कार,

आज सुबह हमने विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नंबर 107 की थी। आओ इसे व्यवहारिक रूप से व प्रयोगात्मक रूप से जानें। असीमता के इस प्रयोग में गहराई पाने के लिए बेहतर होगा हम सब आंख पर पट्टी बांध लें। रीढ़ और गर्दन सीधी, विश्रामपूर्वक बैठें, धीमी–गहरी श्वांस लें। मेरे शब्दों के साथ कल्पना करें आप एक सागर के किनारे खड़े हैं, देख रहे हैं उठती–गिरती लहरों को। अनंत–अनंत लहरें हैं। कोई लहर अभी–अभी जनम रही, कोई लहर जवान हो गई, अपने शिखर पर पहुंच गई, कोई लहर ढलने लगी प्रौढ़ता आ गई, कोई लहर गिरने के करीब बूढ़ी हो गई और कोई लहर वापस सागर में गिर गई, उसकी मृत्यु हो गई। इस गिरती हुई लहर ने बगल के पानी को धक्का दिया और एक नई लहर को जन्म दे दिया। उठती–गिरती अनंत–अनंत लहरें, ऊपर–ऊपर से कितनी भिन्न दिखाई देतीं। हर लहर का रूप अलग है, आकार अलग है, समय अलग है, देश और काल भिन्न–भिन्न हैं। अब अपनी दृष्टि को थोड़ा गहरा ले जाएं, लहरों के भीतर जो जल है उसका ख्याल करें। क्या वह प्रत्येक लहर में भिन्न–भिन्न है? सब लहरों में एक ही सागर का पानी है, सागर ही लहरा रहा है। न केवल वर्तमान की लहरों में, पीछे अरबों साल में जो लहरें उठी उन सबमें भी यही सागर था, भविष्य में जो अनंत–अनंत लहरें उठेंगी उन सब में भी यही सागर होगा। भूत, भविष्य, वर्तमान सब जुड़े हुए हैं। अब आराम से लेट जाएं। कल्पना करें चेतना के सागर की, द ओसन आफ कांशसनैस। हम सब प्राणी छोटी–छोटी लहरें हैं, अभी उठे अभी गिर जाएंगे लेकिन हमारे भीतर चेतना का जो सागर रूपी जल है वह एक ही है। रूप से नजर हटाएं अरूप पर चलें, आकार को छोड़ें निराकार में डोलें, क्षणभंगुर से दृष्टि हटाएं भीतर छिपे शाश्वत को पहचानें। भगवान शिव कहते हैं पार्वती से हे देवी! यह

चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है। बड़ा प्यारा वचन, यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है, अन्य कुछ भी नहीं है। शरीर लहर है, मन लहर है, चेतना सागर है। हमारे परमगुरु ओशो ने स्वयं का नाम ओशो चुना, उसका यही अर्थ है, दि ओशनिक एक्सपीरियंस, सागरीय अनुभव।

कबीर साहब ने कहा है–

हेरत–हेरत हे कबीर रहा कबीर हेराय,

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाय।

खो जाएं, मिट जाएं, ओशो हो जाएं। ओशो शरणम् गच्छामि।

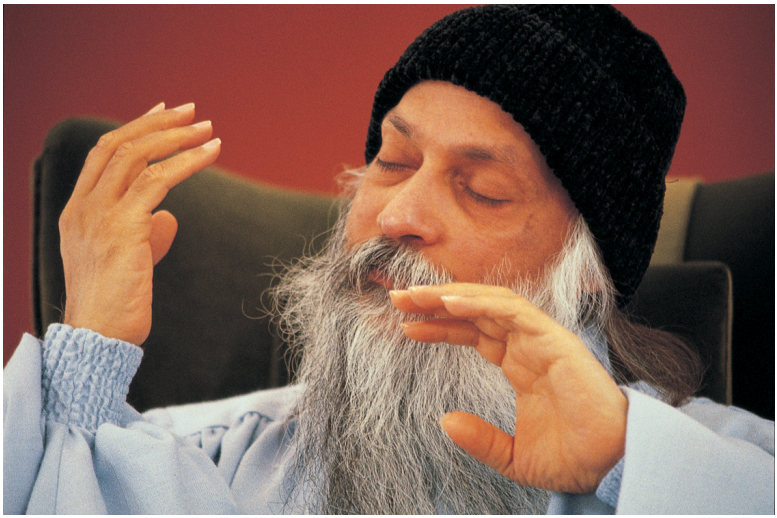

विधि-108

मार्गदर्शक सत्ता

यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।

कैसी मनहूस-सी रात है यह, जो अंगारों पे लेटी है;
हमने तो सुना था लोगों से, यह सूरज की बेटी है।
कब इसका नसीबा जागेगा, कब इसके छाले फूटेंगे?
कब सहर इसे अपनाएगी, कब आस के बंधन टूटेंगे?
कब पिघलेंगे अंगारे, कब तपिश शरम बन पाएगी?
कब तक सन्नाटा बोलेगा और टिटहरी थक जाएगी?
कब दुल्हन बनेगी काली रात कब इसका सवेरा आएगा?
कब इसका नसीबा जागेगा, कब सहर इसे अपनाएगा?

सबेरा हो चुका है, दूल्हा आ चुका है, तुम नींद में हो, किसका इंतजार कर रहे,

काली रात तुम्हारे सपने की है और जिन अंगारों पर तुम लेटे हो वे भी सपने के हैं। तुम व्यर्थ ही कष्ट भोग रहे हो, यह जीवन परमानंद की घड़ी हो सकता है। तुम दुःस्वप्न देख रहे हो। मत इंतजार करो कि कोई सुबह होगी, सुबह हो चुकी है। आंख खोलो और देखो। विज्ञान भैरव तंत्र की विधियों में आज हम आखिरी विधि पर आ गए, 108वीं विधि। अंतिम चार विधियां नहीं हैं, वे तो अविधियां हैं। इन 108 विधियों के कारण ही माला में एक सौ आठ मनके होते हैं। ये प्रतीक हैं एक सौ आठ विधियों के। 108 से और ज्यादा विधियां नहीं हो सकतीं। भगवान शिव ने पार्वती से वह सबकुछ कह दिया, आध्यात्मिक तकनीक के बारे में जो कहा जा सकता है, पूरा का पूरा विज्ञान एक अकेले व्यक्ति ने निर्मित कर दिया। अद्भुत हैं भगवान शिव। माला में जो धागा होता है 108 मनकों में अनस्यूत, वह है साक्षीभाव का प्रतीक। इन सारी विधियों को अगर सार संक्षेप में, एक शब्द में समझना हो तो वह है साक्षी। अलग-अलग तरीकों से साक्षी में प्रवेश कर सकते हैं हम। इसलिए 108 विधियां, तुम्हारे व्यक्तित्व के अनुकूल जो तुम्हें पड़े, जो तुम्हें रास आ जाए उसका उपयोग कर लेना। और माला में जो गुरू की तस्वीर लटकाते हैं, वह प्रतीक है परमात्मा की। गुरू साक्षात स्वरूप है परमात्मा का। तो किसी भी मनके से चलो, साक्षी के धागे को पकड़ना और अंततः परमात्मा तक पहुंच जाओ।

आज के 108वीं विधि में भगवान शिव कहते हैं शक्ति से, यह चेतना ही सबकी मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो। मार्गदर्शक सत्ता, बाहर के गुरू का यही काम है कि वह भीतर के मार्गदर्शक से, पथप्रदर्शक से मिलवा दे। कई बार लोग मुझसे पूछते हैं सद्गुरू की क्या पहचान? छोटी सी पहचान स्मरण रखना, जो तुम्हें स्वयं से बांधे वह सद्गुरू नहीं, जो तुम्हें तुम्हारे भीतर के सद्गुरू से मिला दे, वह जो तुम्हारे भीतर चैतन्य विराजमान है, तुम्हारी मार्गदर्शक सत्ता, जो उसके हवाले तुम्हें छोड़ दे वही सच्चा सद्गुरु है। जो स्वयं से बांधेगा वह तो नया बंधन निर्मित कर लिया। तुम आए थे मुक्ति की तलाश में और नए बंधन में घिर जाओगे। सावधान, भगवान शिव कह रहे हैं, हे पार्वती तुम्हारे भीतर जो वह चेतना है वही तुम्हारी मार्गदर्शक सत्ता है, उस पर चलो। अपने भीतर के विवेक से, अपनी अंतसप्रज्ञा से चलो।

कास्तानेत एक बहुत प्रसिद्ध लेखक हुआ, साधक भी हुआ। वह अपने गुरु दानजुआन के साथ जंगल के रास्ते से यात्रा कर रहा था। शाम हो चुकी थी और जिन रास्तों से वह गुजर रहे थे वे पहाड़ी रास्ते थे, खतरनाक थे। दिन को भी वहां सम्हल-सम्हल के चलना पड़ता था। उसके गुरु दानजुआन ने कहा कि कास्तानेत, अब अंधेरा हो गया, अब हम दौड़ के चलेंगे। कास्तानेत तो बहुत घबराया, उसने कहा, दौड़ेंगे कैसे? दानजुआन ने कहा, तू तो जवान है, मैं तो बूढ़ा हो गया। देख मैं तुझे दौड़

के बताता हूं और दानजुआन ने अपनी वृद्धावस्था में उस अंधेरी, जंगली, बिना रास्तों वाली जगह पर दौड़ के दिखाया। उसको देखकर हिम्मत पड़ी शिष्य की भी। डरते हुए, कंपते हुए उसने शुरूआत की और एक आश्चर्य की घटना घटी, थोड़ी ही देर अंधेरे में दौड़ने के पश्चात जैसे भीतर से कोई पथप्रदर्शक प्रगट हो गया। एक अंतःप्रज्ञा उत्पन्न हुई और सोच पैदा हो गई कि कहां जाना है, किस दिशा में जाना, कहां गढ्ढा नहीं होगा, कहां पेड़ से नहीं टकराएगा अपने आप भीतर से विवेक जाग गया।

आश्चर्य की बात है, वह अंतःप्रज्ञा हम सबके भीतर सुप्त अवस्था में है, क्योंकि हमने उसका उपयोग करना बंद कर दिया। विशेषकर आधुनिक समय में, शिक्षा के प्रचार–प्रसार के बाद। हमने अपनी सारी शक्ति विचारों को, तर्कों को, बुद्धि को दे डाली है। बुद्धि हर चीज में हस्तक्षेप करती है, अपनी टांग अड़ाती है, वह भीतर की प्रज्ञा को काम नहीं करने देती। बुद्धि और प्रज्ञा के भीतर जो अंतर्संघर्ष चलता है, हम उसमें बुद्धि को जिता देते हैं, प्रज्ञा को हरा देते हैं। यही हमारी बड़ी से बड़ी भूल है। इसलिए आधुनिक शिक्षित व्यक्ति बिल्कुल ही अंतःप्रज्ञा, इंट्यूशन पावर से शून्य हो गया है। महिलाओं में थोड़ा–बहुत अभी भी बचा है, पुरुषों में तो बिल्कुल ही खत्म हो गया।

हमसे ज्यादा गहरी अंतःप्रज्ञा तो पशु–पक्षियों में होती है। वैज्ञानिकों ने हजारों प्रयोग किए हैं। माइग्रेटिंग बर्ड कैसे एक स्थान से हजारों किलोमीटर दूर ठीक समय पर, ठीक मौसम में, ठीक दिन पहुंच जाते हैं। न उनके पास कोई घड़ी है, न कलेण्डर, कैसे उन्हें पता चल जाता है कहां जाना है, किस दिशा में जाना है, कितनी दूर और ठीक समय पर वापस लौट आते हैं। कई तो पक्षी ऐसे हैं वे अपने अण्डे छोड़ के जाते हैं, 15–20 दिन बाद उनके बच्चे अण्डों से बाहर निकलते हैं, उनका माता–पिता से कभी मिलन न हुआ और वे ठीक उसी दिशा में उड़ना शुरू कर देते हैं जहां उनके माता–पिता गए। चमत्कार सा लगता है, कैसे उन्हें पता चला कि उनके माता–पिता कहां गए हैं। वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं। वे बच्चों को भटकाने के कई कोशिशें किए हैं कि वे दिशा भटक जाएं, कहीं और चले जाएं। लेकिन नहीं, उनके भीतर से कोई प्रज्ञा काम करती है। वे ठीक उसी जगह पहुंच जाते हैं, जहां उनके माता–पिता गए। हजारों–हजारों परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि जानवरों में, पक्षियों में, मछलियों में, पेड़–पौधों में भी अंतःप्रज्ञा है। पेड़ अपनी जड़ें उस दिशा में भेजने लगता है, जिस दिशा में पानी है।

बीच में मैं पढ़ रहा था एक परीक्षण। एक पाइप लाइन कहीं से गुजर रही थी और वृक्ष जो उससे करीब 15 फुट दूर था, उसने अपनी एक जड़ उस पाइप लाइन की तरफ भेजी। जड़ जाके पाइप लाइन पर लिपट गई, धीरे–धीरे उसको मरोड़ा, कुछ समय के बाद पाइप लाइन वहां से फट गई, पानी लीक होने लगा। आश्चर्य की

बात! लोहे के भीतर से बहता हुआ पानी पेड़ को पता लग गया। वो तो जब पाइप फट गया, फूट गया तब खोजबीन की गई कि कहां लीकेज हो रही, कैसे लीकेज हो रही, तब पता चला खोदने पर। उसके आसपास तो जड़ें लिपटी हुई हैं। अंतःप्रज्ञा से सारा जीवन चल रहा है। मनुष्य ने अपने भीतर का विवेक खो दिया, अपने भीतर के विवेक को जगाना होगा।

सुनो ओशो क्या कहते हैं –

बड़ी हैरानी की बात है कि मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक विकसित माना जाता है किन्तु अंतःप्रज्ञा के मामले में वह विकसित है नहीं। मस्तिष्क ने सबकुछ अपने हाथों में ले लिया है और हमारे आंतरिक केन्द्र ढीले पड़ गए हैं। यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो। भगवान शिव कह रहे हैं– जब भी तुम किसी परिस्थिति में बहुत परेशान हो और तुम्हें समझ न आए कि क्या किया जाए तो सोचो मत, गहरे निर्विचार में डूब जाओ और अपने अंतसविवेक को अपना मार्गदर्शन करने दो, शुरू–शुरू में तुम्हें डर लगेगा, असुरक्षा महसूस होगी किन्तु जल्दी ही जब तुम हर बार ठीक निष्कर्ष पर पहुंच जाओगे, हर बार तुम ठीक द्वार पर पहुंच जाओगे, तब तुममें साहस आने लगेगा और भरोसा जागने लगेगा। यदि यह भरोसा आता है, उसी को मैं वास्तविक श्रद्धा कहता हूं। यह आध्यात्मिक श्रद्धा है, अंतर्विवेक पर भरोसा।

बुद्धि तुम्हारे अहंकार का हिस्सा है, जब तुम अपने अहंकार पर भरोसा करते हो, अक्सर तुम उसे आत्मविश्वास कहते हो किन्तु वह है नहीं। मैं जिसे श्रद्धा कह रहा हूं उसमें तुम ब्रह्माण्ड की अंतरात्मा में, अस्तित्व के विवेक में भरोसा कर रहे हो, तब तुम उसका अनुसरण करके चलते हो और हमेशा सही मंजिल पर पहुंचते हो। तुम अपने को बहुत ज्ञानी समझते हो किन्तु हो नहीं। असली ज्ञान भीतर से आता है, बुद्धि से नहीं। ज्ञान तुम्हारे अंतर्तम से उठता है, मस्तिष्क से नहीं। अपनी खोपड़ी को अलग हटाकर रख दो और आत्मा का अनुसरण करो चाहे वह कहीं भी ले जाए। अगर वह खतरे में ले जाए तो भी खतरे में जाने को तैयार हो जाओ, शायद तुम्हारे लिए वहीं से विकास का मार्ग खुलता होगा, खतरे में तुम विकसित होओगे और पकोगे। यदि अंतर्विवेक तुम्हें मृत्यु की ओर ले जाए तो भी डरो मत, पीछे न हटो क्योंकि शायद वही तुम्हारे विकास का मार्ग होगा, उस पर श्रद्धा करो, उसका अनुसरण करो और चल पड़ो। बड़ी अद्भुत विधि है यह, प्रयोग करना होगा, सिर्फ समझने से बात न बनेगी।

ओशो की एक किताब है अंतर्यात्रा। उसमें वे कहते हैं, हमारे जीवन के तीन केन्द्र हैं– खोपड़ी या मस्तिष्क विचारणा का केन्द्र है, हृदय भावना का केन्द्र है और नाभि हमारी चेतना का केन्द्र है। ये तीन शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, सोचना, भावना और चेतना।

एक शब्द और जोड़ लें इसमें, करना, वह हमारी बिल्कुल परिधि है। कर्म सबसे बाहर हैं, विचार उससे भीतर हैं, भाव उससे भी भीतर हैं और हमारा होना, हमारी मार्गदर्शक सत्ता बिल्कुल केन्द्र में है। इस केन्द्र के लिए पहुंचने के इसलिए तीन मार्ग हो सकते हैं। कोई कर्म के प्रति साक्षीभाव साधना शुरू करे तो कर्मयोगी हो जाए, कोई भाव के प्रति साक्षी बने तो भक्ति का मार्ग अपना ले और कोई व्यक्ति विचार के प्रति साक्षी बने तो ज्ञानयोग का मार्ग अपना ले। लेकिन अगर वह कर्म, विचार या भाव में अटक के रह गया तो ये कर्म, भक्ति और योग उसको भटकाने वाले हो जाएंगे, ये ज्ञान काम न आएगा। ज्ञान से शुरू करो, कर्म से शुरू करो, भाव से शुरू करो, लेकिन याद रखना पहुंचना कहां है, पहुंचना है अपने अंतर्तम तक। नाभि से ही सारे जीवन की स्फूरणा आती है, नाभि हमारे होने का, हमारी आत्मा का केन्द्र है।

मैंने सुना है चंदूलाल ने चेतना नामक लड़की से सगाई तोड़ दी, क्योंकि लड़की कुंवारी थी। चंदूलाल बोले कि जो आज तक किसी की न हो सकी वो भला मेरी कैसे होगी। चेतना से विवाह करने का एक उपाय है– नाभिकेन्द्र से जीना शुरू करो। भूल जाओ थोड़े दिन के लिए कि तुम्हारा सिर भी है। अच्छा हो कि अपने कमरे में अपनी एक तस्वीर लटका लो, फोटोग्राफर से कहना कि बिना सिर की तुम्हारी तस्वीर निकाल दे। उसे देख के बार–बार स्मरण आता रहेगा। अपने आप को बेसिर महसूस करो, तब तुम्हारी ऊर्जा धीरे–धीरे हृदय केन्द्र पर आने लगेगी। क्रमशः नाभिकेन्द्र पर जाने लगेगी, जब तुम बिल्कुल नाभिकेन्द्रित हो जाओगे तब तुम्हारी अंतःप्रज्ञा, तुम्हारे भीतर की मार्गदर्शक सत्ता काम करने लगेगी, वही अध्यात्म की मंजिल है।

ओम नमः शिवाय, ओशो शरणम् गच्छामि।

माँ ओशो प्रिया–

सभी मित्रों को नमस्कार।

आज सुबह हमने समझी थी विज्ञान भैरव तंत्र की विधि नंबर 108। आओ अब उसका व्यवहारिक रूप से प्रयोग करते हैं। बेहत्तर होगा इसमें डूबने के लिए हम आंखों पर पट्टी बांध लें। रीढ़ और गर्दन सीधी रखें लेकिन विश्रामपूर्ण, रिलैक्सड। धीमी–गहरी श्वांस लें, कल्पना करें कि आपका सिर नहीं है, केवल नीचे का धड़ मात्र है। एक मूर्ति की कल्पना करें जिसका सिर टूट गया है। आप बेसिर हो गए, धीमी–धीमी श्वास सीने तक जाने दें। सीने को फूलने–पिचकने दें, आहिस्ता से श्वास लें, सीना फैले, धीरे से छोड़ें सीना पिचके। सिर के केन्द्र से आपकी शक्ति हट जाए, हृदय केन्द्र पर आ जाए। भूल जाएं कि सिर भी है, बेसिर हैं आप। हृदय से श्वास लें, सीने का फूलना–पिचकना

महसूस करें, आपकी सारी शक्ति हृदय में समाहित हो रही है।

अगला चरण थोड़ी और गहरी श्वांस लें, पेट के फूलने–पिचकने को महसूस करें। सिर से उतर कर हम हृदय पे आएं। अब हृदय से उतर कर नाभिकेन्द्र पर चलें, वही हमारी चेतना का असली केन्द्र है। पेट का फूलना–पिचकना महसूस करें। सिर विचार का केन्द्र है, हृदय भाव का केन्द्र है और नाभि चेतना का, जीवंतता का केन्द्र है। धीमी गहरी श्वास, नाभि का एहसास। जापान में उसे हारा केन्द्र और चीन में तानदेन कहते हैं, योग की भाषा में इसे मणिपुर चक्र कहा जाता है। यही हमारे प्राणों का केन्द्र है। भगवान शिव कहते हैं, यह जो चेतना है, यही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, तुम यही हो रहो। भगवान शिव कहते हैं, यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो। दिनभर जितनी बार याद आए गहरी धीमी श्वास लेना, नाभिकेन्द्रित होकर जीना। आज का प्रयोग समाप्त हुआ।

धन्यवाद।

विधि-109

देह को रिक्त कक्ष मानो

अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो– सर्वथा रिक्त।

विज्ञान भैरव तंत्र की अंतिम चार विधियां रिक्तता से, शून्यता से संबंधित हैं। सर्वाधिक नाजुक, कोमल, सर्वाधिक सूक्ष्म, इन्हें गौर से समझना। इनमें करने को कुछ नहीं है, निष्क्रियता में डूबना है, इसलिए भगवान शिव ने इसे अपने ग्रंथ में सबसे अंत में जगह दी है। क्रिया को समझना आसान है, निष्क्रियता को समझना कठिन है। शून्यता की कल्पना करना भी बड़ा कठिन लगता है। भगवान बुद्ध ने इन विधियों का प्रयोग किया और इस कारण इस देश में पूरे देश में नास्तिक समझा गया। बुद्ध को निष्कासित कर दिया गया। उन्होंने कहा, कोई आत्मा नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है क्योंकि दिव्यता के रहते तुम रिक्त न हो पाओगे, खाली न हो पाओगे। और अगर भीतर आत्मा–परमात्मा की बात की तो फिर कामना निर्मित होगी कि उसे कैसे पाएं, फिर कर्ताभाव आ जाएगा, फिर अहंकार आ जाएगा। आत्मा जैसे सुंदर शब्द के पीछे

अहंकार की कुरूपता छिप जाएगी। इसलिए बुद्ध ने कहा अनात्मा, अनत्ता, कोई आत्मा नहीं है।

शिव की यही विधि थी, इन्कार कर दो, भीतर कुछ भी नहीं है, तब पाने की कोई कामना नहीं रहेगी, अहंकार नहीं होगा। तब उस निष्कामना की अवस्था में जो घटेगा वह परमशांति, परमआनंद होगा। हिन्दुओं ने उसी परमशांति, सच्चिदानंद की अवस्था को परमात्मा कहा है, जैनों ने आत्मा कहा है, बुद्ध ने शून्यता कहा है। अगर मेरा रुझान पूछो तो मैं एक नकारात्मक शब्द, शून्यता, कहना ज्यादा उपयोगी समझूंगा, क्योंकि इससे फिर कामना निर्मित नहीं होती, फिर लोभी लोग धर्म में उत्सुक नहीं होते। वर्ना कोई स्वर्ग पाने के लिए, कोई मोक्ष पाने के लिए, कोई ईश्वर को पाने के लिए, कोई कल्पवृक्ष के नीचे बैठने के लिए, कोई मेनका और उर्वशी को पाने के लिए धर्म में उत्सुक हो जाते हैं। शून्यता के कामों में लोभी और कामी लोगों के लिए कोई जगह नहीं बचेगी। शून्य की खोज कौन करेगा? लोग कुछ पॉजिटिव चाहते हैं। तो कामना के लक्ष्य को ही इंकार कर दो, तब निष्कामना, निर्विचार अवस्था स्वतः अपने आप घट जाएगी।

एच जी वेल्स की कहानी मैंने सुनी है, शायद आपने भी सुनी होगी। जिसमें वह कहता है कि माचिस की छोटी सी डिब्बी में रेलवे का इंजन बंद है, साइंस फिक्शन की कहानी। वह कह रहा है कि अणु में, परमाणु में जो इलेक्ट्रान, प्रोटान्स हैं सिर्फ वही बचे, बाकी का जो स्पेस था, आकाश था वह निकाल लिया, काम्पेक्ट हो गए। आपने ब्लैक होल्स के बारे में सुना होगा। वहां सिर्फ कण हैं, स्पेस निकाल दिया गया। पूरी पृथ्वी को अगर काम्पेक्ट किया जाए, परमाणु के बीच का आकाश निकाल दिया जाए तो पूरी पृथ्वी एक फुटबाल के बराबर हो जाएगी बस। वजन उतना ही रहेगा जितना पूरी पृथ्वी का था, साइज एक फुटबाल की हो जाएगी। इसका ठीक उल्टी कल्पना करो। यदि अहंकार, कर्ताभाव, कामना और विचार निकाल दिए जाएं, अगर कण निकाल दिए जाएं तो पीछे जो बचेगा वह रिक्त आकाश। वह क्या होगा? वह अनादि, अनंत और असीम होगा, परमशांति वहां होगी, परमानंद वहां होगा।

कामना को निकलते जाओ, पीछे निर्अहंकार शेष रह जाएगा। चाहे ध्यान में डूबना हो, चाहे परमात्मा में, चाहे प्रार्थना में, चाहे प्रेम में सबकी एक ही शर्त है, निर्अहंकार हो जाओ। क्योंकि आधुनिक मनुष्य प्रेम करने में भी असमर्थ हो गया है अहंकार के कारण, इसलिए इतनी सारी ध्यान विधियों की जरूरत पड़ती है। जिन्हें प्रेम में डूबने की कला आती है उन्हें किसी ध्यान विधि की आवश्यकता नहीं है। इस अंतराकाश में कैसे डूबो, स्वयं से कैसे मुक्ति मिले। सुनो यह गजल किसी शायर ने लिखा है–

होके तन्हा–ओ–मजबूर चला जाउंगा,
तेरी दुनिया से मैं दूर चला जाऊंगा।
दिल में चुभते हुए इस खार से दूर,
ख्वाबों की उजड़ी हुई बहार से दूर।
घुटे घुटे तारों की इस कतार से दूर,
पूरा न हो सके उस इकरार से दूर।
तेरी आंखों की जादूगरी से दूर कहीं,
तेरे कदमों की आहट से भी दूर कहीं।
इतनी दूर कि जहां कोई अपना–पराया न हो,
हां इतनी दूर जहां खुद का भी साया न हो।

लेकिन ऐसी जगह पाओगे कहां? जहां खुद का भी साया न हो। भगवान शिव उसी तरफ इशारा कर रहे हैं। वह जगह घर छोड़ के जंगल में जाने से न मिलेगी, वह जगह कामना छोड़कर निष्काम शून्यता में जाने से मिलेगी। वह जगह हमारे भीतर ही है, बाहर तो हम जहां जाएंगे, हमारा अहंकार साथ ही चला जाएगा। शून्यता में प्रवेश करो। भगवान शिव कहते हैं– अपने शरीर को एक निष्क्रिय, रिक्त त्वचा से निर्मित कक्ष जानो, एक खाली कमरा जिसमें कुछ भी नहीं है। अहंकार से शून्यता घट जाएगी। सारे धर्म एक बात पर सहमत हैं कि हम सत्य से वंचित हैं केवल अपने अहंकार के कारण। और अहंकार है क्या? मूर्छा में उत्पन्न एक भ्रम है। इसलिए जागरूकता को बढ़ाओ, बोध का दीया जलाओ और अहंकार का अंधकार विसर्जित हो जाएगा। शांत और मौन में अहंकार नहीं होता, प्रेम और करुणा में अहंकार नहीं होता। हां, क्रोध में, क्रूरता में, घृणा में अहंकार बहुत सघन होता है।

जीसस कहते हैं परमात्मा प्रेम है। लेकिन याद रखना हम सामान्यतः जिसे प्रेम कहते हैं, वह तो केवल वासना ही है। जीसस जिस प्रेम की बात कर रहे हैं वह कोई और बात है, वह निर्अहंकारिता की दशा है। महावीर ने उसे अहिंसा कहा है, बुद्ध ने उसे करुणा कहा है, नाम–नाम के भेद हैं बस। इस मन का उपयोग करो जो तुम्हें मिला है किन्तु इससे तादात्म्य न करो। इस मन के तादात्म्य से अहंकार निर्मित होता है। मन एक सुंदर यंत्र है गुलाम की भांति, लेकिन अगर मन तुम्हारा मालिक हो जाए तब मुश्किल खड़ी होती है। इस विधि को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा– अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो, लेकिन भीतर सबकुछ रिक्त हो।

यह सुंदरतम विधियों में से एक है। किसी भी ध्यानपूर्ण मुद्रा में अकेले शांत होकर बैठ जाओ, तुम्हारी रीढ़ की हड्डी सीधी रहे और पूरा शरीर विश्राम जैसे कि सारा शरीर रीढ़ की हड्डी पर टंगा हो, फिर अपनी आंखों को बंद कर लो, कुछ क्षण के लिए विश्रांत से विश्रांत अनुभव करते चले जाओ, लयबद्ध होने के लिए कुछ पल लगेंगे और फिर अचानक अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर त्वचा की दीवारें मात्र है और भीतर कुछ भी नहीं है, घर बिल्कुल खाली कोई भी नहीं। कई बार तुम विचारों को गुजरते हुए देखोगे, विचारों के मेघों को विचरते हुए पाओगे लेकिन ऐसा मत सोचो कि वे तुम्हारे हैं। तुम हो ही नहीं, बस ऐसा सोचो कि रिक्त आकाश में बादल घूम रहे हैं वे किसी के भी नहीं हैं, उनकी कोई जड़ें नहीं हैं। वास्तव में ऐसा ही है, विचार केवल आकाश में घूमते हुए जड़हीन बादलों के समान हैं। कुछ ही दिनों में, हफ्तों में विचार कम होते जाएंगे, कम से कम होते जाएंगे, बादल छटने लगेंगे, अगर वे आएंगे भी तो बीच–बीच में मेघरहित आकाश के बड़े अंतराल होंगे, जब कोई विचार न होगा। एक विचार गुजर जाएगा फिर कुछ समय के लिए दूसरा विचार नहीं आएगा, फिर दूसरा विचार आएगा, फिर एक बड़ा गैप होगा उन अंतरालों में ही पहली बार तुम जानोगे कि रिक्तता क्या है। उसकी एक झलक ही तुम्हें इतने गहरे आनंद से भर जाएगी कि तुम अभी कल्पना भी नहीं कर सकते।

बड़ी अद्भुत है यह विधि, बड़ी सरल भी। करने को कुछ भी नहीं है, बस अपने गेस्टाल्ट को बदलना है। बादलों पे नजर नहीं रखना, आकाश पे नजर करना। हमारे दृष्टिकोण से सब परिवर्तित हो जाता है। कल्पना करो, सड़क पर शोरगुल हो रहा है, ट्रैफिक गुजर रहा है, हार्न बज रहे हैं। अगर तुम कहते हो कि मैं इससे अशांत और बेचैन हो रहा हूं, उद्विग्न हो रहा हूं यह तुम्हारी व्याख्या है, वास्तव में शोरगुल के कारण अशांति नहीं है। शोरगुल की नकारात्मक व्याख्या के कारण जब तुम संघर्ष कर रहे हो और कह रहे हो कि शोरगुल नहीं होना चाहिए तब तुम अशांत हो जाते हो। काश, तुम उसे स्वीकार लो, तुम निष्क्रिय हो जाओ, तुम्हारे भीतर से कोई प्रत्युत्तर न आए। याद रखना, जब तुम कहते हो कोई मधुर संगीत है, वह भी तुम्हारा इंटरप्रीटेशन है, जब तुम कहते हो शोरगुल है, वह भी तुम्हारी व्याख्या है। ये अहंकार के प्रत्युत्तर हैं। अगर तुम बिल्कुल खाली हो तो न फिर कोई मधुर संगीत है और न कोई कर्णकटु शोरगुल है। भीतर अद्भुत शांति और सन्नाटा छा जाएगा, तुम्हारा कर्ताभाव गिर जाएगा। सक्रियता के साथ तादात्म्य को तोड़ो।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल की पत्नी जिन्हें बीस साल से कैंसर था, दस साल से अस्थमा की बीमारी थी और पांच साल से एड्स की बीमारी थी। अंततः वह आपरेशन थिएटर में जाते हुए चंदूलाल से बोली कि क्या मेरे मर जाने के बाद तुम तुरंत दूसरी

शादी कर लोगे? चंदूलाल ने सोचकर कहा कि नहीं देवी जी, कम से कम 6 महीने तो आराम करूंगा। सक्रियता से शादी हुए हमें जनम–जनम बीत गए। हम कितने परेशान हो रहे हैं, सक्रियता एक रोग है। थोड़ा आराम करो। भगवान शिव कह रहे हैं– निष्क्रिय हो रहो, रिक्त और खाली, कुछ भी न करो। बुद्ध कहा करते थे– ध्यान किया नहीं जा सकता, ध्यान में हुआ जा सकता है। ध्यान कोई क्रिया नहीं है। मैंने कई बार आप को झेने फकीर बोकोजु की कहानी कही, सम्राट जिसके मठ को देखने आया था और बीच में जो बड़ा भवन था उसके बारे में वह पूछता कि यहां क्या करते हो? और बोकोजु ने कोई उत्तर न दिया। सम्राट ने पूछा बोलते क्यों नहीं, इस बीच के भवन में क्या करते हो? बार–बार पूछने पर बोकोजु ने कहा कि क्षमा करें, वहां हम कुछ भी नहीं करते, वह हमारा ध्यानकक्ष है। सम्राट ने कहा फिर ऐसा क्यों नहीं कहते कि वहां ध्यान करते हो? बोकोजु ने कहा, बस वहीं भूल हो जाएगी।

ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान में हुआ जाता है, प्रेम किया नहीं जाता, प्रेम में हुआ जाता है, प्रार्थना की नहीं जा सकती, प्रार्थनापूर्ण दशा में हुआ जा सकता है। बुद्ध तो कहते थे, क्रिया जैसी कोई चीज ही नहीं है, बस प्रोसेस हैं। जब तुम कहते हो कि एक आदमी चल रहा है, तो बुद्ध कहते थे तुम गलत कह रहे हो, इतना ही कहो कि चलने की घटना घट रही है। जब एक वृक्ष बड़ा हो रहा है, हम कहते हैं, तो भ्रांति पैदा होती है कि वृक्ष एक संज्ञा है। सिर्फ इतना ही कहो, विकसित होने की घटना घट रही है। जब हम कहते हैं नदी बह रही है, तो ऐसा लगता है कि नदी कोई वस्तु है। वास्तव में केवल बहते हुए पानी की प्रक्रिया का नाम है नदी। नदी कोई अलग से तत्व नहीं है, सिर्फ बहाव है। काश, हम प्रक्रियाओं को देखें, संज्ञाओं को विदा कर दें, तब हमारे भीतर भी रिक्तता घट जाएगी क्योंकि अहंकार हमारे भीतर का कर्ता है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की घड़ी खराब हो गई। उसने सोचा कि खुद ही सुधार लूं, रविवार का दिन है, फुर्सत में हूं। स्क्रू ड्राइवर उठाया, घड़ी खोल ली। देखा कि पीछे एक मरा हुआ मच्छर निकला। नसरुद्दीन ने कहा, लो– ड्राइवर ही मर गया तो घड़ी चलेगी कैसे। हमारे भीतर जो अहंकार है वह कर्तारूपी अहंकार भाव है। काश, वह समाप्त हो जाए तो भीतर समय की यह घड़ी रुक जाए और समयातीत, कालातीत आकाश में प्रवेश हो जाए। बड़ी आसान है यह बात। सारी आशाएं छोड़ दो, विचार छोड़ दो, कामना छोड़ दो, रिक्तत्ता को स्वीकार लो, शून्यता में डूबो और तुम पाओगे परमशांति घट गई। इसे किया नहीं जा सकता, बस इसमें हुआ जा सकता है। मत पूछना कैसे? इसलिए अंतिम चार विधियों में मैं आपसे कुछ करने की नहीं कहूंगा। बस समझें और शून्य हो जाएं, कुछ करने की जरूरत नहीं है। अभी, यहीं मुझे

सुनते–सुनते शून्य हो जाएं, भाव करें आप एक खाली कक्ष हैं, ये ध्वनि तरंगें, मेरी आवाज उस खाली आकाश से गुजर रही है। सुनने वाला भी वहां कोई नहीं है और देखो कैसी शांति घटित होती है।

ओम शांतिः शांतिः शांतिः।

विधि-110

हे देवी, लीला करो!

हे गरिमामयी, लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतिक करता है।

अरे आषाढ़ी मेघों, यहां क्या है तुम्हारा?
तुम लोग तो बेघर, बादल हो आवारा;
न जमीन में जड़ें, न ऊपर कोई सहारा।
अचानक सागर से उड़ के आए हो
कुछ देर के लिए आसमान में छाए हो।
गरजोगे, चमकोगे, बरसोगे;
थोड़ी देर धूम मचाओगे
फिर कहीं दूर निकल जाओगे।
हम तो अचल और अडिग, पुरातन चट्टान हैं
अपनी जगह पर कायम हमारे सनातन प्राण हैं।
और हमें ज्ञान है सदा से
कि जो आए वहां से, सो गए यहां से।
जाने वाले बादल लौटकर नहीं आते
फिर भी आवागमन के खेल हमें हैं सुहाते।
मैं चेतना की चट्टान हूं,

निष्कंप, निश्चल हूं।
तुम विचारों के बादल हो,
बड़े चंचल हो।
आओ, जाओ, शोर मचाओ;
मजा करो, मौज मनाओ।
भावनाएं कितनी ही गरजें, चमकें, बरसें
मगर निर्बल हैं तो निर्बल हैं।
और चाहे चट्टानें भले ही चुप रहें
किंतु सचमुच में तो वे ही सबल हैं।

जीवन का सारा खेल ऐसा है, शाश्वत की धुरी पर परिवर्तशील का खेल है। लेकिन उस खेल का मजा लो। सामान्यतः धार्मिक लोग, तथाकथित साधु–महात्मा क्षणभंगुरता की, मन की चंचलता की निंदा करते हैं, आलोचना करते हैं। क्षणभंगुर का खेल है ये। आज के विधि नंबर 110 में भगवान शिव कहते हैं कि हे गरिमामयी, लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतिक करता है। इस खेल में भागीदार बनो। माना कि इन्द्रधनुष बस दिखाई पड़ रहा है, पर कितना प्यारा और सुंदर है। क्या इसकी सराहना न करोगे? माना कि यह जगत अभी है, अभी नहीं हो जाएगा, सपने जैसा ही है। क्या इस सपने में सौंदर्य नहीं है? शाश्वत का अपना मजा है, क्षणभंगुर का अपना मजा है। स्थिरता का अपना मजा है, चंचलता का अपना मजा है। धैर्य, गंभीर बनो, द्वंद की भाषा को छोड़ो। पीछे हमने 109 नंबर की विधि समझी जिसमें निष्क्रियता पर जोर था, रिक्तता पर, शून्यता पर जोर था। लेकिन याद रखना, वैसी विधि को तो थोड़ी देर साधा जा सकता है, घंटे–दो घंटे, चौबीस घंटे में से फिर 22–23 घंटे क्या करोगे।

भगवान शिव वही विधि दे रहे हैं कि शेष समय में जीवन को लीला की भांति, खेल की भांति लो। कृष्ण की लीला को हम रासलीला कहते हैं, राम के जीवन को हम रामलीला कहते हैं। उनका जीवन एक खेल था। शिव की नाचती हुई प्रतिमा देखी, नटराज की मूर्ति। यह सारा जीवन एक नृत्य है, एक खेल है, इसका आनंद लो। तभी ध्यान तुम्हारे चौबीस घंटे पर फैल पाएगा। अगर तुमने ध्यान को केवल निष्क्रिय जागरूकता से जोड़ा तो थोड़ी सी सीमा, थोड़ा सा खण्ड ही ध्यानपूर्ण हो सकेगा जिंदगी का। 24 घंटे अगर ध्यानपूर्ण बनाना है तो सक्रियता के साथ लीलाभाव को जोड़ना होगा। इस विधि को समझाते हुए हमारे प्यारे गुरू ओशो ने कहा– कार्य को

खेल की भांति समझना चाहिए, कार्य की भांति नहीं। काम को लीला बनाओ, एक खेल की तरह लो। उसके प्रति गंभीरता छोड़ो, जैसे बच्चे खेलते हैं बस वैसे ही। सबकुछ निष्प्रयोजन है, कुछ भी पाना नहीं है, कृत्य का आनंद लेना है। कभी–कभी तुम खेलो तो तुम्हें अंतर स्पष्ट हो सकेगा। जब तुम कार्य करते हो, ड्यूटी तो बात अलग होती है, तुम गंभीर बोझ के तले तबे होते हो, उत्तरदायी होते हो, चिंतित होते हो, परेशान होते हो क्योंकि परिणाम तुम्हारा लक्ष्य होता है। स्वयं कार्य मात्र ही आनंद नहीं देता, असली बात भविष्य में, परिणाम में होती है।

जब तुम खेलते हो तो वास्तव में परिणाम या लक्ष्य की चिंता नहीं होती, खेलना ही आनंदपूर्ण होता है। तुम चिंतित नहीं होते। खेल कोई गंभीर बात नहीं है। यदि तुम गंभीर दिखाई भी पड़ते हो तो वह केवल नाटक है, दिखावा है। खेल में तुम प्रक्रिया का ही आनंद लेते हो। कार्य में प्रक्रिया का आनंद नहीं लिया जाता, लक्ष्य महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रक्रिया को किसी भांति झेलना पड़ता है, ढोना पड़ता है उस परिणाम को पाने के लिए। अगर लक्ष्य बिना किसी कोशिश और प्रयास के मिल जाए तो तुम प्रक्रिया को एक ओर सरकाकर अलग कर दोगे और सीधे लक्ष्य पर कूद पड़ोगे। लेकिन खेल में तुम ऐसा नहीं करते। यदि परिणाम बिना खेल के पा सको तो परिणाम व्यर्थ हो जाएगा, उसमें प्रक्रिया ही महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए दो फुटबाल की टीमें खेल के लिए मैदान में हैं। कोई कह सकता है कि इतना उपद्रव समय गंवाने की क्या जरूरत, एक सिक्का उछाल के हम तय कर लेते हैं कि कौन जीता, कौन हारा। लंबी प्रक्रिया से क्यों गुजरना, इसे तो बड़ी सरलता से सिक्का उछाल कर तय किया जा सकता है, क्षण भर में परिणाम आ जाएगा। एक टीम जीत जाएगी, दूसरी हार जाएगी, फिजूल की मेहनत क्यों करनी। लेकिन तब कोई अर्थ नहीं रह जाएगा, कोई मतलब नहीं रह जाएगा। परिणाम अर्थपूर्ण नहीं होता खेल में, प्रक्रिया ही अर्थपूर्ण होती है। यदि न कोई जीते या न कोई हारे तब भी खेल का मूल्य है, उस कृत्य में ही आनंद है।

लीला के इस आयाम को तुम्हारे पूरे जीवन में जोड़ना है। तुम जो भी कर रहे हो उस कृत्य में इतने समग्र हो जाओ कि परिणाम असंगत हो जाए। भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन को यही उपदेश देते हैं। अर्जुन बड़े गंभीर सवाल पूछ रहा है और कृष्ण बड़े लीलामय, बड़े खेलपूर्ण हैं, बड़े गैरगंभीर हैं। कृष्ण से ज्यादा गैरगंभीर आदमी कभी नहीं हुआ। वे मजे से बांसुरी भी बजा लेते हैं और उतने ही मजे से सुदर्शन चक्र भी चला लेते हैं। गोपियों के साथ रास रचा लेते हैं और रणभूमि में अपनी जान दांव पर भी लगा देते हैं। उनके लिए सारा जीवन एक खेल है।

मुझे याद आता है, एक फिल्म अभिनेता एक बार ओशो के पास आया। और उसने कहा कि मेरी डायरी में कुछ सूत्र लिख दें जो मेरी जिंदगी में काम आएं। ओशो ने

उसकी डायरी में लिखा– जीवन को ऐसे जियो जैसे वह अभिनय है और अभिनय को ऐसे करो जैसे वह असली जिंदगी है। बड़ा प्यारा सूत्र दे दिया, यह तो धर्म की मूलभूत देशना हो गई। अपने मन के खेलों को जरा भीतर परखना, मन कैसे–कैसे खेल करता है। यह मन कभी कहता है कि मानवता की सेवा करना है, धरती पर स्वर्ग बसाना है और अभी दो मिनट भी न बीतेंगे और ये मन कुछ उपद्रव और उत्पात करने की सोचने लगेगा, आतंकवादी बनने की सोचने लगेगा। ये मन के विचार आवारा बादल हैं आते–जाते। साक्षीभाव से इनका मजा लो, तुम तो अड़िग चट्टान हो, इस खेल का मजा लो। ये बादल बड़े गरज रहे हैं, बरस रहे हैं, बड़ा उत्पात मचा रहे हैं, जैसे बड़ा कुछ होने वाला है। कुछ नहीं होने वाला, ये बादल अभी विदा हो जाएंगे, समाप्त हो जाएंगे। चीजों को जरा गैरगंभीर तरीके से देखना शुरू करो, एक तमाशे की भांति अपने मन को देखो, मन तुमसे क्या–क्या कहता है, कैसी–कैसी महान बातें करता है, कोई भी उनका मूल्य नहीं। मन की किसी बात का कोई मूल्य नहीं। सुनो ये चुटकुले– और जरा गैरगंभीर बनो।

विचित्तर सिंह ने अपनी प्रेमिका से कहा कि क्या कहना आपकी अदा, आपकी बोली, आपकी सूरत, आपके दांत और आपकी मुस्कुराहट, आपकी जुल्फें और आपकी आंखें हे भगवान कोई एकाध चीज तो ठीक होती। प्रेमिका बोली– लोग कहते हैं कि भगवान ने आपको बड़ी फुरसत से बनाया है, जरूर बनाया होगा क्योंकि फालतू काम फुरसत में ही किए जाते हैं।

किसी ने एक बस ड्राइवर से पूछा कि आप बस में कितने घंटे रहते हैं? ड्राइवर ने कहा 24 घंटे। पूछने वाले ने पूछा कि कैसे? ड्राइवर ने कहा कि अजी! आठ घंटे सरकारी बस में, बाकी के 16 घंटे बीबी के वश में।

हम 24 घंटे मन के वश में हैं। और किस प्रकार हम वश में हैं, गंभीरता की वजह से। यह गंभीरता अगर टूट जाए तो हम मन के इस जाल से बाहर निकल सकते हैं। गैर गंभीर हो जाओ और मन से तादात्म्य टूट जाता है। लोग मुझसे पूछते हैं कि आप धार्मिक प्रवचन में लतीफे क्यों सुनाते हैं? मन से तादात्म्य तोड़ने का इससे सुंदर कोई उपाय नहीं। जब क्षण भर के लिए तुम हंसते हो, गैर गंभीर होते हो, लीलाभाव में आते हो, अचानक मन से पृथक अपनी आत्मसत्ता में स्थित होते हो। काश, इस कला को अगर तुम पकड़ लो तो अपने सारे जीवन पर फैला सकते हो।

वैज्ञानिकों ने खोज की है– हम जिसे अपना ज्ञान, अपना मन, अपना विचारों का संग्रह कहते हैं, वह एक मेकैनिकल चीज है, वह भी एक प्रकार का पदार्थ ही है। मस्तिष्क की सेल्स में स्मृतियां अंकित हैं। अब तो वैज्ञानिकों ने उपाय किए हैं खोपड़ी में इलेक्ट्रोड लगा के कोई किसी खास मेमोरी को जगाया जा सकता है।

जितनी बार बटन दबाएंगे, इलेक्ट्रोड से वहां करेंट भेजेंगे, हर बार वही स्मृति आपके मस्तिष्क में छा जाएगी। अभी एक आदमी पर प्रयोग करते थे, तीन सौ बार उसे बार-बार, बार-बार एक ही स्मृति दिखाई गई। तीन सौ बार के बाद उसके भीतर साक्षीभाव जग गया, यह स्पष्ट हो गया कि यह तो स्मृति है, यह तो ऐसे ही किसी जैसे फिल्म की कहानी, जैसे किसी कैसेट में भरी हुई आवाज या ग्रामोफोन रिकार्ड या सीडी में भरी हुई कोई आवाज या फिल्म जब चलाओ तो फिर वही चल पड़ेगी। इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है। काश, तुम इसे फिल्म की भांति मजे से देखने लगो, तब एक आश्चर्य की घटना घटेगी, तुम साक्षी हो जाओगे। वह आवारा बादल घूमेंगे, गरजेंगे, बरसेंगे, चमकेंगे तुम उनका मजा लोगे, तुम जानोगे कि हम तो शाश्वत, सनातन चट्टान हैं। खेल को खेल की भांति लो।

पुराने जमाने में लोग ज्यादा खेलपूर्ण थे। ओशो ने वर्णन किया है कि जब वे छोटे थे, वे देखते थे, दुकान में दर्जी के कपड़े की दुकान थी, ग्राहक आते, मोलभाव करते। पांच रुपए की चीज है ज्यादा ये पच्चीस रुपए उसकी कीमत बताएंगे। ग्राहक को भी पता है कि यह बहुत ज्यादा बता रहे हैं। फिर धीरे-धीरे खिसकना शुरू होगा, ग्राहक कहेगा दो रुपया, वे पच्चीस से धीरे-धीरे 22 पर आएंगे, फिर ग्राहक ढाई रुपए पर पहुंचेगा, वह बीस रुपए पे आएंगे। घंटा भर की बकझक के बाद पांच रुपए की चीज 6 रुपया 7 रुपया में बिकेगी। कभी-कभी साढ़े चार में भी बिकेगी। लेकिन खेल का एक मजा था। फिर धीरे-धीरे पश्चिम में मशीनें आ गई, छपी हुई कीमत हो गई, फिक्स। अब तो ग्राहक की भी जरूरत नहीं, दुकानदार की भी जरूरत नहीं, कंप्यूटर ही सारा काम कर देते हैं और भविष्य में सारा काम मशीनें करने लगेंगी। लेकिन याद रखना, खेल खत्म हो जाएगा। वे जो दुकानदार और ग्राहक का खेल था मोलभाव करने का, भाव-ताव करने का कभी किसी को रुपया-दो रुपया का नुकसान होता था किसी को थोड़ा-बहुत लाभ होता था, वह बात गौण थी, वह खेल मजेदार था।

आधुनिक जगत में हम धीरे-धीरे खेल को खत्म करते जा रहे हैं। और फिर हम कहते हैं जीवन का अर्थ क्या। पश्चिम में किताबें लिखी जाती हैं कि आत्महत्या क्यों न कर ली जाए। तुमने जिंदगी का सारा खेल खत्म कर दिया। भारत में शादी होती है, दो-चार सौ आदमी चले बारात में, घोड़े पर चढ़े हैं दूल्हा राजा तलवार लटकाए, बैंड-बाजे बज रहे हैं, पटाखे फूट रहे, भारी उपद्रव हो रहा है। वह पूरा खेल है। पश्चिम के लोगों ने सोचा इन सब की क्या जरूरत, पति-पत्नी दोनों कोर्ट में जाएं, कागज पे दस्तखत करें हो गई शादी। उन्होंने खेल खत्म कर दिया। लेकिन याद रखना, खेल खत्म होने के साथ प्रेम भी खत्म हो गया और फिर सामने तलाक आ गया। स्वीडन में विवाह ही खत्म हो गया और आज जो स्वीडन में हुआ कल वह सारी दुनिया में होने

वाला है। खेल का अपना मजा है। भगवान शिव कह रहे हैं हे पार्वती! मन के इन खेलों को खेलों की भांति देखो, मन के विरोधी और दुश्मन न बनो। खेल के साथ समयहीनता का एहसास होता है, खेल के साथ तुम उद्धेश्य केन्द्रित नहीं रह जाते, भविष्योन्मुख नहीं रह जाते, तुम परिणाम के प्रति अनासक्त हो जाते हो, वर्तमान में आ जाते हो, भविष्य और भूत तुम्हारे लिए मिट जाते हैं। ये सारी बातें खेल के साथ जुड़ी हुई हैं। विचारों से दुश्मनी मत साधना।

कई लोग यहां आते हैं पूछते हैं यहां ध्यान में इतना नृत्य चलता है, नृत्य का क्या फायदा? लो, नृत्य का भी कुछ फायदा होना चाहिए। फिर तुम पूछोगे ध्यान का क्या लाभ? कोई डालर बरसेंगे क्या कि दुकान मे ज्यादा ग्राहक आएंगे ध्यान करने से। ध्यान का आनंद है, नृत्य का आनंद है, लाभ की भाषा में न सोचो। लोग कहते हैं हम परमात्मा को पा लें फिर उससे क्या होगा? तुम परमात्मा से कुछ नौकरी करवाना चाहते हो, तुम्हारे इरादे बड़े खतरनाक लगते हैं। परमात्मा का आनंद है, लाभ कुछ भी नहीं। धर्म के जगत में लाभ की भाषा में मत सोचना, वरना तुम मंदिर में नहीं जाओगे, हमेशा बाजार में पहुंच जाओगे। फायदे की बात ही मत करना। आनंद है, अगर तुम आनंद को फायदा कहते हो ठीक। लेकिन तुम्हारे फायदे की दृष्टि बड़ी बचकानी है। उनसे मुक्त होओ।

जीवन के इस खेल को खेल की तरह लो। जैसे टेलीवीजन के पर्दे पर कोई चित्र आता। न तो तुम उसे रोकने की कोशिश करते, न उसे हटाने की कोशिश करते। कोई सुंदर स्त्री आई पर्दे पर कहानी में, न तो तुम उसे पकड़ने की कोशिश करते और न कहते हो कि हटाओ इसको मेरे मन में वासना पैदा करा रही है। तुम भलीभांति जानते हो अभी आई है अभी चली जाएगी, वह टिकने वाली नहीं। तुम इतने परेशान क्यों हो रहे, गंभीर क्यों हो रहे हो। जैसा टेलीवीजन के साथ करते हो, वैसा ही अपने मन के साथ करो। मन जो भी दृश्य दिखा रहा है, अभी आया अभी चला जाएगा। आवारा बादल है ये चंचल, इसकी कोई जगह नहीं है। इस खेल का मजा लो। यह इंद्रधनुष बना रहा है सुंदर देखो, अभी बस मिटने वाला है। अपने शाश्वत हो जाने का एहसास हो जाएगा अगर तुम खेल को खेल की भांति देखने लगो। बड़ी अद्भुत विधि है, सच पूछो तो यह विधि नहीं। विज्ञान भैरव तंत्र की अंतिम चार विधियां, बेहतर होगा हम इनको अविधियां कहें, नो मेथर्ड। समझने की हैं, करने की नहीं।

बहुत–बहुत धन्यवाद।

विधि-111

ज्ञान-अज्ञान को छोड़ो

हे प्रिये, ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व पर ध्यान दो। फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको।

दुनिया में चार प्रकार के लोग हैं। एक वे जो अपने केन्द्र में स्थित होकर, स्वयं में स्थित होकर जीते हैं, वे परिपूर्ण रूप से स्वस्थ हैं, धार्मिक अर्थ में स्वस्थ। आप्तकाम, निष्काम, फलाकांक्षा रहित, शांत, प्रफुल्लित और आनंदित। उन्हें हम संत कहते हैं, परमहंस कहते हैं। शिवत्व को उपलब्ध।

दूसरे प्रकार के लोग जो अपनी केन्द्र से दूर हट गए और परिधि पर स्थिर हो गए हैं। स्थायी रूप से परिधि पर ही जिन्होंने निवास बना लिया वे विक्षिप्त हैं, पागल हैं, तनावग्रस्त हैं, अशांत हैं और असंतुलित हैं। सामान्य आदमी केन्द्र और परिधि के बीच में एक छोटी सी रेंज में फिक्स्ड है। थोड़ा सा बाएं, थोड़ा सा दाएं डोलता रहता। जब तुम क्रोधित होते हो तो क्षणिक रूप से पागल हो जाते हो, थोड़े से प्रेमपूर्ण होते हो तो थोड़े बुद्धत्व के निकट पहुंच जाते हो। एक छोटी सी रेंज है। दोनों में डोलते रहते, कभी

घृणा कभी प्रेम, कभी शांति कभी अशांति, कभी परेशानी कभी शीतलता कभी उष्णता।

फिर एक चौथे प्रकार के लोग हैं, जिन्हें हम कहें कलाकार, चित्रकार, कवि, लेखक उनकी रेंज बड़ी है डोलने की। कभी वे बिल्कुल परिधि पर विक्षिप्तता तक पहुंच जाते हैं और कभी बिल्कुल निकट बुद्धत्व तक पहुंच जाते हैं। तो ये चार प्रकार के लोग हैं, सामान्य आदमी छोटी सी रेंज में फिक्स्ड, कलाकार, संवेदनशील, सृजनशील लोग उनकी रेंज बड़ी है, विक्षिप्त पूरी तरह परिधि पर स्थित और बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति पूरी तरह केन्द्र में स्थित। इस केन्द्र में स्थित होना ही सारी ध्यान विधियों का लक्ष्य है। विज्ञान भैरव तंत्र में भगवान शिव के साथ इस सुंदर यात्रा पर चलते–चलते अब हम क्रमशः आखिरी पड़ाव की ओर जा रहे हैं। बड़े सूक्ष्म, गौरपूर्वक, होश से इन विधियों को समझना। ये जो अंतिम चार विधियां हैं वास्तव में विधियां नहीं, अविधियां हैं, नो मैथर्ड, नो टेकनीक। समझ की बात है, समझ जाओ तो तुरंत घटना घट जाए।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में मजाक। किसी के यहां गया था जनमदिन पर बधाई देने छोटे बच्चे को। सभी लोग कह रहे थे कि बेटा शतायु हो, नसरुद्दीन ने सोचा क्या कहूं? नसरुद्दीन ने उससे कहा कि बेटा तुम सौ साल और पांच दिन तक जीना। लोग थोड़ा चकित हुए यह किस प्रकार का आशीर्वाद, सौ साल और पांच दिन। लोगों ने पूछा पांच दिन और क्यों जोड़ रहे हैं? नसरुद्दीन ने कहा, मैं नहीं चाहता अचानक सौ साल का होके ये मर जाए। धीरे–धीरे मौत नहीं होती, मौत जब भी होगी अचानक ही होगी। क्रमिक और त्वरित दो प्रकार की विधियां नहीं होती, स्मरण रखना। जीवन क्रमिक हो सकता है, मौत हमेशा त्वरित ही होगी। चाहे सौ साल बाद हो, चाहे सौ साल पांच दिन बाद हो। एक क्षण पहले तुम जीवित होओगे, एक क्षण बाद मुर्दा हो जाओगे। मृत्यु सदा क्षण भर में ही होगी। ग्रेजुअल डेथ जैसी कोई चीज नहीं होती। ठीक इसी प्रकार समाधि का जो अंतिम शिखर है वह भी अचानक ही होता है, धीरे–धीरे नहीं होता।

आज की विधि में भगवान शिव कहते हैं– उस शिखर की तरफ इशारा– कहते हैं, हे प्रिये! ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व, दोनों पर ध्यान दो। फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको। उपनिषद के ऋषि कहते हैं– अज्ञानी तो अंधकार में भटकते ही हैं, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। उपनिषद पढ़ने पर लगता है कि शायद कोई प्रिंटिंग मिस्टेक हो गई, कुछ एडिटिंग की भूल हो गई। ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। नहीं, कोई भूल नहीं हुई, ऋषि बिल्कुल ठीक कह रहा है। कुछ लोगों ने अज्ञान को पकड़ लिया है वे भटक रहे हैं और कुछ लोगों ने ज्ञान को पकड़ लिया है

और ज्ञान ज्यादा बड़ी भटकन और उलझाव पैदा करता है अज्ञान की तुलना में। सावधान ज्ञान से। हम जिसे ज्ञान कहते हैं वह है क्या? वह आब्जेक्टिव इन्फार्मेशन है। बाहर की वस्तुओं के बारे में जानकारी, वह केवल विचारों का संग्रह है। बाहर तुमने अपने घर में किताबों की आल्मारी बना रखी है, ठीक वैसे ही भीतर भी एक संग्रहालय है। वहां विचार इकट्ठे हैं। बुद्ध ने उसे ठीक नाम दिया था, स्मृतिआलय, स्टोर हाउस आफ द मेमोरी। इस ज्ञान को अर्जित करने में हम कितना समय व्यर्थ करते हैं।

मैंने सुना है एक चुटकुला– शिक्षा क्या है? किसी ने पूछा? उत्तर मिला– जिंदगी का एक चौथाई हिस्सा इस बात का ज्ञान हासिल करने में व्यर्थ करना कि बाकी का तीन चौथाई हिस्सा किस तरीके से व्यर्थ किया जाए। हमारी सारी शिक्षा, हमारा सारा ज्ञान हास्यास्पद है। हम क्या जानते हैं और क्या हम जान सकते हैं। जानकारी बस है, जाना तो नहीं। आत्मज्ञान ही एकमात्र वास्तविक ज्ञान है, हम केवल स्वयं को ही जान सकते हैं। ओशो का एक वचन मुझे स्मरण आता है। वे कहते हैं धन्य हैं वे जो स्वयं को खोजते, स्वयं को पाते और स्वयं ही हो जाते हैं। स्वयं के अतिरिक्त कुछ और जानने का उपाय नहीं। कई बार पति–पत्नियां मेरे पास आते हैं एक–दूसरे की शिकायत करते कि कहते हैं कि बीस साल हो गए इनके साथ रहते–रहते अभी तक हम इनको समझ नहीं पाए। कौन, किसको, कब समझ पाया। आज तक कोई किसी को नहीं समझ पाया। समझना हो भी नहीं सकता, हम केवल स्वयं को ही जान सकते हैं। दूसरा सदा ही अपरिचित रह जाता है।

वैज्ञानिकों की खोजों का इतिहास देखो पिछले तीन सौ सालों में कितनी बार उन्होंने अपने ज्ञान को बदला, अपने सिद्धांतों को बदला। वह वैज्ञानिक मर भी नहीं पाता कि दूसरी पीढ़ी के लोग आ जाते हैं और उसकी द्वारा खोजी चीजों को गलत सिद्ध कर देते हैं, वे कुछ और खोज लेते हैं। बाहर ज्ञान संभव नहीं, कामचलाऊ जानकारी है। जीवन जीने के लिए हमारी खोज स्वयं के भीतर होनी चाहिए, वहां से रसधार आए तब जीवन का परमानंद फलित होता है। शिव बड़ी अद्भुत बात कह रहे हैं– कह रहे हैं अज्ञान को तो छोड़ ही दो, ज्ञान को भी छोड़ दो। अज्ञान को छोड़ना आसान, हम सभी चाहते हैं कि अज्ञान छूट जाए। ज्ञान को हम पकड़ना चाहते हैं, यही हमारी मुसीबत है। जीवन के हर मामले में द्वंद है और इनमें से हम एक को हटाना और एक को बचाना चाहते हैं जो कि नामुमकिन है, ऐसा कभी नहीं हो सकता। ज्ञान और अज्ञान दोनों सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। आपने आइंसटीन की रिलेटीविटी की थ्योरी पढ़ी होगी, सब चीजें सापेक्ष हैं। जिसे हम ऊपर कहते हैं वह नीचे की तुलना में है, जिसे हम पूरब कहते हैं वह पश्चिम की तुलना में है, जिसे हम भारी कहते हैं वह हल्के के तुलना में है। सब चीजें तुलनात्मक हैं, ज्ञान और अज्ञान भी तुलनात्मक हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा सुबह–सुबह, कहो भाई कैसे हो? नसरुद्दीन ने कहा, अरे वाह! इतना कठिन सवाल पूछ लिया, कैसे हो। किसकी तुलना में। नसरुद्दीन ने कहा इस शहर में बहुत लोग हैं जिनकी तुलना में मैं स्वस्थ हूं, जिनकी तुलना में मैं गरीब हूं, किसी की तुलना में अमीर हूं, किसी की तुलना में मैं बीमार हूं, किसी की तुलना में मैं बुद्धिमान हूं, किसी की तुलना में मैं मूर्ख हूं। तुम पूछ रहे हो कैसे हो? अरे! मैं कैसे बता दूं, किसी का नाम लो उससे तुलना करके बताया जा सकता है बस। बाहर का सारा ज्ञान तुलनात्मक है, रिलेटिव है। और जब हम कहते हैं सारा ज्ञान सापेक्ष है इसका अर्थ क्या हुआ, इसका अर्थ हुआ कि उसमें अज्ञान भी शामिल है। जब हम कहते हैं कोई बात 70 प्रतिशत सही होने की संभावना है, इसका अर्थ हुआ 30 प्रतिशत गलत होने की संभावना है। पहले वैज्ञानिक बड़े जोश के साथ कहा करते थे कि उन्होंने जो खोजा है वह बिल्कुल सत्य है, द अल्टीमेट ट्रूथ, बिल्कुल अंतिम बात खोज ली गई। लेकिन अब धीरे–धीरे वैज्ञानिकों के कदम डगमगाने लगे हैं, अब वे ऐसी निश्चित मत वाली बात नहीं कहते। अनिश्चय की बात करने लगे।

वैज्ञानिकों ने फिजिक्स में एक सिद्धांत खोजा है, उसका नाम है– द प्रिंसिपल ऑफ अनसर्नेटटी, अनिश्चितता का नियम। बड़ा अद्भुत वचन, अनिश्चतता का नियम। नियम का तो मतलब ही होता था कि चीजें निश्चित हैं, सुनिश्चित हैं। जैसे–जैसे फिजिक्स की गहरी खोज होती गई पता चला कि नहीं, कुछ भी सुनिश्चित नहीं है, चीजें अनिश्चित हैं और अनिश्चित ही रहेंगी। केवल स्वयं के भीतर ही सुनिश्चित हुआ जा सकता है। अज्ञान को भी छोड़ दो, ज्ञान को भी छोड़ दो फिर पीछे क्या बचेगा? पीछे जो बचेगा वह तुम हो, अपने केन्द्र में स्थित। भगवान शिव कह रहे हैं– अस्तित्व को छोड़ दो, और अनस्तित्व को भी, जो है उसे भी जाने दो और जो नहीं है उसे भी जाने दो। जापान के झेन फकीर बोकोजु के पास शिष्य आया और उसने कहा कि गुरुदेव मैंने शून्यता को उपलब्ध कर लिया है, मैं बिल्कुल खाली हो गया हूं। बोकोजु ने डंडा उठा के उसके सिर पे मारा और कहा कि जाओ इस शून्यता को भी कचरे में फेंक कर आओ। अनस्तित्व को भी छोड़ दो। जब तक तुम्हें एहसास हो रहा है कि मैं शून्य हो गया हूं, अभी पूरी तरह शून्य हुए नहीं। यह एहसास किसे हो रहा है, इस शून्यता को भी जाने दो, तब केवल तुम बचोगे पीछे।

शिव कहते हैं– दोनों को छोड़ दो ताकि पीछे तुम बच सको। जीवन के विभिन्न द्वंदों में इस प्रयोग को करके देखना। परमगुरु ओशो ने इस विधि को समझाते हुए कहा– जन्म पर ध्यान दो, एक दिन तुम पैदा हुए थे, फिर तुम बड़े हुए, जवान हुए, इस पूरे विकास पर ध्यान दो, फिर तुम बूढ़े होने लगे और एक दिन तुम मर जाओगे।

बिल्कुल आरंभ से उस क्षण की कल्पना करो जब तुम्हारे माता–पिता ने तुम्हें धारण किया था और माँ के गर्भ में तुमने प्रवेश किया था। वहां से लेकर अंत तक देखो, जहां तुम्हारा शरीर चिंता पर जल रहा है और तुम्हारे संबंधी तुम्हारे चारों ओर खड़े हुए हैं। फिर इन दोनों को छोड़ दो, वह जो पैदा हुआ और वह जो मरा, इन दोनों को छोड़ दो और देखो तुम अभी भी हो जो न कभी पैदा हुए और न कभी मरोगे। ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको। यह तुम किसी भी विधायक या नकारात्मक घटना में कर सकते हो। तुम यहां बैठे हो, मैं तुम्हारी ओर देखता हूं, मेरा तुमसे संबंध बनता है, जब मैं अपनी आंखें बंद कर लेता हूं तो तुम नहीं रह जाते, तुमसे मेरा नाता टूट जाता है। संबंध और असंबंध दोनों को छोड़ दो, रिक्त हो जाओ और फिर उस रिक्तता को भी जाने दो। ज्ञान और अज्ञान दोनों का त्याग कर दो ताकि पूर्णतः रिक्त हो जाओ, फिर रिक्तता को मत पकड़ लेना। दो तरह के लोग हैं, कुछ ज्ञान से भरे और कुछ अज्ञान से भरे। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं, उनका अहंकार अज्ञान से बंधा है, कुछ लोग कहते हैं हम ज्ञानी हैं उनका अहंकार ज्ञान से बंध गया। ज्ञान और अज्ञान दोनों को हटा दो ताकि तुम दोनों से अलग हो सको, न अज्ञानी, न ज्ञानी। विधायक और नकारात्मक दोनों को विदा कर दो। फिर तुम कौन हो? अचानक वह कौन तुम्हारे सामने प्रगट हो जाएगा, तुम उस अद्वैत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओगे जो दोनों के पार है, पॉजिटिव और निगेटिव दोनों के पार।

आधुनिक भौतिकविद कहते हैं परमाणु से और सूक्ष्म कणों की खोज करने पर कि वहां वे पार्टिकल्स और एन्टीपार्टिकल्स को पाते हैं, कण और प्रतिकण। और जब एक कण एक प्रतिकण के सामने आता है तो दोनों गायब हो जाते हैं, एनीमेशन हो जाता है। सबएटामिक लेवल पर प्रलय की घटना घट जाती है। बिग बैंग थ्योरी को मानने वाले कहते हैं कि सारा जगत शून्य से उपजा। शून्य ही विभाजित हो गया विधायक और नकारात्मक में और जब भी ये विधायक और नकारात्मक एक–दूसरे के आमने–सामने होंगे, दोनों विलीन हो जाएंगे, एनहिलेशन हो जाएगा। सूफी जिसे कहते हैं फना हो जाना, सब मिट जाना। बुद्ध इसे शून्यता कह रहे हैं। विज्ञान भैरव तंत्र की 111वीं विधि में भगवान शिव उस शून्यता के भी पार इशारा कर रहे हैं, गौर से पकड़ोगे इशारा तो ही समझ में आएगा। वहां कौन है, जहां न पूर्णता है न शून्यता, न कुछ जानने वाला, न कुछ जाना जाने योग्य, नथिंग टू नो एण्ड नो नोवियर, ज्ञाता और ज्ञेय जहां दोनों खो गए, वहां केवल ज्ञान रह जाता है। वह कैवल्य ही शिवत्व है। अपने केन्द्र में डुबकी मारनी है।

विज्ञान भैरव तंत्र की ये छोटी–छोटी विधियां अहंकारियों को आकर्षित न कर सकेंगी, अहंकार को रस होता है कठिन में। ये विधियां इतनी सरल हैं कि अहंकारियों

को इसमें रस नहीं आएगा। अच्छा ही है, उनके ये काम की भी नहीं। यहां तो पैनी समझ वालों का काम है। समझो, जानो और वही हो जाओ। तत्वमसि श्वेतकेतु।

धन्यवाद।

विधि-112

आकाश में प्रविष्ट होओ

आधारहीन, शाश्वत, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ।

सभी मित्रों को नमस्कार।

प्यारे मित्रों, आज हम विज्ञान भैरव तंत्र के अंतिम सूत्र को ले रहे हैं। अद्भुत रही यह यात्रा। ये 112 सूत्र स्वयं में भीतर के डूबने के। यह अंतिम सूत्र परम विधि है, इसको हम अविधि भी कह सकते हैं क्योंकि वास्तव में इसमें करने को कुछ भी नहीं है। समझ लो, जान लो और बस वही हो जाओ। करना उसे पड़ता है जो समझ नहीं पाता, ठीक से बात को समझ लो तो करने को कुछ है नहीं। तुम वह आकाश स्वरूप ब्रह्म स्वयं हो। तुम्हें होना नहीं है, कुछ नया बनना नहीं है। संसार में कुछ पाने के लिए कुछ बनना होता है, अध्यात्म के जगत में कुछ पाने के लिए सिर्फ जागना होता है, भीतर देखना होता है। जिसे तुम पाने चले वह पहले से ही मौजूद है, इसलिए धर्म कोई एचीवमेंट नहीं है, उपलब्धि नहीं है। बुद्ध जब परमज्ञान को उपलब्ध हुए तो किसी ने उनसे पूछा कि आपको क्या मिला? बुद्ध ने कहा मिला कुछ भी नहीं, कुछ खो गया।

अहंकार खो गया, अज्ञान खो गया, मूर्छा खो गई, सपने खो गए, मन के प्रक्षेपण खो गए, मायावी जगत खो गया। मिला कुछ भी नहीं, मिला वही जो पहले से ही मिला हुआ था। उसको मिलना नहीं कहा जा सकता।

आज के अंतिम सूत्र में भगवान शिव कहते हैं पार्वती से कि हे देवी! आधारहीन, शाश्वत्, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ। सर्वाधिक अद्भुत टेकनीक, इससे ऊपर और कोई विधि नहीं हो सकती। अपने भीतर के अंतराकाश में प्रवेश होओ। कोई आधार नहीं जिसका, जो अथाह है, जो निश्चल है। याद रखना, दुनिया में सबकुछ चल रहा है। इस अंतरिक्ष में सूरज चल रहा, चांद चल रहा, तारे चल रहे, पृथ्वी घूम रही, एक-एक परमाणु में इलेक्ट्रॉन्स घूम रहे। कुछ भी यहां निश्चल नहीं है। लेकिन जिस आकाश में ये सारी गतियां हो रही हैं वह स्वयं निश्चल है, उस निश्चल आकाश में प्रवेश होओ। आधारहीन और वह शाश्वत् भी है और सब चीजें क्षणभंगुर हैं। वैज्ञानिक कहते हैं सूरज की उत्पत्ति लगभग दस अरब साल पहले हुई थी। करीब चार अरब साल पहले पृथ्वी और अन्य ग्रह सूरज से टूटकर अलग हुए, बाद में फिर चंद्रमा पृथ्वी से टूटकर अलग हुआ। एक दिन चंद्रमा मिट जाएगा, एक दिन हो सकता है पृथ्वी समाप्त हो जाए, एक दिन हो सकता है सूरज भी ठण्डा हो जाए। रोज-रोज ठण्डा होता जा रहा है, एक दिन समाप्त हो जाएगा। सबकुछ क्षणभंगुर है।

हम एक छोटी सी झोपड़ी बनाते हैं, हो सकता है वह दस-बीस साल रहे। कोई मजबूत लाल किला बनाते हैं, हो सकता है दो-चार हजार साल चले। लेकिन याद रखना, लाल किला भी शाश्वत नहीं है। इस जगत में जो कुछ भी है शाश्वत नहीं है लेकिन जिस आकाश में वे सब हैं वह स्वयं शाश्वत है। हम उस आकाश में प्रवेश करने से क्यों भयभीत होते हैं? वह आकाश हमारे भीतर भी है। उस भय का कारण समझना, हम रिक्तता से डरते हैं, खालीपन से डरते हैं, हम आधारहीन होना नहीं चाहते। कितने लोग मेरे पास आते हैं, कहते हैं कोई साधना बताइए। मैं कहता हूं चुपचाप, शांत, मौन, निराधार हो बैठे रहो। वे कहते हैं नहीं, ऐसा कैसे होगा, कुछ तो आलम्बन दीजिए, कोई मंत्र-जाप ही सही। राम-राम जपें, कुछ तो कहें, माला फेरें, कोई क्रिया बता दीजिए, कोई योग बता दीजिए, श्वास की कोई विधि ही बता दीजिए। वास्तव में ध्यान कोई कृत्य नहीं है। कभी-कभी मुझे झूठ बोलना पड़ता है, कोई विधि बतानी पड़ती है। लेकिन याद रखना इस आशा में बताता हूं कि एक दिन तुम विधि करते-करते थक जाओगे और तब तुम निश्चल हो जाओगे, कुछ भी न करोगे। वह अक्रिया ही ध्यान है, तब तुम आधारहीन, अंतर आकाश में प्रवेश हो जाओगे।

जो निश्चल है उसके लिए तुम्हें भी निश्चल होना होगा। क्रियाएं निश्चल नहीं हो

सकतीं, क्रियाओं में तो सक्रियता है, क्रियाओं में तो कोई आधार है। तुमने मंत्र का भी आधार ले लिया, आधार तो हो गया मन के लिए। भगवान बुद्ध और भगवान महावीर ने ईश्वर को इंकार कर दिया। इसलिए नहीं कि वे नास्तिक थे बल्कि इसलिए, अगर ईश्वर की धारणा साधक के मन में रही तो फिर उसे आधार मिल गया। अपने मन में वह एक छवि खड़ी कर लेगा ईश्वर की, फिर वो प्रार्थना करने लगेगा, फिर बकवास शुरू। वो आकाश की तरह मौन नहीं हो पाएगा। प्रार्थना में फिर शब्द आ जाएंगे, फिर मन चलने लगेगा, निश्चलता नहीं रह जाएगी। तो प्रार्थना को हटाने के लिए ईश्वर को हटाना पड़ा। बुद्ध और महावीर को नास्तिक मत समझना, वे परम आस्तिक हैं। वे शिव की इसी विधि का प्रयोग अपने शिष्यों को सिखा रहे थे कि अंतराकाश में प्रवेश हो जाओ बिना आधार के। बड़ा भयभीत करने वाली स्थिति है, बिना आधार के। जरा सोचो, त्रिशंकु की भांति लटके हुए, तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं, कहीं जाने को भी नहीं, न ऊपर जा रहे न नीचे आ रहे, अंतरिक्ष में बड़ी घबराने वाली स्थिति होगी। इस रिक्तता से डर की वजह से ही हम परमात्मा से चूक रहे हैं, कोई और कारण नहीं है।

इसलिए नहीं कि तुम पापी हो इसलिए परमात्मा नहीं मिल रहा है, इसलिए नहीं कि तुमने पुण्य नहीं किए, इसलिए नहीं कि पिछले जन्मों के कर्म बाधा बन रहे हैं सिर्फ एक बाधा है, तुम रिक्तता को स्वीकार नहीं कर रहे। इस रिक्तता को अगर स्वीकार लो तब यह शून्यता बन जाती है। शून्यता एक पाजिटिव शब्द है, रिक्तता एक निगेटिव शब्द है। घटना एक ही है, अगर तुम नकारात्मक दृष्टि से देखोगे, उसे खालीपन कहोगे और वह खालीपन घबराने वाला होगा। अगर तुम एक पॉजिटिव एटीट्यूड से उसे देखोगे तो वह सुंदर शून्यता होगी। उस शून्यता में लीन हो जाना।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल एक सुनसान रास्ते से रात जा रहे थे। तीन–चार गुण्डों ने उन्हें पकड़ लिया और उनके धन–पैसा छीनने लगे, उनकी जेबों की तलाशी लेने लगे। चंदूलाल बुरी तरह से उनसे लड़े, वे चार थे चंदूलाल अकेले कोई घंटा भर तक मल्ल युद्ध चला। वे लोग कुछ भी न छीन पाए, एक घंटे बाद जाके बामुश्किल चंदूलाल पे काबू पाया, चंदूलाल की जेब में हाथ डाला और आश्चर्य! चंदूलाल की जेब में कुछ भी न था। उन्होंने चदूलाल से कहा, चंदूलाल तुम तो चमत्कार हो, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है और तुम इतना लड़े, इतना लड़े जान दांव पे लगा के और हमारी जान लेने को तैयार थे। अगर तुम्हारे पास दस–बीस हजार रुपए होते तब तुम क्या न करते। चंदूलाल ने कहा हो सकता है तब मैं कुछ भी न करता। उन्होंने कहा क्यों? चंदूलाल ने कहा आई डोन्ट वान्ट टू एक्सपोज माई फाइनेंसियल सेचुवेशन एमंग्स द स्ट्रेंजर्स, बिल्कुल अजनबी लोगों के बीच मैं अपनी दिवालिया हालत प्रगट करना नहीं चाहता। जेब खाली है

इसलिए इतना लड़ रहा था कि तुम्हें पता न चल जाए कि चंदूलाल के पास कुछ नहीं है।

हमारे पास भी कुछ नहीं है, जरा गौर से भीतर देखो क्या है तुम्हारा। यह शरीर तुम्हारा नहीं, यह रूप, यह सौंदर्य, ये इन्द्रियां कुछ भी तुम्हारा नहीं। ये प्रकृति से मिला है वापस अपने पंचतत्त्वों में वापस लौट जाएगा। जिसे तुम मन कहते हो वह भी तुम्हारा नहीं, यह विचारों का संग्रह है तुमने किताबों से, शास्त्रों से, शिक्षकों से, गुरुओं से, माता–पिता से, परिवार से, समाज से, अखबारों से, टेलीवीजन से विचार इकट्ठे किए हैं। यह विचारों का भण्डार मन तुम्हारा नहीं, यह बिखर जाएगा, मृत्यु के साथ समाप्त हो जाएगा। तुम्हारे पास है क्या? जरा गौर से देखो तो सही, जेब बिल्कुल खाली हैं। इतना ही नहीं, जेब ही नहीं है। अगर तुम इस रिक्तता को स्वीकार लो, तब इस महाशून्यता में प्रवेश हो सकता है, वह शून्यता ही निर्वाण बन जाएगी। हैराक्लाइटस ने कहा है कि हम एक नदी में दोबारा नहीं उतर सकते। ओशो ने इसमें सुधार किया है, उन्होंने कहा है नहीं, एक नदी में हम एक बार भी नहीं उतर सकते। जब तक हम ऊपर के पानी को छूते हैं नीचे का पानी बह जाता है। जब हमारा पैर नीचे पहुंचता है तब तक ऊपर का पानी बह जाता है। एक नदी में एक बार भी नहीं उतर सकते।

जगत परिवर्तनशील है, इस परिवर्तनशील में हमारा रस है। इस चलती हुई, बहती हुई नदी में हमारा रस है और इसलिए हम छुद्र चीजों में अटक जाते हैं और विराट से चूक जाते हैं, निश्चल आकाश से हम वंचित रह जाते हैं। शाश्वत को अगर जानना है तो क्षणभंगुर से और परिवर्तनशील से नाता तोड़ना होगा। आपके कमरे में दीवाल घड़ी लगी है और लगातार टिक–टिक कर रही, धीरे–धीरे आपको पता ही नहीं चलता। जब आपने नई–नई घड़ी खरीदी होगी, तब दो–चार दिन सुनाई पड़ी होगी, फिर उसका पता ही नहीं चलता। हृदय धड़क रहा है, आवाज कर रहा है, श्वास चल रही है जिंदगी भर से उसका एहसास ही नहीं, क्योंकि वह सदा–सदा मौजूद है। ठीक ऐसे ही वह निश्चल आकाश हमारे भीतर सदा मौजूद है और जो सदा–सदा है हम उसकी फिकर करना छोड़ देते हैं। जो अभी है, अभी नहीं हो जाएगा हमें उसकी चिंता हो जाती है। सौंदर्य अभी है, कुछ सालों में विलीन हो जाएगा। ये युवावस्था सदा न रहेगी, बुढ़ापा आने वाला है, स्वास्थ अभी है जल्दी बीमारियां घेर लेंगी, धन अभी है लगता है कि भोग लो पता नहीं कब खो जाए। क्षणभंगुर में हमारा रस है और इसलिए हम शाश्वत आकाश से चूकते चले जाते हैं।

अपने रस को बदलो, क्षणभंगुर में, परिवर्तनशील में कितना तो जी लिए सिवाय दुख के और क्या हाथ लगा, अब अपना मुख अपने भीतर की तरफ मोड़ो। भीतर के आकाश के तीन गुण विशेषरूप से याद रखना– पहला वह निराधार है, दूसरा वह

अनश्वर है और तीसरा वह शाश्वत मौन से आपूरित है। तुम्हें मौन होना होगा। शब्दों और भाषाओं पर जो तुम्हारी पकड़ है उसे छोड़नी होगी। विचारों, धारणाओं और विश्वासों से रिक्त होना होगा। उस अमृत और अनश्वर और अविनाशी में प्रवेश की ये पूर्व शर्तें हैं। अगली बात समझना, समाधि में डूबना, उस निश्चल आकाश में प्रवेश करना मौत के समान लगता है। कहते हैं न लोग, डूबते को तिनके का सहारा। जब समाधि और शून्यता घटित होने लगती है लोग घबरा जाते हैं और वापिस लौट आते हैं। अमन की दशा के बिल्कुल किनारे पहुंचकर फिर वापस अपने मन में लौट आते हैं, डूबते को तिनके का सहारा।

मैंने सुना है एक आदमी मरणासन्न था, बड़ी तकलीफ में था। उसने डाक्टर को बुलाया, डाक्टर आया उसने कहा कि डाक्टर साहब! मैं इतनी तकलीफ में हूं कि मर जाना चाहता हूं। कृपया मुझे कोई इंजेक्शन दे दीजिए, मैं समाप्त हो जाऊं, अब मैं जीवित रहना नहीं चाहता। डाक्टर ने कहा आपने बहुत अच्छा किया जो मुझे बुलावा भेजा। समाधि का बुलावा मौत का बुलावा है। जैसे तुम हो, वह तो समाप्त होगा, तुम्हारा व्यक्तित्व विदा होगा। और तभी वह प्रगट हो सकता है जो तुम्हारे भीतर छुपा हुआ है। मैंने सुनी है, जापान के फकीर लिंची की कहानी। वह प्रवचन दे रहा था। किसी ने उससे पूछा कि मैं कौन हूं? लिंची उठा मंच से नीचे उतरा जाकर उस आदमी की गर्दन पकड़ी। वह तो भयभीत हो गया। लिंची ने कहा आंख बंद कर और भीतर देख। उस आदमी ने आंख बंद की। भय की उस अवस्था में अत्यंत जागरूकता पूर्वक उसने स्वयं का निरीक्षण किया, बाहर बहने वाली ऊर्जा स्वयं के भीतर गई और भीतर का अंतराकाश उद्घाटित हो गया। लिंची ने कहा बस, यही, यही है तू। नाम, रूप सब झूठे हैं, यह जो इनर स्पेस है, यह जो अंतराकाश है वही तेरा वास्तविक स्वरूप है। हम नामरूप छोड़ने से डरते हैं और इसलिए मृत्यु से, ध्यान से, समाधि से, प्रेम से हम भयभीत हैं। ये चारों घटनाएं एक समान हैं।

आधुनिक युग में कुछ लोग तो गहरी नींद तक से डरने लगे हैं। फोबिया के मरीज रात को सोते नहीं, अनिद्रा के रोगी हो गए हैं। और कारण, कारण डर लगता है गहरी नींद में, खो जाएंगे, मिट जाएंगे। समाधि और सुषुप्ति समान हैं। अपने भीतर के निश्चल आकाश में डूबना सीखो और वह ऐसी खाई है जिसमें गिरे तो बस फिर गिरते चले जाओगे, फिर वापिस लौटना न होगा। तो प्यारे मित्रों, आज की इस अंतिम विधि के साथ मैं एक छोटा सा गीत कहना चाहूंगा–

कोई पैगंबर ही वीराने में आया होगा,

वरना आंधी में दीया किसने जलाया होगा।
जर्रे जर्रे में जड़े होंगे कुंआरे सिजदे,
हरेक बुत को खुदा उसने बनाया होगा।
प्यास जलते हुए कांटों की बुझाई होगी,
रिसते पानी को हथेली पे सजाया होगा।
खून के छींटे कहीं पूछ न लें राही से,
किसने वीराने को गुलजार बनाया होगा।
कोई पैगंबर ही वीराने में आया होगा।।

कुछ प्रेरणा जागे, कुछ प्यास और अभीप्सा जागे स्वयं को जानने की, आत्मज्ञान की उस यात्रा पर चलना। इसी आशा और उम्मीद के साथ तंत्र सूत्र की यह अंतिम विधि। आप सबको बहुत–बहुत धन्यवाद।

तंत्र सूत्र संबंधी प्रश्नोत्तर चर्चा

1. आत्म स्मरण क्यों जरूरी है, यह कैसे मनुष्य को रूपांतरित करता है?

जन्म के बाद बच्चे को अनुशासन सिखाना पड़ता है, वह अपने निसर्ग से च्युत हो जाता है। चेतन अचेतन के विभाजन बन जाते हैं। पशु जैसी सहजता से टूटकर अहंकार की परिधि पर जीना उसकी मजबूरी है। स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। इस प्रक्रिया में दुख, तनाव, चिंता पैदा होती हैं। अहंकार रूपी झूठा केन्द्र समाज में रहने हेतु अनिवार्यता है। इसलिए आत्म स्मरण सिखाना पड़ता है– पुनः स्वयं के सच्चे केन्द्र में प्रतिष्ठित होना। धीरे–धीरे जागरण के पश्चात सपने और नींद में भी अपनी याद बनी रहे तो रूपांतरण हो जाएगा। आनंद और स्वतंत्रता तब ही संभव हैं।

2. जीवन के विधायक आयामों को देखना क्या चुनावपूर्ण नहीं है? और क्या यह समग्र सत्य के साक्षात्कार के विरोध में नहीं है?

यह चुनाव है। लेकिन नकार में जीने वाला व्यक्ति कभी अचुनाव में छलांग नहीं ले सकता। दुख–नरक से मोक्ष–आनंद में यात्रा नहीं हो सकती, केवल सुख–स्वर्ग से द्वार खुलता है। विधायक चित्त ही समग्र सत्य को जानने की राह पर चल सकता है।

3. मायावी जगत में गुरु का क्या काम है?

गुरु का यही तो काम है– तुम्हें बताना कि तुम्हारा जगत सत्य नहीं है। तुम्हारे झूठे केन्द्र अहंकार से देखा गया संसार सपने जैसा है। उसके प्रति जगाना, प्रक्षेपित सपनों को तोड़ना गुरु का काम है। गुरु भी आरंभ में तो तुम्हारे सपनों का ही हिस्सा है, मगर वह ऐसा सपना है जो अन्य सपनों को तोड़ सकता है। इसलिए गुरु के प्रति श्रद्धा सिखाई जाती है। गहन प्रेम न हो तो तुम अपने सपने तोड़ने न दोगे। सरहा ने कहा है– गुरु को समाज स्वीकृत आचरण करना चाहिए, ताकि लोग श्रद्धा कर सकें। यद्यपि उसके खुद के लिए वह सब अनावश्यक है। उस व्यर्थ के आवरण से शिष्यों को भरोसा पैदा होता है।

4. मन क्यों अतीत के अनुभवों से व ज्ञान से तादात्म्य कर लेता है?

पहली बात, मूल मन तो सदा शुद्ध है दर्पण की भांति, मगर उस पर जमी धूल से तादात्म्य हो जाना स्वाभाविक है। बच्चा अनाम पैदा होता है फिर हम उसे एक नाम देते हैं– वह उपयोगी है। धर्म, जाति, देश, भाषा, संस्कृति, काम–धाम सिखाना होगा। धीरे–धीरे इन सबसे तादात्म्य होता जाएगा।

दूसरी बात, कमरे में देखते हो तो तुम्हें दीवारें, सामान, फर्नीचर, परदे नजर आते

हैं। वास्तविक कमरा आंतरिक आकाश है। रिक्तता घबराने वाली है अतः हम कुछ भी पकड़ने राजी हो जाते हैं। ऐसे ही हमने अपने बाहरी व्यक्तित्व को पकड़ लिया है। भारत के संत कहते हैं यह तादात्म्य भी जागतिक मजाक का अंग है, ताकि परेशान होकर हम एक दिन इसे तोड़कर पुनः मूल स्वभाव यानी शून्यता में प्रवेश कर सकें।

5. जीवन को साइकोड्रामा समझने पर विरक्ति और अकेलापन लगेगा, जीवन की निष्ठा और गहराई खो जाएगी, तब हम क्या करें?

खो जाने दो। जो खो सकती है वह सच नहीं थी। हर बात को समस्या न बनाओ। विरक्ति और अकेलापन लगेगा, तो लगने दो। सत्य को स्वीकारो। मत पूछो कि क्या करें? कर करके ही तुमने सब गड़बड़ कर लिया है। अब कृपाकर कुछ न करो। आनंद की पानी लाने वाली घटना– प्रतीक्षा करने से नदी का जल स्वयं साफ–सुथरा हो गया।

6. साक्षी साधने से मौन, शांत व स्थिर हो गया हूं। लोग कहते हैं कि मैं गंभीर हो गया हूं। मौन व लीलाभाव एक साथ कैसे विकसित करें?

सच में अगर शांत हो गए हो तो तुम चिंता न करोगे कि लोग क्या कहते हैं। यदि गंभीर हो तो गंभीरता को स्वीकार लो, मजे से गंभीर रहो, इसमें हर्ज क्या है! तब गंभीरता के साथ भी तुमने खेलपूर्ण होना शुरु कर दिया। यदि जबरदस्ती लीला साधने की कोशिश की तो उस प्रयत्न में ही खेल को भी तुम गंभीर मामला बना लोगे। लोगों के मंतव्यों की फिक्र छोड़ो। तुम अपनी नजर में क्या हो? सच्चा मौन तथ्य के संग रहने से आता है। वही तथाता है। बदलने का प्रयास न करो। अपने प्रति प्रेमपूर्ण बनो, जो भी तुम हो। झेन में इसे झाझेन कहते हैं। कभी उदासी आती है कभी प्रफुल्लता। चुपचाप तमाशा देखते रहो। तब साक्षी जागृत होता है जो तुम्हारा मूल स्वभाव है। उसे कोई नहीं हिला सकता।

7. अपनी भावनाओं एवं वासनाओं को स्वीकार करने पर रूपांतरण की जगह मैं पशुवत महसूस करता हूं?

यही तुम्हारा रूपांतरण है। पशु होने में गलत क्या है? सुजुकी कहता है– मैं तालाब के किनारे बैठे मेंढक को ज्यादा प्रेम करता हूं किसी मनुष्य की तुलना में– अद्भुत आत्म रमण में। देखो किसी बिल्ली को सोते, कैसे विश्राम की कला जानती है! पशु की निंदा आदमी का अहंकार है। मैं पशु के विरोध में नहीं, झूठ के विरोध में हूं। सच्चे बनो। तब तुम्हारे भीतर छिपा परम सत्य, परमात्मा उद्घाटित होता है। परमात्मा सब पशु–पक्षियों में, पेड़–पौधों में, पत्थर–चट्टानों में उतना ही है जितना किसी मनुष्य में।

8. यदि ज्ञान आकस्मिक ही घटता है तो फिर मैं साधना के द्वारा क्रमशः घटित हो रही जो मन की शांति एवं स्वच्छता महसूस करता हूं, वह क्या है?

यह अति प्राचीन समस्या रही है। ज्ञान तो अचानक छलांग के रूप में ही घटता है। लेकिन उसकी भूमिका के रूप में मन की बेचैनी कम होना, दुख से पकड़ छूटना, विधायकता का विकास होना सहयोगी है। पानी भाफ तो अचानक बनता है किंतु उसका धीरे–धीरे गरम होना भूमिका बनाता है। साधना अनिवार्य है। उसके बिना परमज्ञान नहीं घटता। लेकिन घट जाने पर यह भी पता चलता है कि वह अचानक हुआ। कृष्णमूर्ति का यह कहना कि साधना की जरूरत नहीं है, गलत है। करुणावान गुरु मनुष्य का ख्याल रखते हैं, सत्य का आग्रह नहीं करते। अज्ञानी से ज्ञानी होने के लिए अगर कुछ भी न किया जा सके तब तो बात ही असंभव हो गई।

9. साक्षी चैतन्य में स्थित व्यक्ति की ध्रुवीय विपरीतताओं का क्या होता है?

कहना कठिन है। आगे–आगे कूदकर मत पूछो। साक्षी हो जाओ तभी जान पाओगे। कोई पूछे कि मरने के बाद क्या होता है? मरो और जानो। ज्ञानी का घृणा रहित प्रेम पहचानना मुश्किल है। वह तो द्वन्द्व के पार है, भावातीत है। मित्रभाव से देखने वालों को लगेगा कि बहुत प्रेमल है, शत्रुभाव से देखने वालों को लगेगा कि इसे तो मार ही डालना चाहिए। इसी कारण तो जीसस के इतने अनुयायी और इतने सारे दुश्मन भी हो जाते हैं। ज्ञानी की ओर से न प्रेम है न घृणा। सामने वाले जैसा चाहें वैसा महसूस कर सकते हैं।

न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।

10. कभी मुझे वर्तमान के क्षण में निर्विचार की प्रतीति होती है मगर बुद्ध–स्वभाव प्रगट क्यों नहीं होता?

निर्विचार का विचार भी एक विचार ही है। बुद्ध–स्वभाव की प्रतीक्षा क्यों है? अचाह की चाह को भी जाने दो। अभी पूर्ण वर्तमान नहीं घटा। बुद्ध–स्वभाव की कामना भविष्य की चाह है।

11. मुझे रेचन धीमा–धीमा होता है, इसमें कौन–कौन सी बाधाएं संभवतः पड़ रही हैं?

मन के दमन अति प्राचीन और गहन अचेतन में दबे हैं। सभ्यता और संस्कार हमें प्राकृतिक होने से रोकते हैं। जब तक आप स्वयं सहयोग नहीं करेंगे रेचन नहीं हो पाएगा। कुनकुने करने में सालों लग जाएंगे। पूरी शक्ति से करें तो दिनों में सफाई हो सकती है। आपके अहंकार के अलावा और कोई बाधा नहीं हैं।

12. क्या अनैतिक जीवन साधना में बाधक है?

कृत्य नैतिक हो या अनैतिक, उसके प्रति जागरूक होना साधना है। सोए–सोए भी नैतिक हुआ जा सकता है। समाज यही चाहता है। नैतिक व्यक्ति भीतर स्वयं से

और अनैतिक व्यक्ति समाज से संघर्ष करता है। तंत्र इस विवाद में नहीं पड़ता, वह साक्षी होने पर जोर देता है। नैतिक व्यक्ति अंततः पागल हो जाता है या पाखंडी।

तंत्र के अनुसार चले तो सच्ची नैतिकता पैदा होगी। यह सवाल ही गलत है कि अनैतिक जीवन साधना में बाधक है? असल में साधनायुक्त जीवन अनैतिकता में बाधक है। तंत्र बुनियादी बीमारी की चिंता करता है लक्षणों की नहीं। एक सजग आदमी हिंसक कैसे हो सकता है? जरूरत पड़ने पर क्रोध का उपयोग अभिनय की तरह कर सकता है। जीसस की सूदखोरों से लड़ाई एक नाटक की भांति थी। पापी और महात्मा दोनों रुग्ण हैं, मूर्च्छा उनका रोग है। नान–इन नामक झेन फकीर ने एक कसाई को दीक्षा देते हुए कहा था कि बाहरी आचरण या कर्म बदलने की कोशिश मत करना, आंतरिक जागरण का प्रयत्न करना, उससे अपने आप जो हो उसे होने देना। बोध महत्वपूर्ण है। वही औषधि है।

13. क्या नैतिक जीवन शैली से तंत्र को कोई आपत्ति है?

तंत्र को आपत्ति नहीं है। किसी को नियमों का पालन करना अच्छा लगता है तो मजे से करे। उससे आनंद घटित नहीं होगा, इतना समझ लें। समाज में जीना आसान हो जाएगा, अनावश्यक संघर्ष में शक्ति व्यय नहीं होगी। तंत्र को न उसमें एतराज है न ही उत्सुकता है। तंत्र का रस है आनंदपूर्ण जीवंतता में, अतिशय जीवन में। सत्य बोलने का सिद्धांत, एक यांत्रिक आदत हो सकती है, तब उसमें सजग रहने की जरूरत नहीं है। तंत्र का रस सजगता में है। यदि सजगता से सत्य निकले या कभी शायद असत्य भी निकले, उस पर जोर नहीं है। जिंदगी रेल की पटरी की भांति, पूर्व–निर्धारित मार्ग पर दौड़ना न बन जाए, प्रवाहमान सरिता जैसा सौंदर्यपूर्ण हो। लकीर के फकीर न बनो; सहज, सजग, जीवंत, प्राणवान बनो।

14. यदि कुछ अशुद्ध नहीं है तो दूसरों की देशनाएं कैसे अशुद्ध हो गईं?

शुद्ध–अशुद्ध में भेदभाव सिखाने वाली शिक्षा अशुद्ध है, गलत है। कहने का अंदाज प्यारा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हो कि तंत्र के लिए मूर्च्छित जीवन शैली अशुद्ध है, जागृति शुद्ध है। भेदभाव करना, जीवन को अच्छे–बुरे में बांटना गहन नींद में ही संभव है।

15. क्या भावना या कामना को प्रगट न करने से उसकी शक्ति स्रोत पर लौटकर व्यक्ति को अधिक ऊर्जावान बना देती है?

अनिवार्य रूप से नहीं। होश जुड़ा होना चाहिए, तब ऐसा होगा। न दमन करो, न अभिव्यक्त करो, अनायास जागृत हो जाओ कि मुझमें क्रोध, लोभ या काम उठ रहा है।

बोध से रूपांतरण होगा। जागरूकता से जुड़ने पर उन क्षैतिज चलने वाली भावनाओं में संलग्न ऊर्जा ऊर्ध्वाकार गति करने लगती है जैसे कोई हवाई जहाज दौड़कर ऊपर को उठने लगे। जागरण पंख के समान है। जिंदगी को तुम जन्मों से बैलगाड़ी की तरह उपयोग करते रहे हो। तुम्हें मालूम नहीं कि इसमें क्या संभावनाएं छिपी हैं!

16. दमन या भोग से बचने का प्रयास भी क्या दमन नहीं है?

प्रयास 3 प्रकार के संभव हैं– अभिव्यक्ति का प्रयास, दमन कर प्रयास, और रूपांतरण का प्रयास। आरंभ में जागरण भी प्रयत्न ही है मगर बाद में वह सहज निष्क्रिय जागरूकता में परिवर्तित हो जाता है। भाषा में कठिनाई है, शिथिल होने के लिए भी कहना पड़ता है कि विश्राम करो। किंतु वास्तव में विश्राम करने से नहीं आता। करना तो सदा तनाव लाता है। बाहर संसार में कर्मठता सफलता का सूत्र है। धर्म के अंतर्जगत में विश्राम की कला ही कुंजी है। शुरुआत में वह प्रयास जैसी भासती है।

17. आधुनिक मनुष्य प्रेम करने में असमर्थ क्यों हो गया है?

आधुनिक चित्त करने में दक्ष, कुशल है। प्रेम कृत्य नहीं है। प्रेम सहज है, नियंत्रित नहीं हो सकता। अहंकार नियंत्रण छोड़ना नहीं चाहता, प्रेम पजैस कर लेता है। प्रेम तुमसे बड़ा है उस पर मालकियत संभव नहीं। न प्रेमी मालिक होता न प्रेमिका, प्रेम उनका मालिक हो जाता है। दोनों विराट शक्ति से आविष्ट हो जाते हैं। बड़ी शक्ति के संग तुम भयभीत, असहाय, असुरक्षित महसूस करते हो। बौद्धिक प्रशिक्षण पर बहुत जोर है इसलिए बुद्धि इतनी विकसित हो गई है। प्रशिक्षण के बिना जैसे बुद्धि विकसित नहीं हो सकती ठीक वैसे ही हृदय में प्रेम का भाव भी बगैर प्रशिक्षण विकसित नहीं होता। आधुनिक युग में हृदय उपेक्षित है तर्क पर अतिशय बल है। पुरुषों में विशेषकर, और अब तो महिलाएं भी नकल में लगी हैं। प्रेम के बिना जीवन निरर्थक हो जाता है। प्रेम के विकास और फैलाव से ही प्रार्थना उदित होती है। तंत्र इसी का प्रशिक्षण है। बुद्धि छोटे से चेतन मन में है। विराट अचेतन में अहंकार नहीं होता, इसी वजह नींद के बाद इतनी ताजगी अनुभव में आती है। मन की इन दो दशाओं के पार तीसरी अवस्था है अतिचेतन की, वहां भी अहंकार नहीं होता। प्रेम वहां ले जाता है। अहंकार को मृत्यु जैसा महसूस होता है। बीज मिटे तो ही वृक्ष हो सकता है। प्रेम को राह देना सीखो। किया कुछ नहीं जा सकता। खिड़की खोले रखो, हवा का झोंका आता है, सूरज की रोशनी स्वयंमेव आती है। बुद्धि व अहंकार बाधाएं हैं।

18. केन्द्रित होने के लिए परिधि की गति रुकनी अनिवार्य है?

गत्यात्मकता, परिवर्तन, प्रवाह परिधि की प्रकृति है। उसे ठहराने की कोशिश

में सदा निष्फलता हाथ आएगी। बस इतना जान लो कि संसार चक्र चलता रहेगा, तुम चक्र नहीं धुरी हो।

19. क्या मनुष्य जैसा है वैसा ही चिंता व निराशा के बिना परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित कर सकता है?

अवश्य। जहां हो वहीं से तो यात्रा शुरु होगी, अन्यथा होगी ही कैसे? चिंता घेरे तो चिंतित हो जाओ। निराशा आने पर पूर्णतः निराश हो जाओ। दुख पकड़े तो पकड़ने दो, डूबो उसमें। देखो कितनी देर तक दुखी रह सकते हो? पूरी त्वरा में भोगो जो भी घटता है। यह स्वीकारभाव, असंघर्ष की मनोदशा ही शांति का सूत्र बन जाएगी। यही तंत्र की देशना है। जिसने क्रोध तक को स्वीकार लिया, उसका क्रोध कितनी देर टिकेगा? क्रोध का मूल कारण ही अस्वीकारभाव है।

20. भाग–दौड़ से भरे तनावग्रस्त आधुनिक जीवन के प्रति तंत्र का दृष्टिकोण क्या है?

जीवन हमेशा से ऐसा ही रहा है। कभी बैलगाड़ी की चिंता थी, अब कार की फिक्र है। विषय बदल गए, आदमी का तनावग्रस्त मन का ढांचा नहीं बदला। यदि शहर छोड़कर गांव चले गए तो बदलाहट के कारण 2–4 दिन अच्छा लगेगा, फिर तुम अपना पुराना मानसिक संसार खड़ा कर लोगे। तुम क्या सोचते हो, आदिवासी आनंदित हैं? सड़क का शोरगुल तुम्हें परेशान नहीं करता, उसके प्रति तुम्हारा नकारात्मक दृष्टिकोण तुम्हें सताता है। अगर प्रेम से स्वीकार लो तो उसकी धुन पर नाच भी सकते हो। तंत्र की दृष्टि स्वीकार की है, संघर्ष की नहीं।

21. मोक्ष की कामना भी वासना है या मनुष्य की मूलभूत आकांक्षा?

हर प्रकार की कामना बंधन है, नाम बदलने से क्या होगा? कामना यानी भविष्य में तृप्ति की आकांक्षा ही संसार है। वह सपना ईश्वर है या ऐश्वर्य, इससे अंतर नहीं पड़ता। हर हालत में वह दुख का कारण है– तृप्त कामना जल्दी, अतृप्त कामना देर से। निष्कामना धार्मिक होती है। यह साधी नहीं जा सकती, कामना से पैदा होने वाले नर्क के प्रति जागने से घटित होती है। महावीर की शांति देखकर हम लोभग्रस्त हो जाते हैं और उनके जैसे बनने की कोशिश में लग जाते हैं। उनसे पूछते हैं– यह कैसे घटी। वे कहते हैं– निष्काम होने से। हम कहते हैं– ठीक, तो हम भी इसे पाकर रहेंगे।

दर्जी मंगूलाल के दोस्त ने पूछा कि तुम्हारे बेटे आजकल क्या कर रहे हैं?

मंगूलाल बोला– एक बेटा दिल्ली पहुंचकर बड़ा नेता बन गया, दूसरा पद्मश्री प्राप्त

महाकवि, तीसरा मुंबई का मशहूर अभिनेता। मित्र ने पूछा– चौथे का क्या हुआ?

मंगूलाल ने उदास स्वर में कहा– वह नालायक कुछ नहीं कर पाया, गांव में वही छोटी सी दर्जी की दुकान संभाल रहा है। मगर सच कहूं उसी से पूरे परिवार का गुजारा चल रहा है वरना हम लोग बुढापे में भूखे मर गए होते।

बाप दुखी है दर्जी से! महान सपनों, कामनाओं, महत्वाकांक्षाओं ने तुम्हें कुछ नहीं दिया, मगर तुम उनसे प्रसन्न हो। यही गहन बेहोशी है। जितने बोध से भरोगे उतना ही कामना से रिक्त होते जाओगे। आध्यात्मिक वासना जैसी कोई चीज नहीं होती। कामना मात्र संसार है।

22. हिंसा एवं क्रोध जैसे कृत्यों में रहकर कोई कैसे रूपांतरित हो सकता है?

जहां हो, वहां से अगर कोई मार्ग नहीं, तो मंजिल तक कैसे पहुंचोगे? नकारात्मक भावों का नरक समग्ररूपेण जीने से ही बोध जागता है। जीसस को सूली लगने से तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती। तुम रोज कामना, लोभ, ईर्ष्या और क्रोध की सूली पर लटकते हो मगर चेतते नहीं। यह सूली जगाकर मुक्त कर सकती है। तुम दो खंडों में बंटे हो– बाहर झूठी हंसी, भीतर सच्चा गुस्सा। सत्यमेव जयते। मैं नहीं कह रहा कि तुम प्रामाणिक बनकर किसी की हत्या कर दो। एकांत, बंद कमरे में अपने इस गुस्से का साक्षात्कार करो। तकिए पर अपने बॉस या पत्नी का चित्र लगाकर आग–बबूला हो जाओ। इतना क्रोध जीवित आदमी के सामने कभी नहीं कर सकते। कामवासना की विक्षिप्तता अकेले में जैसी प्रगट होगी, किसी की मौजूदगी में वैसी पाश्विकता व्यक्त नहीं हो सकती। नर्क से गुजरकर ही स्वर्ग का रास्ता खुलता है। यह तथ्यों का साक्षात्कार झकझोरेगा, जगाएगा। एक बात और साफ होगी कि क्रोध किसी पर नहीं है, असल में तुम खुद से ही नाराज हो। दूसरे केवल बहाने हैं। तुम आत्म–अज्ञानी, मूर्च्छित, अतृप्त, असंतुष्ट हो, जीवन की संपदा को पा न सके, इसलिए क्रोधित हो। हर किसी पर निकालते रहते हो इस नाराजगी को। महावीर आप्तकाम, शांत हैं, अहिंसक हैं, इन्हीं परिस्थितियों में। कारण– वे सृजन, संतोष व आनंद में, आत्म–तृप्ति में जी रहे हैं। तुम सृजनशील नहीं हो, अतः विध्वंशक होने के लिए मजबूर हो। केवल विध्वंश के द्वारा ही शक्ति का अहसास कर सकते हो। क्रोध हिंसा आदि विध्वंशक ताकतों का दमन न करो, उन्हें विसर्जित होने दो। शांति, प्रेम, करुणा आदि सद्भावों का अभ्यास नहीं करना है; वे झरने की भांति भीतर छिपे हैं। विध्वंशक चट्टानों के हटते ही बह उठेंगे।

एक बात और स्मरण रखना, काम और क्रोध दोनों समान नहीं हैं। क्रोध सदा ही कुरूप होता है। काम कभी–कभी सुंदर भी हो सकता है। जागरण के द्वारा पहले

मानसिक कामुकता विलीन होगी, फिर धीरे–धीरे काम भी विलीन हो सकता है। जो शेष बचता है वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य और प्रेम साधा नहीं जा सकता, घृणा और कामुकता की चट्टान को हटाया जा सकता है। चट्टान को भीतर दबाने से तो झरना और भी अधिक अवरुद्ध हो जाएगा।

23. ज्ञानीजनों की नींद की गुणवत्ता कैसी होती है?

बुद्ध का अर्थ है परिपूर्ण रूप से जागृत। धीरे–धीरे बोध नींद में भी प्रवेश कर जाता है। गौतम बुद्ध रातभर करवट नहीं बदलते थे, ओशो हर 5 मिनिट में करवट बदलते थे। हर ज्ञानी अपने ढंग का होता है। बाहर से निष्कर्ष नहीं निकालना। अंदर से समझना। स्वप्न के लिए मूर्च्छा जरूरी है इसलिए ज्ञानी को सपने नहीं आते। सपने अधूरी कामनाओं की वजह से आते हैं। ज्ञानी निष्काम और पूर्णता से जीता है; अतः सपनों की आवश्यकता ही नहीं बचती। रात में सपने खो जाते हैं और दिन में विचार। ऐसा नहीं कि वह विचार करने में असमर्थ होता है। हां, उसे पूर्वाभ्यास की जरूरत नहीं। उससे प्रश्न पूछा गया और बस उत्तर आ गया। विचार तुरंत ही वाणी बन गए।

24. प्रेरणा व आदर्श में क्या अंतर है? क्या प्रेरणा लेना ठीक नहीं है?

प्रेरणा अवश्य लो, नकलची न बनो। बुद्ध आदर्श नहीं हैं, बुद्धत्व आदर्श है। बुद्धत्व अनुभव है, गुणवत्ता है। किसी ज्ञानी का अनुकरण नहीं करना है, स्वयं ज्ञानी बनना है। हर ज्ञानी अनूठा होता है। मीरा व महावीर के व्यक्तित्व बिल्कुल भिन्न हैं, होने ही चाहिए, अस्तित्व की समृद्धि विविधता से है, किंतु उन दोनों के अंतस का शून्य एक ही है। दो शून्य भिन्न नहीं होते। प्रामाणिक रूप से स्वयं होने में आनंद है, नकल करके कोई तृप्त नहीं हो सकता। तुम खुद अपने आदर्श हो तंत्र की नजरों में। अनुकरण नहीं स्वयं का आविष्कार करना है। बुद्धत्व तुम्हारी अभीप्सा और भविष्य की प्यास बन जाए, बुद्ध को देखकर चुनौती जन्मे, बस। प्रेरणा से तुम यात्रा पर निकलते हो। बुद्ध ने किसी का अनुगमन नहीं किया। कम से कम इतना तो उनसे सीखो। इसी भांति तुम बुद्धत्व को प्राप्त कर पाओगे। नीत्शे के महान ग्रंथ 'दस स्पेक झरथुस्त्र' में अंतिम संदेश है– मुझसे सावधान।

यदि तुम आदर्श से न बंधो तो दुनिया में हर कोई तुम्हें कुछ न कुछ सिखा सकता है। जैन कुरान से, सिक्ख महावीर से और मुसलमान बुद्ध से कुछ नहीं सीख पाता। तुम सच्चे सिक्ख यानी सीखने वाले बनो। अनुयायी प्रेरणा लेना बंद कर देता है, अपनी धारणाओं के जाल में कैद हो जाता है।

25. सामान्य होना क्या है? आजकल इतनी विकृति क्यों है? अधिसामान्य व्यक्ति इतने विरले क्यों होते हैं?

विरले नहीं, बहुत लोग शिखर को उपलब्ध होते हैं मगर उन्हें देखने वाली आंखें

तुम्हारे पास नहीं हैं। राम, जीसस, महावीर या मीरा को उनके समकालीन लोगों ने अधिसामान्य नहीं माना था। उच्चतर को समझने के लिए तुम्हें ऊंचा उठना होगा। फिलहाल तुम निम्नतर को ही समझ सकते हो। सामान्य व्यक्ति पागल को समझ सकता है, मगर विक्षिप्त आदमी सामान्य को नहीं समझ पाएगा।

तीन प्रकार के लोगों के लक्षण समझो। असामान्य आदमी केवल लेना जानता है, सामान्य लेन-देन में संतुलन रखता है, अधिसामान्य देने का भाव रखता है। अनावश्यक परिग्रह न करो, देने की कला सीखो, कभी रुग्ण नहीं होओगे। आधुनिक सभ्यता संग्रहवृत्ति पर खड़ी हो रही है, इसलिए ज्यादा रुग्ण होती जा रही है।

26. जो अनुभव अभी घटा नहीं, उसकी कल्पना या भाव करना कैसे संभव है?

सोच-विचार से वह नहीं मिलेगा, उसे करके ही पाया जा सकता है। उदाहरण के लिए अधिसामान्य बुद्धत्व की दशा अभी नहीं है, किंतु जागृति की और दान-भावना की कुछ झलकें तो तुम्हें मिली हैं। न सही पूरा सागर मगर बूंद का अनुभव तो है, चलो वहीं से शुरु करो। माना कि भागवत-प्रेम नहीं जाना, छोटा-मोटा प्रेम का अहसास तो हुआ है, निर-अहंकारिता कभी घटी है। उसका भाव, उसका स्मरण, उसकी कल्पना तुम्हें विराटतर की ओर उन्मुख कर देगी। थोड़ी सी शांति जानी है, उसकी याद शांति को प्रगाढ़ कर देगी। भाव या कल्पना इस प्रकार काम करते हैं। चिंतन-मनन बिल्कुल व्यर्थ हैं धर्म के जगत में। प्रेम या शांति के सिद्धांत जरा भी काम न आएंगे, संभवतः वे प्रेम या शांति के छोटे से अनुभवों को भी भुला देंगे।

27. भगवान शिव के अनुसार, क्या मनुष्य जैसा है वैसा ही, चिंता व निराशा के बिना परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित कर सकता है?

अवश्य। जहां हो वहीं से तो यात्रा शुरु होगी, अन्यथा होगी ही कैसे? चिंता घेरे तो चिंतित हो जाओ। निराशा आने पर पूर्णतः निराश हो जाओ। दुख पकड़े तो पकड़ने दो, डूबो उसमें। देखो कितनी देर तक दुखी रह सकते हो? पूरी त्वरा में भोगो जो भी घटता है। यह स्वीकारभाव, असंघर्ष की मनोदशा ही शांति का सूत्र बन जाएगी। यही तंत्र की देशना है। जिसने क्रोध तक को स्वीकार लिया, उसका क्रोध कितनी देर टिकेगा? क्योंकि क्रोध का मूल कारण ही अस्वीकारभाव है।

28. यदि ज्ञान आकस्मिक ही घटता है तो फिर मैं साधना के द्वारा क्रमशः घटित हो रही जो मन की शांति एवं स्वच्छता महसूस करती हूं, वह क्या है?

यह अति प्राचीन समस्या रही है। ज्ञान तो अचानक छलांग के रूप में ही घटता है। लेकिन उसकी भूमिका के रूप में मन की बेचैनी कम होना, दुख से पकड़ छूटना,

विधायकता का विकास होना सहयोगी है। पानी भाफ तो अचानक बनता है किंतु उसका धीरे धीरे गरम होना भूमिका बनाता है। साधना अनिवार्य है। उसके बिना परमज्ञान नहीं घटता। लेकिन घट जाने पर यह भी पता चलता है कि वह अचानक हुआ। सांख्य–योगियों का यह कहना कि साधना की जरूरत नहीं है, अनुपयोगर और अनुचित है। करुणावान गुरु मनुष्य का ख्याल रखते हैं, सत्य का आग्रह नहीं करते। अज्ञानी से ज्ञानी होने के लिए अगर कुछ भी न किया जा सके तब तो आध्यात्मिक साधना की बात ही असंभव हो गई।

29. क्या केन्द्रित होने के लिए परिधि की गति रुकनी अनिवार्य है?

अनिवार्य नहीं, किंतु क्षणिक रूप से सहयोगी हो सकती है, उपयोगी हो सकती है। यद्यपि गत्यात्मकता, परिवर्तन, प्रवाह परिधि की प्रकृति है। उसे ठहराने की कोशिश में सदा निष्फलता हाथ आएगी। बस इतना जान लो कि संसार चक्र चलता रहेगा, लेकिन तुम चक्र नहीं, धुरी हो। चेतना सदा से ठहरी ही हुई है– स्थितप्रज्ञ!

तन का स्थिर होना आसन है, मन का ठहरना ध्यान है, और इन क्षणों में केन्द्रस्थ हो जाना समाधि है।

30. अचानक रुकने की विधि कैसे कार्य करती है? इसका प्रयोग कराने की अनुकंपा करें।

स्टॉप मेडिटेशन बहुत सुगम पद्धति है। छोटे बच्चे अक्सर यह खेल खेलते हैं, कि एक के स्टॉप कहने पर दूसरा बच्चा अचानक रुक जाता है। फिर स्टार्ट कहने पर चलना–फिरना शुरु करता है। इस खेल में जो मजा आता है, वास्तव में वह ध्यान का ही आनंद है। तन के रुकते ही, मन भी अनायास ठकर जाता है। देह पत्थर की मूर्ति जैसी हो जाए, कुछ क्षणों के लिए सांस भी थम जाए; तो भीतर विचार भी ठिठक जाते हैं। निर्विचार जागरण की दशा निर्मित हो जाती है।

सदगुरु ओशो ने इस खेल को ध्यान विधि का रूप दे दिया। संत गोरखनाथ कहते हैं– हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्। यानि हंसते खेलते ध्यान करो। ओशो ने नाचते–गाते ध्यान में डूबना सिखा दिया। वे प्रवचन के आरंभ में और अंत में अपने शिष्यों को नृत्य कराते थे। वे बारंबार अचानक रुकते। संगीत बंद हो जाता। और समस्त साधक–साधिकाएं एकदम से मूर्तिवत हो जाते हैं। गहन मौन में आनंद की वर्षा हो जाती। आओ, हम भी उनके संग इस आनंद वर्षा में भीगें। आत्मा का स्नान करें।

(नोट– ऐसा समझाने के बाद, परमगुरु ओशो की वीडियो फिल्म दिखाई गई, जिसमें उन्होंने स्टॉप ध्यान करवाया है। सभी दर्शकों ने खड़े होकर उनके इशारे पर नृत्य किया, और संगीत ठहरते ही बारंबार रुके। सात मिनिट के इस छोटे से प्रयोग में निर्विचार जागरूकता की अद्भुत अनुभूति हुई। गहन शांति की झलकें मिलीं।)

परमगुरु ओशो के आशीष वचन

ध्यान क्या?

क्या तुम ध्यान करना चाहते हो? तो ध्यान रखना कि ध्यान में न तो तुम्हारे सामने कुछ हो, न पीछे कुछ हो। अतीत को मिट जाने दो और भविष्य को भी। स्मृति और कल्पना– दोनों को शून्य होने दो। फिर न तो समय होगा और न आकाश ही होगा। उस क्षण जब कुछ भी नहीं होता है– तभी जानना कि तुम ध्यान में हो।

ध्यान कैसे?

ध्यान के लिए पूछते हो कि कैसे करें? कुछ भी न करो। बस, शांति से श्वास–प्रश्वास के प्रति जागो। होशपूर्वक श्वास–पथ को देखो। श्वास के आने–जाने के साक्षी रहो। यह कोई श्रमपूर्ण चेष्टा न हो, वरन शांत और शिथिल विश्रामपूर्ण बोध–मात्र हो। और फिर तुम्हारे अनजाने ही, सहज और स्वाभाविक रूप से एक अत्यंत प्रसादपूर्ण स्थिति में तुम्हारा प्रवेश होगा। इसका भी पता नहीं चलेगा तुम कब प्रविष्ट हो गए हो। अचानक ही तुम अनुभव करोगे कि तुम वहां हो, जहां कि कभी नहीं थे।

भीतरी मौन कैसे?

पूछते हो, मौन कैसे हों? बस, हो जाओ। बहुत विधि और व्यवस्था की बात नहीं है। चारों ओर जो हो रहा है, उसे सजग होकर देखो। और जो सुनाई पड़ रहा है, उसे साक्षी–भाव से सुनो। संवेदनाओं के प्रति होश तो पूरा हो, पर प्रतिक्रिया न हो। प्रतिक्रिया शून्य सजगता से मौन सहज ही निष्पन्न होता है।

विचार–मुक्ति कैसे?

विचारों से मुक्ति का क्या उपाय है? साधारणतः जब तक मनुष्य प्रत्येक विचार की गति के साथ गतिमय होता रहता है, तब तक उसे विचारों से पैदा हो रही अशांति का अनुभव ही नहीं होता है। लेकिन जब वह रुककर– ठहरकर विचारों को देखता है, तभी उसे उनकी सतत दौड़ और अशांति का प्रत्यक्ष बोध होता है।

विचारों से मुक्ति की दिशा में यह आवश्यक अनुभूति है। हम खड़े होकर देखें तभी विचारों की व्यर्थ भागदौड़ का पता चल सकता है। निश्चय ही, जो उनके साथ ही दौड़ता रहता है, वह इसे कैसे जान सकता है!

विचारों की प्रक्रिया के प्रति एक निर्वैयक्तिक भाव को अपनाएं– एकमात्र दर्शक का भाव। जैसे देखने–मात्र से ज्यादा आपका उनसे और कोई संबंध नहीं। और जब विचारों के बादल मन के आकाश को घेरें, और गति करें, तो उनसे पूछें– विचारो! तुम किसके हो? क्या

तुम मेरे हो?' और आपको स्पष्ट उत्तर मिलेगा– 'नहीं, तुम्हारे नहीं।'

निश्चय ही यह उत्तर मिलेगा, क्योंकि विचार आपके नहीं हैं। वे आपके अतिथि हैं। आपको सराय बनाया हुआ है। उन्हें अपना मानना भूल है। और वही भूल उनसे मुक्त नहीं होने देती है। उन्हें अपना मानने से जो तादात्म्य पैदा होता है, वही तो विसर्जित नहीं होने देता है। ऐसे, जो मात्र अतिथि हैं, वे ही स्थायी निवासी बन जाते हैं।

विचारों को निर्वैयक्तिक भाव से देखने से क्रमशः उनसे संबंध टूटता है। जब कोई वासना उठे या विचार, तब ध्यान दें कि यह वासना उठ रही है– या कि विचार उठ रहा है। फिर देखें और जानें कि अब विलीन हो रहा है– अब विलीन हो चुका है। अब दूसरा विचार उठ रहा है....विलीन हो गया है।

और इस भांति शांति से, अनुद्विग्न भाव से दर्शक की भांति साक्षी बनकर विचारों की सतत धारा का निरीक्षण करें। इस भांति शांत चुनावरहित निरीक्षण से विचारों की गति क्षीण होती जाती है, और अंततः निर्विचार–समाधि उपलब्ध होती है।

निर्विचार–समाधि में विचार तो विलीन हो जाते हैं और विचारशक्ति का उद्भव होता है। उस विचारशक्ति को ही मैं प्रज्ञा कहता हूं। विचारशक्ति के जागरण के लिए विचारों से मुक्त होना अत्यंत आवश्यक है।

ध्यान की विधि?

ध्यान किसे कहते हैं, और उसे करने की क्या विधि है?

निर्विचार–चेतना ध्यान है। और निर्विचारणा के लिए विचारों के प्रति जागना ही विधि है।

विचारों का सतत प्रवाह है मन। इसी प्रवाह के प्रति मूर्च्छित होना– सोए होना– अजाग्रत होना साधारणतः हमारी स्थिति है।

इस मूर्च्छा से पैदा होता है तादात्म्य। मैं मन ही मालूम होने लगता हूं। जागें और विचारों को देखें।

जैसे कोई राह चलते लोगों को किनारे खड़े होकर देखे। बस, इसे जागकर देखने से क्रांति घटित होती है। विचारों से स्वयं का तादात्म्य टूटता है। इस तादात्म्य–भंग के अंतिम छोर पर ही निर्विचार–चेतना का जन्म होता है। ऐसे ही, जैसे आकाश में बादल हट जाएं, तो आकाश दिखाई पड़ता है। विचारों से रिक्त चित्ताकाश ही स्वयं की मौलिक स्थिति है। वही समाधि है।

ध्यान है विधि। समाधि है उपलब्धि।

सोचें मत, डूबें

ध्यान के संबंध में सोचें मत। ध्यान के संबंध में विचारना भी विचार ही है। उसमें तो जाएं। डूबें। ध्यान को सोचें मत– चखें। मन का काम है सोना और सोचना। जागने में उसकी मृत्यु है। और ध्यान है जागना। इसीलिए मन कहता है– चलो, ध्यान के संबंध में ही सोचें।

यह उसकी आत्म–रक्षा का अंतिम उपाय है।

इससे सावधान होना। सोचने की जगह, देखने पर बदल देना। विचार नहीं, दर्शन– बस, यही मूलभूत सूत्र है। दर्शन बढ़ता है, तो विचार क्षीण होते हैं। साक्षी जागता है, तो स्वप्न विलीन होता है।

ध्यान आता है, तो मन जाता है। मन है द्वार, संसार का। ध्यान है द्वार, मोक्ष का। मन से जिसे पाया है, ध्यान में वह खो जाता है। मन से जिसे खोया है, ध्यान में वह मिल जाता है।

साक्षीभाव कैसे साधें?

साक्षी–भाव की साधना के लिए इन तीन सूत्रों पर ध्यान दो–

1. संसार के कार्य में लगे हुए श्वास के आवागमन के प्रति जागे हुए रहो। शीघ्र ही साक्षी का जन्म हो जाता है।

2. भोजन करते समय स्वाद के प्रति होश रखो। शीघ्र ही साक्षी का आविर्भाव होता है।

3. निद्रा के पूर्व जब कि नींद आ नहीं गयी है और जागरण जा रहा है– सम्हलो और देखो। शीघ्र ही साक्षी पा लिया जाता है।

क्या ध्यान सरल है?

कुछ चीजें हैं जो प्रयास से नहीं आतीं। जैसे आपके परिचय में एक चीज है नींद। नींद प्रयास से नहीं आती। अगर आप कोशिश करें नींद लाने की, तो आपकी कोशिश ही नींद नहीं आने देगी। करें, कोशिश करके देखें। किसी दिन नींद लाने की कोशिश करके देखें। करवट बदलें, जंत्र–मंत्र पढ़ें, कुछ और करें, कुछ देवी–देवताओं का स्मरण करें, और नींद लाने की कोशिश करें। उठें, बैठें, दौड़ें, नींद लाने की कोशिश करें। आप जितनी कोशिश करेंगे, नींद उतनी दूर हो जाएगी।

जिसको नींद नहीं आती है, उससे आप कहिए कि हम तो तकिए पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। तो वह कहेगा, आप क्या झूठी बातें कर रहे हैं, कोई तरकीब होगी जरूर आपकी, बताते नहीं हैं। क्योंकि मैं तो तकिए पर बहुत सिर रखता हूं, लेकिन नहीं सो पाता।

ध्यान भी इतनी ही सरल बात है, इतनी ही सरल। लेकिन प्रयास करिएगा, तो बाधा पड़ जाएगी।

जागरूकता की साधना है ध्यान

ध्यान का अर्थ है होश। तुम जो कुछ भी होशपूर्वक करते हो वह ध्यान है।

कर्म क्या है, यह प्रश्न नहीं, किंतु गुणवत्ता जो तुम कर्म में ले आते हो, उसकी बात है। चलना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक चलो। बैठना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक बैठ सको। पक्षियों की चहचहाहट को सुनना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक सुन सको। या केवल अपने भीतर मन की आवाजों को सुनना ध्यान बन सकता है,

यदि तुम जाग्रत और साक्षी रह सको।

सारी बात यह है कि तुम सोये-सोये मत रहो। फिर जो भी हो, ध्यान होगा।

ध्यान की विधि कैसे चुनें?

हमेशा उस विधि से शुरू करें, जो रुचिकर लगे। ध्यान को जबरदस्ती थोपना नहीं चाहिए। अगर जबरदस्ती ध्यान को थोपा गया तो शुरुआत ही गलत हो जाएगी। जबरदस्ती की गई कोई भी चीज सहज नहीं हो सकती। अनावश्यक कठिनाई पैदा करने की कोई जरूरत नहीं है। यह बात अच्छे से समझ लेनी है। क्योंकि जिस दिशा में मन की सहज रुचि हो, उस दिशा में ध्यान सहजता से घटता है।

जो लोग शरीर के तल पर ज्यादा संवेदनशील हैं, उनके लिए ऐसी विधि है, जो शरीर के माध्यम से ही आत्यंतिक अनुभव पर पहुंचा सकती हैं। जो भाव-प्रवण हैं, भावुक प्रकृति के हैं, वे भक्ति-प्रार्थना मार्ग पर चल सकते हैं। जो बुद्धि-प्रवण हैं, बुद्धिजीवी हैं, उनके लिये ध्यान, सजगता, साक्षीभाव उपयोगी हो सकते हैं।

लेकिन मेरी ध्यान की विधियां एक प्रकार से अलग हटकर हैं। मैंने ऐसी ध्यान-विधियों की संरचना की है, जो तीनों प्रकार के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जा सकती हैं। उनमें शरीर का पूरा उपयोग है, भाव का भी पूरा उपयोग है और होश का भी पूरा उपयोग है। तीनों का एक साथ उपयोग है और वे अलग-अलग लोगों पर अलग-अलग ढंग से काम करती हैं। शरीर, हृदय, मन- मेरी सभी विधियां इसी श्रंखला में काम करती हैं। वे शरीर पर शुरू होती हैं, वे हृदय से गुजरती हैं, वे मन पर पहुंचती हैं और फिर वे मनातीत में अतिक्रमण कर जाती हैं।

स्मरण रहे, जो हमें रुचिकर लगता है, उसी में हम गहरे जा सकते हैं- केवल उसी में गहरे जा सकते हैं। रुचिकर लगने का मतलब ही यह है कि उसका हमसे तालमेल है। हमारा छंद उसकी लय से मेल खाता है। विधि के साथ हम एक हार्मनी में हैं। तो जब कोई विधि रुचिकर लगे, तो फिर और-और विधियों के लोभ में न पड़ें, फिर उसी विधि में और-और गहरे उतरें। उस विधि को प्रतिदिन या अगर संभव हो तो दिन में दो बार अवश्य करें। जितना हम इसे करेंगे, उतना आनंद बढ़ता जाएगा। किसी भी विधि को तभी छोड़े जब आनंद आना बंद हो जाए। उसका मतलब है कि विधि का काम पूरा हो गया, अब दूसरी विधि की तलाश की जाए। कोई भी अकेली विधि हमें अंत तक नहीं ले जा सकती। इस यात्रा पर हमें कई बार ट्रेन बदलनी पड़ेगी। हर विधि हमें एक अमुक अवस्था तक पहुंचाएगी। उसके बाद उसका कोई उपयोग नहीं है। उसका काम पूरा हो गया।

दो बातें स्मरण रखनी हैं- जब किसी विधि में आनंद आए तो उसमें जितने गहरे जा सकें जाएं। लेकिन उसके आदी न हो जाएं, क्योंकि एक दिन उसके पार भी जाना है। अगर हम उसके बहुत आदी हो जाते हैं, तो यह भी एक प्रकार का नशा है, फिर हम उसे छोड़ नहीं सकते। अब उसमें कोई आनंद भी नहीं आता-इससे कुछ मिलता भी नहीं-लेकिन यह एक

आदत हो गयी। फिर चाहे तो इसे हम करते रह सकते हैं, लेकिन हम गोल–गोल घूमते हैं, यह उसके आगे नहीं ले जा सकती।

तो आनंद मापदंड है। जब तक आनंद आए, जारी रखें। आनंद का कण भी पीछे न छूट जाए। उसका पूरा रस निचोड़ लें, एक बूंद भी बाकी न बचे। और फिर उसे छोड़ने की भी तैयारी रखें। फिर कोई दूसरी विधि चुन लें, जिसमें फिर आनंद आता हो। हो सकता है, हमें कई बार विधि बदलनी पड़े। यह अलग–अलग लोगों के लिए अलग–अलग होगा, लेकिन ऐसी बहुत कम संभावना है कि एक विधि से पूरी यात्रा हो जाए।

लेकिन बहुत सी विधियां एक साथ करने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि हम उलझन में पड़ सकते हैं, विपरीत प्रक्रियाएं एक साथ कर सकते हैं और तब तकलीफ होगी, दर्द होगा। तो कोई भी दो ध्यान की विधियां चुन लें और फिर उन्हें सतत करें। असल में, मैं तो चाहूंगा कि कोई एक ध्यान ही चुनें, यह सबसे अच्छा होगा। जो ध्यान हमें भाए, उसे दिन में कई बार करना ज्यादा बेहतर है। इससे उसमें गहराई आती है। अगर हम कई ध्यान एक साथ करते हैं– एक दिन एक, दूसरे दिन दूसरा। और हम अपने ही ध्यान गढ़ लेते हैं– तो ऊहापोह बढ़ेगा। विज्ञान भैरव तंत्र में ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं। हम पागल हो जा सकते हैं। हम वैसे ही पागल हैं!

ध्यान की ये विधियां कोई मनोरंजन नहीं हैं। ये कभी–कभी खतरनाक भी हो सकती हैं। हम मन के सूक्ष्म, अति सूक्ष्म यंत्र के साथ खेल रहे हैं। कभी एक छोटी सी चीज, जिसका हमें होश भी नहीं कि हम क्या कर रहे हैं, खतरनाक सिद्ध हो सकती है। इसलिए इन विधियों में कोई हेरफेर न करें और अलग–अलग विधियों को मिलाकर अपनी ही कोई खिचड़ी विधि न ईजाद करें। कोई भी दो विधियां चुन लें और कुछ सप्ताह उनका प्रयोग करके देखें।

'जब किसी विधि में आनंद आए तो उसमें जितने गहरे जा सके जाएं। लेकिन उसके आदी न हो जाएं, क्योंकि एक दिन उसके पार भी जाना है। अगर हम उसके बहुत आदी हो जाते हैं, तो यह भी एक प्रकार का नशा है, फिर हम उसे छोड़ नहीं सकते। अब उसमें कोई आनंद भी नहीं आता–इससे कुछ मिलता भी नहीं–लेकिन यह एक आदत हो गयी। फिर चाहे तो इसे हम करते रह सकते हैं, लेकिन हम गोल–गोल घूमते हैं, यह उसके आगे नहीं ले जा सकती। तो आनंद मापदंड है।'

होश का पहला चरण–

होश के लिए पहला चरण है अपने शरीर के प्रति पूर्ण होश रखना। धीरे–धीरे व्यक्ति प्रत्येक भाव–भंगिमाओं के प्रति, हर गति के प्रति होशपूर्ण हो जाता है। और जैसे ही तुम होशपूर्ण होने लगते हो, एक चमत्कार घटित होने लगता है: अनेक बातें जो तुम पहले करते थे, सहज ही गिर जाती हैं। तुम्हारा शरीर ज्यादा विश्रामपूर्ण, ज्यादा लयबद्ध हो जाता है। शरीर तक में एक गहन शांति फैल जाती है, एक सूक्ष्म संगीत फैल जाता है शरीर में।

होश का दूसरा चरण–

फिर अपने विचारों के प्रति होशपूर्ण होना शुरू करो। जैसे शरीर के प्रति होश को साधा, वैसे ही अब विचारों के प्रति करो। विचार शरीर से ज्यादा सूक्ष्म हैं, और फलतः ज्यादा कठिन भी हैं। और जब तुम विचारों के प्रति जागोगे, तब तुम आश्चर्यचकित होओगे कि भीतर क्या–क्या चलता है। यदि तुम किसी भी समय भीतर क्या चलता है उसे लिख डालो, तो तुम चकित होओगे। तुम भरोसा ही न कर पाओगे कि भीतर यह सब क्या चलता है। फिर दस मिनट के बाद इसे पढ़ो–तुम पाओगे कि भीतर एक पागल मन बैठा हुआ है! चूंकि हम होशपूर्ण नहीं होते, इसलिए यह सब पागलपन अंतर्धारा की तरह चलता रहता है। यह प्रभावित करता है–जो कुछ तुम करते हो उसे या जो कुछ तुम नहीं करते उसे। सब कुछ प्रभावित होता है। और इन सब का जोड़ ही तुम्हारा जीवन बनने वाला है। इसलिए इस भीतर के पागल व्यक्ति को बदलना होगा। और होश का चमत्कार यह है कि तुम्हें और कुछ भी नहीं करना है सिवाय होशपूर्ण होने के। इसे देखने की घटना मात्र ही इसका रूपांतरण है। धीरे–धीरे यह पागलपन विसर्जित हो जाता है। धीरे–धीरे विचार एक लयबद्धता ग्रहण करने लगते हैं; उनकी अराजकता हट जाती है और उनकी एक सुसंगतता प्रकट होने लगती है। और फिर एक ज्यादा गहन शांति उतरती है। फिर जब तुम्हारा शरीर और मन शांतिपूर्ण हैं तब तुम देखोगे कि वे परस्पर भी लयबद्ध हैं, उनके बीच एक सेतु है। अब वे विभिन्न दिशाओं में नहीं दौड़ते; अब वे दो घोड़ों पर सवार नहीं होते। पहली बार भीतर एक सुख–चैन आया है और यह सुख–चैन बहुत सहायक होता है–तीसरे तल पर ध्यान साधने में और वह है–अपनी अनुभूतियों और भावदशाओं के प्रति होशपूर्ण होना।

होश का तीसरा चरण–

यह सूक्ष्मतम तल है और सबसे कठिन भी। लेकिन यदि तुम विचारों के प्रति होशपूर्ण हुए हो, तब यह केवल एक कदम आगे है। कुछ ज्यादा गहन होश और तुम अपने भावों और अनुभूतियों के प्रति सजग हो जाओगे। एक बार तुम इन तीन आयामों में होशपूर्ण हो जाते हो, फिर ये तीनों जुड़कर एक ही घटना बन जाते हैं। जब ये तीन एक साथ हो जाते हैं–एक साथ क्रियाशील और निनादित हो उठते हैं, तब तुम इनका संगीत अनुभव कर सकते हो, वे तीनों एक सुरताल बन जाते हैं–तब चौथा चरण तुरीय घटता है–उसे तुम कर नहीं सकते। चौथा अपने से होता है। यह समग्र अस्तित्व से आया उपहार है; जो प्रथम तीन चरणों को साध चुके हैं, उनके लिए यह एक पुरस्कार है।

होश का चरम शिखर

चौथा चरण होश का चरम शिखर है, जो व्यक्ति को जाग्रत बना देता है। व्यक्ति होश के प्रति जागरूक हो जाता है–यह है चौथा। व्यक्ति बुद्ध हो जाता है–जाग जाता है। और इस जागरण में ही अनुभूति होती है कि परम आनंद क्या है। शरीर जानता है देह–सुख; मन

जानता है प्रसन्नता; हृदय जानता है हर्षोल्लास और चौथा, तुरीय जानता है आनंद। आनंद लक्ष्य है संन्यास का, सत्य के खोजी का–और जागरूकता है उसके लिए मार्ग। महत्त्व की बात है कि तुम जागरूक हो, कि तुम होशपूर्ण होना भूले नहीं हो, कि तुम साक्षी हो, द्रष्टा हो, सचेत हो। और जैसे–जैसे देखने वाला, द्रष्टा ज्यादा सघन, ज्यादा थिर, ज्यादा अकंप होने लगता है–एक रूपांतरण घटित होता है: दृश्य विसर्जित होने लगते हैं। पहली बार दृष्टा स्वयं दृश्य बन जाता है। देखने वाला स्वयं दृश्य हो जाता है। तुम घर वापस आ गए।

ध्यान का विज्ञान

ध्यान में कुछ अनिवार्य तत्व हैं, विधि कोई भी हो, वे अनिवार्य तत्व हर विधि के लिए आवश्यक हैं। पहली है एक विश्रामपूर्ण अवस्था: मन के साथ कोई संघर्ष नहीं, मन पर कोई नियंत्रण नहीं; कोई एकाग्रता नहीं। दूसरा, जो भी चल रहा है उसे बिना किसी हस्तक्षेप के, बस शांत सजगता से देखो भर–शांत होकर, बिना किसी निर्णय और मूल्यांकन के, बस मन को देखते रहो।

ये तीन बातें हैं: विश्राम, साक्षित्व, अ–निर्णय–और धीरे–धीरे एक गहन मौन तुम पर उतर आता है। तुम्हारे भीतर की सारी हलचल समाप्त हो जाती है। तुम हो, लेकिन मैं हूं का भाव नहीं है–बस एक शुद्ध आकाश है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं; मैं उन सभी विधियों पर बोला हूं। उनकी संरचना में भेद है, परंतु उनके आधार वही हैं: विश्राम, साक्षित्व और एक निर्विवेचनापूर्ण दृष्टिकोण।

1–खेलपूर्ण रहो

लाखों लोग ध्यान से चूक जाते हैं क्योंकि ध्यान ने गलत अर्थ ले लिए हैं। ध्यान बहुत गंभीर लगता है, उदास लगता है, उसमें कुछ चर्च वाली बात आ गई है; लगता है यह उन्हीं लोगों के लिए है जो या तो मर गए हैं या करीब–करीब मर गए हैं–जो उदास हैं, गंभीर हैं, जिनके चेहरे लंबे हो गए हैं; जिन्होंने उत्साह, मस्ती, प्रफुल्लता, उत्सव सब खो दिया है।

यही तो ध्यान के गुणधर्म हैं: जो व्यक्ति वास्तव में ध्यानी है वह खेलपूर्ण होगा; जीवन उसके लिए मस्ती है, जीवन एक लीला, एक खेल है। वह जीवन का परम आनंद लेता है। वह गंभीर नहीं होता, विश्रामपूर्ण होता है।

2–धैर्य रखो

जल्दबाजी मत करो। बहुत बार जल्दबाजी से ही देर लग जाती है। जब तुम्हारी प्यास जगे, तो धैर्य से प्रतीक्षा करो–जितनी गहन प्रतीक्षा होगी, उतने जल्दी ही वह आएगा।

तुमने बीज बो दिए, अब छाया में बैठ रहो और देखो क्या होता है। बीज टूटेगा, खिलेगा, लेकिन तुम प्रक्रिया को तेज नहीं कर सकते। क्या हर चीज के लिए समय नहीं चाहिए? तुम कार्य तो करो, लेकिन परिणाम परमात्मा पर छोड़ दो। जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं

जाता–विशेषतः सत्य की ओर उठाए गए कदम।

परंतु कई बार अधैर्य उठता है; प्यास के साथ ही आता है अधैर्य, पर वह बाधा है। प्यास को बचा लो और अधैर्य को जाने दो। अधैर्य को प्यास के साथ मिलाओ मत। प्यास में उत्कंठा तो होती है परंतु कोई संघर्ष नहीं होता; अधैर्य में संघर्ष होता है और कोई उत्कंठा नहीं होती। अभीप्सा में प्रतीक्षा तो होती है परंतु कोई मांग नहीं होती; अधैर्य में मांग होती है और कोई प्रतीक्षा नहीं होती। प्यास में तो मौन आंसू होते हैं; अधैर्य में बेचैन संघर्ष होता है।

सत्य पर आक्रमण नहीं किया जा सकता; वह तो समर्पण से पाया जाता है, संघर्ष से नहीं। उसे समग्र समर्पण से जीता जाता है।

3–परिणाम मत खोजो

अहंकार परिणामोन्मुख है, मन सदा परिणाम के लिए लालायित रहता है। मन का कर्म में कोई रस नहीं होता, परिणाम में ही रस होता है–इससे मुझे क्या मिलेगा? यदि कृत्य से गुजरे बिना ही मन परिणाम पा सके, तो वह छोटे मार्ग का ही चुनाव करेगा।

यही कारण है कि शिक्षित लोग चालाक हो जाते हैं, क्योंकि वे छोटे मार्ग खोजने में सक्षम होते हैं। यदि तुम न्यायोचित ढंग से धन कमाओ तो तुम्हारा पूरा जीवन भी इसमें लग सकता है। लेकिन यदि तुम तस्करी से, जुए से, या किसी और ढंग से–राजनेता, प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बन कर–धन कमा सको तो सभी छोटे मार्ग तुम्हें उपलब्ध होंगे। शिक्षित व्यक्ति चालाक हो जाता है। वह बुद्धिमान नहीं बनता, बस, चालाक हो जाता है। वह इतना चालाक हो जाता है कि बिना कुछ किए सब कुछ पा लेना चाहता है।

ध्यान उन्हीं लोगों को घटता है जो परिणामोन्मुख नहीं होते। ध्यान परिणामोन्मुख न होने की दशा है।

4–बेहोशी का भी सम्मान करो

जब होश में हो तो होश का आनंद लो, और जब बेहोश हो तो बेहोशी का आनंद लो। कुछ भी गलत नहीं है, क्योंकि बेहोशी एक विश्राम की भांति है। वरना होश एक तनाव हो जाता। यदि तुम चैबीस घंटे जागे रहो तो तुम कितने दिन, सोचते हो कि, जीवित रहोगे?

भोजन के बिना मनुष्य तीन महीने जी सकता है; नींद के बिना तीन सप्ताह में ही वह विक्षिप्त हो जाएगा और वह आत्मघात का प्रयास करेगा। दिन में तुम सजग रहते हो; रात तुम विश्राम करते हो, और वह विश्राम तुम्हें दिन में, ताजे होकर, और सजग होने में मदद करता है। ऊर्जाएं विश्राम की एक अवधि से गुजर जाती हैं और सुबह ज्यादा जीवंत हो जाती हैं।

ध्यान में भी ऐसा ही होगा। कुछ क्षण के लिए तुम बिल्कुल होश में होते हो, शिखर पर होते हो और फिर कुछ क्षण के लिए घाटी में पहुंच जाते हो, विश्राम करते हो। होश विदा हो गया, तुम भूल गए। लेकिन इसमें क्या गलत है? यह तो सीधी बात है। बेहोशी से फिर होश उठेगा, ताजा होकर, युवा होकर और यह चलता रहेगा। यदि तुम दोनों का आनंद ले सको

तो तुम तीसरे हो जाते हो, और यह सूत्र समझने जैसा है: यदि तुम दोनों का आनंद ले सको, इसका अर्थ हुआ कि तुम दोनों ही नहीं हो–न होश, न बेहोशी–तुम तो वह हो जो दोनों का आनंद लेता है। तब पार का कुछ प्रवेश कर जाता है। वास्तव में, यही वास्तविक साक्षी है। तुम सुख का आनंद लेते हो, उसमें क्या गलत है? जब सुख गया और तुम दुखी हो गए तो दुख में क्या गलत है? उसका आनंद लो। एक बार तुम दुख का आनंद लेने में सक्षम हो जाओ तो तुम दोनों ही नहीं रहते।

और यह मैं तुम्हें कहता हूं: यदि तुम दुख का आनंद ले सको, तो उसका अपना सौंदर्य है। सुख थोड़ा उथला है; दुख बहुत गहरा है, उसमें एक गहराई है। जो मनुष्य कभी दुखी नहीं हुआ वह उथला रहेगा, सतह पर ही रहेगा। दुख अंधेरी रात की तरह बहुत गहरा है। अंधकार में एक मौन है, और एक उदासी भी। सुख तो छलकता है; उसमें एक आवाज होती है। वह तो पर्वतों की सरिता जैसा है; आवाज पैदा होती है। लेकिन पर्वतों में कोई भी नदी बहुत गहरी नहीं हो सकती; सदा उथली होती है। जब नदी मैदानों में पहुंचती है तो गहरी हो जाती है, लेकिन फिर आवाज नहीं होती। नदी बहती चलती है जैसे बह ही न रही हो। दुख में एक गहराई है।

झंझट क्यों खड़ी करनी? जब सुखी हो, तो सुखी होओ, उसका आनंद लो। उससे तादात्म्य मत बनाओ। जब मैं कहता हूं: सुखी होओ, तो मेरा अर्थ है: उसका आनंद लो। उसे एक जलवायु बन जाने दो, जो बदल जाएगी। सुबह दोपहर में बदल जाती है, दोपहर शाम में, और फिर रात आ जाती है। सुख को अपने चारों ओर एक वातावरण बन जाने दो। उसका आनंद लो, और जब उदासी आए तो उसका भी आनंद लो। कुछ भी हो, मैं तुम्हें उसका आनंद लेना सिखाता हूं। शांत बैठो और उदासी का आनंद लो, और अचानक उदासी उदासी नहीं रहती; वह स्वयं में एक सुंदर, शांत और मौन क्षण बन जाती है। उसमें कोई गलती नहीं है।

और फिर परम कीमिया घटित होती है, वह बिंदु आता है जहां तुम अचानक अनुभव करते हो कि तुम दोनों ही नहीं हो–न सुख, न दुख। तुम द्रष्टा हो: तुम शिखरों को भी देखते हो और घाटियों को भी; परंतु तुम दोनों ही नहीं हो। एक बार यह दशा उपलब्ध हो जाए, तो तुम हर बात का उत्सव मनाते चले जा सकते हो। फिर तुम जीवन का उत्सव मनाते हो, और मृत्यु का भी उत्सव मनाते हो।

ध्यान के लिए उचित स्थान

अगर ध्यान के लिए एक नियत जगह चुन सकें– एक छोटा सा मंदिर, घर में एक छोटा सा कोना, एक ध्यान–कक्ष– तो सर्वोत्तम है। फिर उस जगह का किसी और काम के लिए उपयोग न करें। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें होती हैं। उस जगह का उपयोग सिर्फ ध्यान के लिए करें और किसी काम के लिए उसका उपयोग न करें। तो वह जगह चार्ज्ड हो जाएगी और रोज हमारी प्रतीक्षा करेगी। वह जगह बहुत सहयोगी हो जाएगी। वहां एक वातावरण निर्मित हो जाएगा, एक तरंग निर्मित हो जाएगी, जिसमें हम सरलता से ध्यान में गहरे प्रवेश कर सकते हैं। इसी वजह से मंदिरों, मस्जिदों, चर्चों का निर्माण हुआ था– कोई ऐसी जगह हो,

जिसका उपयोग सिर्फ ध्यान और प्रार्थना के लिए हो।

ध्यान के लिए अगर एक नियत समय चुन सकें, तो वह भी बहुत उपयोगी होगा, क्योंकि हमारा शरीर, हमारा मन एक यंत्र है। अगर हम रोज एक नियत समय पर भोजन करते हैं, तो हमारा शरीर उस समय भोजन की मांग करने लगता है।

कभी आप एक मजेदार प्रयोग कर सकते हैं, अगर आप रोज एक बजे भोजन करते हैं और आप घड़ी देखें और घड़ी में एक बजें हों, तो आपको भूख लग जाएगी– भले ही घड़ी गलत हो और अभी ग्यारह या बारह ही बजें हों। हमारा शरीर एक यंत्र है।

हमारा मन भी एक यंत्र है। अगर हम एक नियत जगह पर, एक नियत समय पर रोज ध्यान करें, तो हमारे शरीर और मन में ध्यान के लिए भी एक प्रकार की भूख निर्मित हो जाती है। रोज उस समय पर शरीर और मन ध्यान में जाने की मांग करेंगे। यह ध्यान में जाने में सहयोगी होगा। एक भावदशा निर्मित होगी, जिसमें हम एक भूख बन जाएंगे, एक प्यास बन जाएंगे। शुरू–शुरू में यह बहुत सहयोगी होगा, तब तक ध्यान हमारे लिए इतना सहज न हो जाए कि हम कहीं भी, किसी भी समय ध्यान में जा सकें। तब तक मन और शरीर की इन यांत्रिक व्यवस्थाओं का उपयोग करना चाहिए।

इनसे एक वातावरण निर्मित होता है– कमरे में अंधेरा हो, अगरबत्ती या धूपबत्ती की खुशबू हो, एक सी लंबाई के व एक प्रकार के वस्त्र पहनें, एक से कालीन या चटाई का उपयोग करें, एक से आसन का उपयोग करें। इससे ध्यान नहीं हो जाता, लेकिन इससे मदद मिलती है। अगर कोई और इसकी नकल करे, तो उसे बाधा भी पड़ सकती है।

प्रत्येक को अपनी व्यवस्था खोजनी है। व्यवस्था सिर्फ इतना करती है कि एक सुखद स्थिति निर्मित होती है। और जब हम सुखद स्थिति में प्रतीक्षा करते हैं, तो कुछ घटता है। जैसे नींद उतरती है, ऐसे ही परमात्मा उतरता है। जैसे प्रेम घटता है, ऐसे ही ध्यान घटता है। हम इसे प्रयास से नहीं ला सकते, हम इसे जबरदस्ती नहीं पा सकते।

–ध्यानयोगः प्रथम और अंतिम मुक्ति